महर्षि सुकरात

"निंदंतु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवंतु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगांतरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलंति पदं न धीराः ॥"

लेखक
वेणीप्रसाद

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग
१९२७ [मूल्य १)
द्वितीय संस्करण]

भूमिका

सत्य का बल बड़ा प्रबल है। इसका स्वाद जिसने चखा है वह इसके सामने संसार की परवाह नहीं करता। निंदा स्तुति, मान अपमान, हानि लाभ, यहाँ तक कि मृत्यु को भी वह तुच्छ समझता है। लोकनिंदा उसे डरा नहीं सकती, दरिद्रता उसे उदास नहीं कर सकती, राजपुरुषों की लाल आँखें उसे धमका नहीं सकतीं, अपमान, मृत्यु कोई भी उसे अपने सिद्धांत से एक इंच डिगा नहीं सकता। वह एक अचल चट्टान है, जिस पर सब सांसारिक कामनाएँ टकरा-टकरा कर छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। लोहे की लाखों मुद्गरों से उस चट्टान को तोड़ने की चेष्टा करनेवाले उसके वज्रभेदी शब्द को सुनकर चौंक पड़ते हैं और पत्थर पर लोहे की चोट से जो चिनगारियाँ निकलती हैं, उन अग्निकणों को देखकर भयभीत हो अपने सारे अंधविश्वासों के भस्म होने की सूचना पाने लगते हैं, तथा यत्र-तत्र उस अद्‌भुत चट्टान की चर्चा कर विस्मित और भयभीत होते हैं, तथा कई बुद्धिमान् जन उसकी दृढ़ता और फौलादीपन की तारीफ भी करते हैं। चट्टान तो जड़ होती है, पर ऐसे सत्यप्रेमी महात्मा चैतन्य चट्टान हैं जिनकी दृढ़ता से प्राणहीन, उत्साहीन जनसमुदाय के निर्बल अंगों मे भी दृढ़ता आ जाती है। "तुख्म तासीर, सोहबत असर"। इनके सत्संग से निर्बल उत्साहहीन युवकों का ठंढा रक्त भी गर्म हो

जाता है और उत्साह की तरंगें उनके हृदय मे लहरे मारने लगती हैं, तथा वे इस उत्साहरूपी तरंग को और भी फैलाकर सब भाइयों को इसमें स्नान कराने के लिये कमर कसकर बाहर निकल पड़ते हैं। निर्बल निरुत्साही, आलसी और निरुद्यमी तथा स्वार्थ से पूर्ण लोगों को धोखा देकर हलुवा पूरी उड़ानेवाले जन, इस नवीन समुदाय की चेष्टा को पहले तो संदेह की दृष्टि से देखते, फिर उसे अपने स्वार्थ मे विघ्नकारी समझ, क्रोध और द्वेष की ज्वाला से अपने संकीर्ण हृदयों से दग्ध करने लगते हैं जिससे पहले तो नाना प्रकार की अयथा निंदा, फिर प्रगटरूप से दुर्वचन कहकर ये लोग उस महापुरुष की बुराई करने लगते हैं। पर तुलसीदास के कथन "विधि बस संत कुसंगति परहीं। फनि मनि इव निज गुन अनुसरहीं॥" के अनुसार चारों ओर की कुसंगति के बीच पड़कर भी ये महात्मा उज्ज्वल मणि की तरह अपने ज्ञानालोक के प्रकाश पर आवरण नहीं आने देते और ज्ञान की ज्योति जिन उलूकों (जो केवल आँख बंद किए दिवाभाग मे भी संसाररूपी वृक्ष को जकड़े उलटे लटके रहते हैं) को नहीं भाती। वे लाख फटफटाते हैं, हाथ पैर मारते हैं, पर जिसने बरजोरी ज्ञानप्रचार का बीड़ा उठाया है, वह कब इन बातों से सहमता है? तुलसीदासजी ने कहा है कि—

जिमि सिसुतन व्रन होय गुसाईं।
मात चिराव कठिन की नाईं॥
यद्यपि प्रथम दुख पावे, रोवे बाल अधीर।
व्याधि नास हित जननी, गने न सो सिसु पीर॥

इसी प्रकार वे महापुरुष इन बाल अज्ञानियों की करतूत पर जरा भी कर्त्तव्य से नहीं डिगते। बरजोरी ज्ञानांजन की शलाका, उन मूर्खों की दूषित, पीड़ित आँखों में डाल ही देते हैं, रोगी के हाथ पैर मारने, चीं चपड़ करने और रोने चिल्लाने पर तनिक ध्यान नहीं देते। माता से बढ़कर पुत्र का हितेच्छु और कोई नहीं है। सो वह भी अपने बालक के फोड़े को बेदर्दी से चिरवाती है, उसके रोने चिल्लाने पर ध्यान नहीं देती, क्योंकि उसकी यह बेदर्दी बालक की पीड़ा दूर करने के लिये है, उसके भावी सुख के लिये है; उसी प्रकार से महाजन अज्ञानियों के रोने चिल्लाने पर अपने कर्त्तव्य से हटते नहीं, उनके पीड़ित, मिथ्या-विश्वासरूपी फोड़े पर अस्त्र चलाते ही रहते हैं, जिसमे दूषित मल निकल जाय और वे आगे के लिये सुखी हों; पर जैसे रोगी या बालक फोड़ा चीरनेवाले को यम-राज समझता है, वैसे ही उक्त अज्ञानी जन उन महात्माओं को अपना बैरी, महाशत्रु मान बैठते हैं और हर तरह से बाधा पहुँचाकर उन्हें इस बरजोरी के इलाज से रोकना चाहते हैं, पर महात्मा अपनी प्रतिज्ञा से कब डिगनेवाले हैं? जितनी बाधा उपस्थित होती है उतनी ही दृढ़ता उनमे उस बाधा को अति-क्रम करने की होती है। अंत को यह असमान युद्ध जब असह्य हो जाता है, तब अज्ञानी जन उक्त महात्मा का प्राण संहार कर, कंटक दूर किया चाहते हैं। इसका परिणाम उलटा होता है। वे अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मारते हैं।

एक निस्वार्थी परोपकारी से, जो सदा जीजान से उनके भले की चेष्टा किया करता था, वे हाथ धो बैठते हैं। पर सत्य का और अच्छे काम का बीज कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता। वह धीरे-धीरे बढ़कर उस महान् उद्देश्य को सिद्ध कर ही देता है, जिसके लिये उस महापुरुष ने चेष्टा की थी। आज ऐसे ही एक महापुरुष के जीवन की चर्चा होनेवाली है जो ढाई हजार वर्ष पहले यूनान देश में वर्तमान था। वह सत्य का सच्चा उपासक था। सत्य की खोज मे उसने अपनी सारी जिंदगी बिता दी थी। जैसे कोई उद्भ्रांत-प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिये भटकता फिरता है और यत्र-तत्र सबसे उसका पता पूछा करता है, वैसे ही यह महात्मा अपनी एकमात्र प्रेमिका 'सत्य' के अनुसंधान में सुबह से शाम और शाम से सुबह तक घूमता फिरता और सबसे सत्यमयी देवी का पता पूछा करता था, पर शोक कि कहीं भी उसकी इच्छा पूरी नहीं होती थी। उसकी आराध्या देवी का पता बतलाना तो दूर रहा, उस देवी की शकल सूरत, रंग रूप तक का किसी को ज्ञान न था। पर उसके हृदय पर तो अपनी प्रेमिका की मूर्त्ति खूब अंकित हुई थी और इस मूर्त्ति से जब वह इन लोगों की बतलाई हुई शकल का मुक़ाबिला करता तो बिलकुल निराश हो जाता था। किसी को भी यह ठीक मालूम नहीं था, पर मजा यह कि सब ही कहते थे कि मैं खूब जानता हूँ कि "सत्य क्या है"। जब इन लोगों की बातचीत से उसे पता लग जाता था कि "इन्हें

कुछ मालूम नहीं है" तब बड़ी नम्र भाषा में वह उनसे कहता कि "प्रियवर, आपने मेरी अभिलाषा पूरी नहीं की। 'सत्य' क्या है, यह मुझे नहीं बतलाया। शायद आप नहीं जानते हैं। फिर प्रियवर, आप ऐसा क्यों समझे बैठे हैं कि आप जानते हैं? यह आपको अज्ञानी बनाए रखेगा"। यह कहकर वह आगे चलता और दूसरे से सत्य का पता पूछता। वहाँ भी यही बात होती। उस महाशय को भी उसकी मूर्खता बतलाकर उसे आगे जाना पड़ता था। इसी काम मे उसे रात दिन बीतता था। न खाने की चिंता, न जीविका के लिये कुछ उद्यम! केवल एक मोटा कांथा लादे हुए अपने एक मात्र लक्ष्य 'सत्य' के अनुसंधान में लगा रहता। एक सच्चे प्रेमी की तरह उसकी दशा भी तथैवच हुई। वह दरिद्री हो गया और लोग उसे बुद्धिभ्रष्ट नास्तिक कहने लगे। नास्तिक इसलिये कि वह लोगों के प्रचलित धर्म्मविश्वास पर भी तर्क-वितर्क कर "सत्य" निचोड़ निकालने की चेष्टा करता था। यह सब ब्योरा उसने अपने आत्मदोष-मोचन में साफ तौर से कहा है। क्योंकर इस काम में सारा शहर उसका शत्रु हो गया, कैसे भडुवे कवियों ने उसकी नकल उतारकर उसकी चिग्घी उड़ाई, क्योंकर उस पर नास्तिकपन का आरोप करके उसे विषपान कराकर मार डाला गया—यह सब इस पुस्तक में आवेहीगा, पर सबसे बढ़कर अलौकिक उसका 'सत्यप्रेम' और अंत समय की उसकी अपने शिष्यों से बात-

चीत है। कैसी निर्द्वंद्वता से उसने विषपान कर अपने सिद्धांत का वास्तविक रूप प्रगट किया है, यह पढ़कर मन एक दूसरी ही अलौकिक दुनिया मे विचरण करने लगता है। आत्मा को अमर तो हम भी मानते हैं, आप भी मानते हैं और करोड़ों हिंदू मानते हैं, पर उसका सच्चा दृष्टांत, जीता-जागता नमूना तो सुकरात ही मे देखा। कैसा धर्म्म-प्रेम है! कैसा आत्मा के अमरत्व मे अटल विश्वास है!! चुपचाप हलाहल विष पान कर जाना और माथे पर बल न पड़े!!! अंत समय तक अपने मित्रों से उसी आत्मा की अमरता पर बहस करते हुए, शांतिपूर्व्वक सो जाना और प्राण त्याग देना, 'सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानै नाग'। मृत्यु क्या हुई मानों हाथी के गले से फूल की माला टूटकर गिर पड़ी। इसका नाम हम यदि मृत्युंजय सुकरात रखें तो कोई अत्युक्ति नहीं। इन्होंने तो गीता के इन श्लोकों को प्रत्यक्ष कर दिखलाया—

' वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
नैनं छिन्दंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयं, अदाह्योऽयं, अक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥"

"जैसे पुराने कपड़े को उतारकर मनुष्य नवीन वस्त्र धारण करता है वैसे ही एक शरीर को छोड़कर मनुष्य दूसरा शरीर धारण करता है। असली मनुष्य जो है (आत्मा) उसे न

पानी भिगा सके, न अग्नि जला सके, न वायु सुखा सके। वह सदा एक रस रहता, सबमें व्यापक, अचल है, सनातन है।" पर शोक कि इन श्लोकों को अपना धार्मिक लक्ष्य माननेवाले हम हिंदू मौत से कैसे थर-थर काँपते हैं और समझते हैं कि इससे बढ़कर कोई बुराई नहीं। कैसी ना समझी है। सुकरात ने कहा है कि मौत क्या है, इस पर्दे की ओट में क्या है यह तो कोई भी जानता नहीं, पर सब लोग इससे ऐसा डरते हैं कि "मानों खूब निश्चय जानते हैं कि इससे बढ़कर दूसरी कोई बुराई नहीं।" मौत दो चीज हो सकती है। या तो अनंत घोर निद्रा जिसमे फिर से जागने का नाम नहीं, या एकदम मोक्ष; या असली चीज मरती नहीं केवल आवरण मात्र बदलती है। फ़िर इतना रोना पीटना क्यो ? इसका इतना भय क्यो ? सच पूछिए तो इसी से डरकर लोग स्वार्थत्याग नहीं कर सकते और किसी महान् उद्देश्य को पूर्ण करने की चेष्टा न कर "खाओ, पीओ, मौज करो" इसी मे लगे रहते हैं। इस झूठे भय ने हमे कायर, निस्तेज और अधर्मी बना दिया है। यदि इस जीवनी को पढ़कर हमारा मृत्युभय कुछ भी कम हुआ या कुछ भी हमे सत्य से प्रीति हुई तो लेखक का परिश्रम सुफल होगा। इत्यलम्।

विनीत

ग्रंथकार

विषय-सूची

पहला अध्याय—सुकरात के समय मे यूनान
की अवस्था ... ... १—९
दूसरा अध्याय—सुकरात का जीवनवृत्तांत ... १०—२५
तीसरा अध्याय—सुकरात की तर्कप्रणाली ... २६—६६
चौथा अध्याय—सुकरात का दोषविमोचन ... ६७-१३१
पाँचवाँ अध्याय—सुकरात का बंदीगृह ... १३२-१६२
छठा अध्याय—सुकरात की स्वर्ग-यात्रा ... १६३-३१५
सातवाँ अध्याय—मृत्युंजय सुकरात के जीवन
की एक झलक ... ३१६-३२४

महर्षि सुकरात

पहला अध्याय

सुकरात के समय में यूनान की अवस्था

महर्षि सुकरात की जीवनी वर्णन करने के पहले उनके देश की तत्कालीन अवस्था का कुछ दिग्दर्शन करा देना उपयुक्त होगा। सुकरात ने जिस समय जन्म ग्रहण किया था उन दिनो यूनान में प्रजातंत्र राज्य का चढ़ता जमाना था। थोड़े ही दिन हुए थे कि यह अत्याचारी शासकों के पंजे से छूट चुका था और स्वभावतः इन दिनों लोगो की स्फूर्ति सब बातों की ओर हो रही थी। आधुनिक भारतवर्ष की तरह वहाँ भी उन दिनों नाना प्रकार के देव-देवी माने जाते थे और पंडे पुजेरियों का जमाना था। मृत्यु के पश्चात् प्राणी कहाँ जाता है? सृष्टि किस प्रकार से हुई और कैसे नष्ट होगी? आत्मा और परमात्मा क्या हैं?—इन गूढ़ तत्त्वों के प्रश्नों का समाधान सब लोकमत के आधार पर, सर्वसाधारण की रुचि देखकर करते थे। लोगो की रुचि स्वाभाविक ही क्षणिक वर्त-

मान इंद्रिय-सुख की ओर होती है और वे ही पंडित या पंडे-पुजेरी अपना काम साध लेते हैं जो सर्वसाधारण की इस रुचि के अनुसार गूढ़ पारमार्थिक तत्त्वों की व्याख्या करते हैं, अर्थात् कामी और विलासप्रिय लोगो को यह उपदेश देकर कि "अमुक देव-देवियों पर विश्वास करने, उनकी आराधना करने अथवा अमुक अमुक प्रकार से दान पुण्य करने से ऐसे लोक की प्राप्ति होगी जहाँ सुंदर युवती अप्सराएँ सदा सेवा को तैयार रहेंगी, शरीर सदा युवा और आधि-व्याधि तथा नाश-रहित रहेगा, बड़े बड़े सुंदर बाग पुष्पों से सुगंधित रहेगे, शीतल मंद सुगंध पवन सदा चला करेगी"। वे अपने बतलाए हुए दार्शनिक तत्त्वो पर सहज ही विश्वास करा लेते हैं। यदि साधारण लोग शूर वीर और राज्य फैलाने के इच्छुक हुए तो उन्हे यह तत्त्वज्ञान बतलाया जाता है कि "अमुक अमुक कर्मों से ऐसे लोक प्राप्त होगे जहाँ देवताओ के शरीर मिलेगे और इंद्र का राज्य मिलेगा, जहाँ प्रबल दैत्यों को जीतकर अखंड राज्य और श्री की प्राप्ति होगी" इत्यादि। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मात्सर्य मे से जिस ओर साधारण लोगों का अधिक झुकाव देखा, वैसा ही ज्ञान बतला दिया—यही चतुर, स्वार्थी पुजेरियों की सदा करतूत रही है। उस समय यूनान देश की धार्मिक अवस्था का भी यही हाल था। यहाँ के लोग शूर वीर और नए राज्यों के इच्छुक थे तथा उनमें कुछ कुछ विलासिता के अंकुर भी उग गए थे, सो इन दिनों इस देश के

जनसाधारण का विश्वास यही था कि इस लोक मे शूरता दिखाने और स्वर्ग के नाना प्रकार के देव-देवियों को पूजने से सब कामनाएँ सिद्ध होंगी।

मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अपने आराध्य देवता को अपने ही जैसी शकल-सूरतवाला और वैसी ही चित्तवृत्ति-वाला मानना चाहता है, पर हाँ उन बातो को उनमें अपने से बहुत बढ़ा हुआ समझता है। इसी कारण इन दिनों यूनान देश के निवासी भी अपने उपास्य देवताओं को मानवी वृत्तिधारी अलौकिक जीव-विशेष मानते थे। मानसिक विचार पर यद्यपि चारों ओर की प्रचलित विश्वासधारा का प्रभाव पड़ता ही है, पर इन्हीं में से कोई विचार जब अपनी अंतिम सीमा तक पहुँच जाता है, तो फिर उस विचार को ध्वंस करनेवाली एक नई विचार-प्रणाली का उदय होता है। यही अवस्था यूनान मे हुई थी। प्रचलित विश्वास-समूह से एक पृथक् नवीन विचार-प्रणाली निकली। इन नए विचारवालों ने अपने नए देवता माने, नए सिद्धान्त गढ़े और धीरे धीरे सर्वसाधारण की रुचि के अनुसार चलकर कुछ लोगों को अपना चेला मूड़ा और लोगों के सुधार का बीड़ा उठाने की धूम मचा दी। ये लोग निरे मूर्ख, दंभी और स्वार्थी होते थे तथा अपने को यूनान के युवकों को शिक्षा देनेवाले ठेकेदार मानते थे। लोग इन्हें 'सोफियाइ' कहते थे। प्राचीन विचारवाले इनसे इसलिये बुरा मानते थे कि ये नाना प्रकार के नाटक-चेटक रचकर

युवकों को अपनी ओर खींचते और उन पर नई विचार-प्रणाली का प्रभाव डालकर उनकी सरल बुद्धि को विलासिता और आलस्य के गहरे आवर्त में फँसाने की चेष्टा में रहते और शिक्षक का आसन ग्रहण कर अपनी गुरुआई की दक्षिणा भी वसूल करते थे। धीरे धीरे सर्वसाधारण के शिक्षा-गुरुओं के आसन पर ये लोग विराजमान होने लगे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि यूनान मे उन दिनों प्रजातंत्र राज्य था और इसी कारण आधुनिक अमेरिका की तरह वहाँ कला-कौशल, धार्म्मिक, सामाजिक और राजनैतिक बातों की भी खूब उन्नति और चर्चा रहा करती थी। वास्तव मे उन दिनों यूनान में विद्या और राजनीति की धूम थी। इन्हीं दिनों यहाँ ऐसे ऐसे कवि, नाटककार और कला-कौशल के जाननेवाले उत्पन्न हुए थे, जिनके आदर्श को आज भी समस्त यूरोप मानता है। यूनान में पेरीकिल नाम का एक बड़ा राजनीति-विशारद महापुरुष हुआ था। उसने सब तरह से राजधानी एथेंस की उन्नति की थी और इस नगरी को एक विशाल महा-नगरी बना दिया था। यही एथेंस नगरी आसपास की सारी रियासतों की मुखिया हो गई थी। जैसे पांडवो का इंद्रप्रस्थ, पृथ्वीराज की दिल्ली, बौद्ध-राजाओं का पाटलिपुत्र और अँगरेजों का आज दिन लंडन है वैसे ही सारी विद्या, कला-कौशल और सौंदर्य्य की रानी यूनान की एथेंस नगरी थी। इन दिनों यूरोप भर मे यही एक ऐसी महानगरी थी, जिसकी

राजसत्ता और राजनियम को सारे यूरोपवासी आदर्श मानते थे। राज्य के शासन का भार एक साधारण सभा के अधिकार में था। प्रत्येक नागरिक इस सभा का सभासद हो सकता था, केवल शर्त्त यही थी कि वह किसी कारण से अयोग्य न ठहराया गया हो। हरएक सभासद को सभा में हाजिर रहना भी कानून के अनुसार आवश्यक था। यहाँ प्रतिनिधि चुनने की चाल न थी और किसी मंत्रिमंडल का संगठन न था। राजसभा के सारे सभासद राज्य का सब प्रबंध आप ही करते थे। किसी खास मनुष्य पर कोई बड़ी जवाबदेही नहीं रहती थी। इससे एक यह लाभ बड़ा भारी था कि प्रत्येक नगरनिवासी को राज-काज से संबंध पड़ता और यों सबको सहज ही में राजकाज की शिक्षा भी मिल जाती तथा हर एक आदमी अपने को राज्य के भारी से भारी मामले का प्रबंधकर्ता और उत्तरदाता समझता था। सभा में बैठे हुए, पार्लामेंट के मेम्बरों की तरह, उसे अपने राज्यप्रबंध, नियम, कानून, विदेशी राज्य से संबंध, मैत्री, शत्रुता, साम, दाम, दंड-भेद आदि प्रश्नों पर विचार करना पड़ता, अपना विचार प्रगट करना तथा दूसरों की दलीलों तथा तर्क-वितर्क में स्वयं भाग लेना पड़ता था। कभी एक तरफवाले कोई बड़ी शानदार वक्तृता देते तो दूसरे पक्षवाले उसके बाल की खाल उड़ाकर उसकी मीमांसा की जड़ उखाड़ देते थे। दोनों ओर से खूब सरगरमी से बहस चलती थी। सदस्यों

को स्वयं आप ही मौके मौके पर इन प्रश्नों की जाँच पड़ताल करनी पड़ती थी और दोनों पक्षों की बहस सुनकर मन में मीमांसा करनी पड़ती थी। न्यायालय का भी यही हाल था। वहाँ जो जूरी लोग बैठते थे वे चिट्ठी डालकर चुने जाते थे और यों प्रत्येक नगरनिवासी के कभी न कभी न्यायाधीश बनने की बारी आ जाती थी। इस प्रकार से हर एक नागरिक न्यायालय की कार्रवाई में भी खूब निपुण हो जाता था। इस प्रकार से एथेंस-निवासियों को असली काम-काज के स्कूल में शिक्षा मिलती थी। हाँ, बचपन में बालकों को व्यायाम और संगीतकला तो अवश्य सिखाई जाती थी, तथा गणित और ज्योतिष की शिक्षा भी दी जाती थी। दार्शनिक शिक्षा के पहले भी कई विद्वान् हो गए थे जिनमे अनक्सागोरस, हिराकीटश और मरमेनीडास इत्यादि मुख्य थे। इसके सिवाय सोफियाइ की करतूतों का तो ऊपर वर्णन हो ही चुका है। यद्यपि यूनानियों का राजनैतिक बल इस समय बहुत बढ़ा चढ़ा था, पर तो भी उन्हें कभी कभी प्रबल शत्रुओं का सामना करना ही पड़ता था और दो एक मौकों पर हार भी खानी पड़ी थी जिस कारण लोगों पर ताने मारने का मौका भी कवियों को मिल गया था और कई प्रकार के नाटक रच-रचकर इसका खेल भी दिखाया जाता था जिसे सर्वसाधारण बड़े चाव से देखते सुनते थे। इन नाटकों के रचयिता सोफियाइयों के तो पूरे कालस्वरूप थे क्योंकि सोफियाइयों का नया

दल हरदम पुराने दार्शनिक और प्राचीन धर्म्म-विश्वासों की चिग्घी उड़ाया करता था और लोग अपने अपने विचारों के अनुसार पुरानी बातों की कुछ परवाह न कर नए नए विचार प्रगट करने लग गए थे। यह बात उन पुराने ढंग के कवियों को बहुत ही बुरी लगी और वे लोग व्यंग्यपूर्ण काव्य और नाटक बनाकर सोफियाइयों की मट्टी पलीत करने पर उतारू हुए। इन नए विश्वासियों मे से कई लोग अपने को बड़े बड़े दार्शनिक भी प्रगट करते थे, जिनके नए नए विश्वासों के कारण सोफियाइयों की भाँति इनसे भी पुराने विचार के लोग घृणा करते थे। कारण यह था कि सुकरात के जन्म के पहले जिस दर्शन का यूनान में प्रचार था, वह भारतवर्ष के वैशेषिक दर्शन से बहुत मिलता है। पाँच तत्त्वों की बनी सृष्टि और उसकी उत्पत्ति और विनाश तथा इसका मार्ग, इन्हीं सब बातों का विशेष विचार था। कइयों का तो मत है कि उन्होंने ये सारी बातें भारत से सीखी थीं, पर यह भी तो संभव हो सकता है कि जिस अनुभव के बल से भारतवासी इन नतीजों पर पहुँचे उसी अनुभव के बल से यूनानी भी उन्हीं नतीजों पर पहुँचे हों। प्रकृति के नियम तो सब जगह एक ही से हैं। पर चाहे जो हो, सुकरात के समय में इन पुराने विचारों की यूनान में कदर न रही और एथेंस ऐसी नगरी मे, जहाँ नित्य नवीन बुद्धि और उद्यम का विकास हो रहा था, यह कब संभव हो सकता था कि लोग पुरानी ही लकीर को पीटते चले जाते और

नए विचार की ओर उनका ध्यान न जाता? नतीजा यह हुआ कि इस समय के यूनानवासी सृष्टि-तत्त्व और मानसतत्त्व को छोड़कर समाज और राजतत्त्व की मीमांसा मे अधिक दत्तचित्त होने लगे थे। वहाँ ठीक आधुनिक यूरोप जैसी अवस्था का आरंभ हो चला था। सृष्टि कैसे बनी और प्रलय कब और क्योंकर होगा? इन पचड़ों को छोड़कर, न्याय अन्याय, उचित अनुचित, भला बुरा और हित अनहित क्या है? इन्हीं बातों का विचार अधिक होने लगा था। पहले के दार्शनिकों को इसका ठीक उत्तर देना कठिन था। हाँ, इनका स्थान इन दिनों सोफियाइयों ने ग्रहण किया था जिनके स्वभाव और जिनकी प्रणाली का ऊपर कुछ कुछ दिग्दर्शन कराया जा चुका है। ये लोग दक्षिणा लेकर प्राचीन, नवीन मनमाने ठकुरसोहाती मत का प्रचार करनेवाले थे जिनसे सुकरात को अत्यंत घृणा थी। सोफियाइ शिक्षकों की शिक्षा केवल मतलब की होती थी जिसमे एथेसवासी काम चलाऊ बातों में निपुण हो जायँ यही उनका लक्ष्य था। इस शिक्षा से उनका हित अनहित क्या होगा, ये बाते ठीक हैं या बेठीक, इन बातों की उन्हें परवाह नहीं थी। सुकरात के एक शिष्य प्लेटो ने इन शिक्षकों का मुकाबला एक ऐसे आदमी से किया है जिसे किसी सैकड़ों मुँह और हाथ पैरवाले पशु से काम पड़ा हो और उसे हर दम इसी बात की खोज लगी हो कि उक्त पशु को कौन सी बात अच्छी लगती है और कौन

सी बुरी, किस बात से वह भड़कता है और किससे शांत होता है और इन बातों की जाँच करके उसी के अनुसार वह उस पशु की रखवाली करता हो। यही हालत सोफियाइयों की थी। अजस्र मुख और हाथ पैरवाले जन साधारण किस बात से भड़कते और किससे शांत रहते हैं, इसी का पता लगाकर ये लोग अपनी शिक्षा और उपदेश की प्रणाली स्थिर करते थे। अस्तु, इन दिनों एथेंस महानगरी में तीन प्रकार के दार्शनिक और तत्त्वजिज्ञासु रहते थे।

(१) पुराने सीधे सादे नाना प्रकार के देवी-देवता और एक मुख्य देवता ईश्वर को माननेवाले जिनकी तुलना हम आधुनिक प्रचलित हिंदू धर्म्मावलंबियों से कर सकते हैं।

(२) पुराने विश्वासों की धज्जी उड़ाकर युवकों के चंचल चित्त के अनुसार नए नए मत गढ़नेवाले और पुराने नए दोनों को मिला जुलाकर लोगों की रुचि के अनुसार काम चलाऊ मत की शिक्षा प्रचार करके दक्षिणा वसूल करनेवाले। इन्हीं को सोफियाइ कहते थे।

(३) प्राकृतिक दार्शनिक, जो प्रकृति के प्रत्येक नियम की अपने नए विचार और नई युक्तियों द्वारा व्याख्या करते थे।

महर्षि सुकरात के समय के यूनान देश की अवस्था का थोड़ा सा दिग्दर्शन हो चुका। अब आगे के अध्याय में उनके प्रारंभिक जीवन और उनकी शिक्षा का ब्योरा लिखा जायगा।

दूसरा अध्याय

सुकरात का जीवन-वृत्तांत

सांसारिक दृष्टि से देखा जाय तो सुकरात कोई बड़ा धनी या यशस्वी मनुष्य नहीं था। न तो उसका पिता पुश्तैनी जमींदार था और न उसका घराना विशेष प्रसिद्ध था; पर अलौकिक महापुरुष तो प्रायः ऐसे ही साधारण तौर पर जन्म ग्रहण करते हैं। सांसारिक वैभव के बीच तो इने गिने महात्माओं ने जन्म ग्रहण किया होगा। प्रायः ग्रामों में और दरिद्र या साधारण अवस्था के गृहस्थों के घर ऐसे महापुरुषों का आगमन होता है। सुकरात का जन्म खृष्टाब्द से लगभग ४६८-९ वर्ष पहले हुआ था। इनका बाप एक संगतराश था जिसे लोग सोफरोनिकस कहते थे और माता फिनारेटी साधारण दाई का काम किया करती थी। सुकरात ने अपनी युवावस्था में कोई ऐसी कृति नहीं दिखाई जो उल्लेख योग्य हो, केवल इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि उस समय यूनान देश सब विषयों मे सिरताज हो रहा था और जो यूनान के बड़े बड़े नामी विद्वान् या कारीगर हो गए हैं, सबों से सुकरात को बात-चीत करने और संग सोहबत करने का मौका मिला था। अस्तु, चालीस वर्ष की उम्र तक, जब कि अपने देश की ओर से वह पोटीडिया के युद्ध मे गया था, उसकी जीवनी का कोई

लिखा इतिहास नहीं मिलता, पर हाँ पहले अध्याय में जैसा बताया जा चुका है और जिस प्रणाली के अनुसार उस समय के यूनानी नागरिक शिक्षित होते थे, वैसी ही शिक्षा तो सुक-रात को अवश्य ही मिली थी और शायद इन्हीं राजसभा और न्यायालयों मे बैठकर उसने पहले पहल तर्क-विद्या भी सीखी होगी, जो कि भविष्य जीवन मे उसका मुख्य लक्ष्य और एक-मात्र कार्य्य था। प्राचीन पुस्तकों के पढ़ने का भी उसे बहुत शौक था और इसलिये यूनान के प्रसिद्ध प्रसिद्ध महाकाव्य और दार्शनिक ग्रंथ उसने सब देख डाले थे। उस समय के प्रच-लित पदार्थ-विज्ञान, गणित और ज्योतिष-शास्त्र से भी उसने साधारण जानकारी प्राप्त कर ली थी और पुराने दार्शनिक एन-क्सागोरस् के सिद्धांतो से भी वह पूर्णतया परिचित था, जिसने आत्मा को अमर और जन्मांतर ग्रहण करनेवाला माना है। पोटीडिया के युद्ध में अनेक यूनानवासियों की नाईं सुकरात ने भी साधारण सिपाहियों की तरह अस्त्र धारण किया था। पोटीडिया एथेंस राजधानी की एक अधीनस्थ रियासत थी और यहाँवालों के विद्रोह खड़ा करने पर एथेंसवासी उसके दम-नार्थ भेजे गए थे जिनमे हमारा चरित्रनायक भी चालीस वर्ष की उम्र में हाथ मे तलवार लेकर गया था और युद्धभूमि के सारे कष्टों को बड़ी धीरता से सहन कर उसने अपने अन्य साथियों को चकित और विस्मित कर दिया था। जब कि वहाँ अत्यधिक शीत पड़ता था और अन्य सिपाही सब अकड़े जाते थे, सुकरात

क्षुधा तृष्णा से पीड़ित होने पर भी शीत की कुछ परवाह न कर अपने स्थान पर डटा रहता था और इसी मौके पर अपने एक साथी आलसीबाइडी की उसने बड़ी वीरता से प्राणरक्षा कर एक छोटा सा युद्ध जीता और ऐसा स्वार्थत्याग दिखाया कि उस युद्धजय के यश का भागी उसने अपने उसी साथी को बनाया और अपने को केवल उसका एक साधारण सहायक प्रगट किया। ऋषित्व का यह पहला लक्षण है। अपना ढोल अपने गले में लटकाकर पीटनेवालों को इस चरित्र से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यदि कोई यथार्थ गुणी है तो समय पर प्रगट हो ही गा और यदि प्रगट न भी हुआ तो इससे क्या? सच्चे गुणवान् तो अपने गुणो के कारण स्वयं संतुष्ट रहते हैं, उनकी आत्मा प्रमुदित रहती है, उन्हे विज्ञापन की जरूरत भी नहीं और उसकी परवाह भी नहीं। केवल दंभियों को विज्ञापनबाजी पसंद है। अस्तु, सुकरात ने यहाँ अपने को पीछे रखकर अपने साथी को विजयमुकुट पहिनने दिया और हाँ उसी साथी को, जो केवल उसी के भुजबल के कारण प्राण बचा सका था। यह तो एक युद्ध की बात हुई। दो वर्ष बाद पुनः एक भयंकर युद्ध छिड़ गया जो यूनान के इतिहास मे पीलोपोनीसीयाइ युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध में एक अवसर पर एथेसवासियों को बड़ी गहरी हार खानी पड़ी थी। इस समय भी सुकरात युद्ध मे सम्मिलित था और जब हार खाकर सारी सेना खड़बड़ाकर भागी तब सुकरात और

उसका एक साथी लाशी ये हो दोनों ऐसे वीर थे जो घबड़ाए नहीं और बड़ी शान से तलवार ऊँचो किए हुए वापस आए। लाशी ने यहाँ तक कहा था कि "यदि सब सिपाही सुकरात की तरह अविचलित रहते तो हम लोग हारकर नहीं, शत्रुओं को हराकर घर वापस आते"। इसके सात आठ वर्ष बाद फिर भी एक बार सुकरात युद्ध-क्षेत्र में गया था जिसमे दोनों ओर के सरदार मारे गए थे, पर इस मौके पर कोई विशेष उल्लेख योग्य बात उसके विषय में कहीं लिखी नहीं मिली है। यद्यपि सुकरात कई बार युद्ध मे सम्मिलित हुआ और उसने वीरता दिखाई पर उसका असली युद्ध-क्षेत्र तो एथेंस था जहाँ तलवार से नहीं, वाणीरूपी अस्त्र से वह सर्वदा युद्ध करता रहता था। इसका कुछ आभास तो पहले ही दिया जा चुका है कि सुकरात को तर्क करने की जन्म से बान थी। बिना तर्क की कसौटी पर कसे किसी बात को मान लेना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। वह सबके पास जा जाकर उनसे छेड़ छेड़कर बातें करता और उनकी किसी ऐसी बात पर, जिसे वे सहज बोधगम्य समझे बैठे हैं, तर्क उठाकर प्रश्नोत्तर करना उसका नित्य का काम था। उसकी तर्कप्रणाली ऐसी शुद्ध और निष्पक्ष होती थी कि सहज ही विपक्षी की अज्ञानता प्रगट हो जाती थी और वह अपनी बात आप ही बार बार काट रहा है यह भी उसे खूब प्रतीत हो जाता था। उसे यह भी विदित हो जाता था कि जिस बात को वह साधारण जान

बैठा था और समझता था कि इसकी व्याख्या तो सरल है और उसे मैं खूब जानता हूँ उसी बात पर सुकरात ने जहाँ जिरह करना आरंभ किया तो वह बगले झाँकने लगा और अंत को उसे मानना पड़ा कि वास्तव में "मैं कुछ भी नहीं जानता। अमुक सिद्धांत के संबंध में मेरी ठहराई व्याख्या में बहुत से दोष और अयुक्तियाँ हैं।" यह बात आगे के अध्याय मे यूथीफाइरन की बातचीत में आवेगी और वहाँ सुकरात की तर्कप्रणाली का पता भी पाठकों को लग जायगा। इसलिये यहाँ विस्तार नहीं किया जाता। इस तर्क की बात ने सुकरात के विरुद्ध किस प्रकार से एक शत्रुदल एथेंस में खड़ा कर दिया, जिसने उसे अभियुक्त कर प्राणदंड दिलवाया और किस प्रकार से सुकरात ने इन शत्रुओं की पोल खोली, क्योंकर कैदखाने से भागकर प्राण बचाना उसने अस्वीकार किया और मृत्यु के दो घड़ी पहले तक कैसी शांति और धीरता के साथ आत्मा और शरीर के संबंध तथा मृत्यु और जन्म के विषय में वह अपने शिष्य और मित्रवर्गों से बातचीत करता रहा, यह सब आगे के अध्याय मे वर्णन किया हुआ मिलेगा और वही भाग उसकी असली जीवनी है। अब तक जो कुछ लिखा गया है उसे केवल उसके जीवन की भूमिका ही समझना चाहिए। उसके जीवन की विचित्रता—सारे जीवन में नहीं—मृत्यु के समय ही में हैं, पर हाँ इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि ऐसे पुरुष अवसर पड़ने पर भी कभी अनुचित, आत्मा के विरुद्ध,

कार्रवाई नहीं करते जिसके दो एक दृष्टांत आगे देकर सुकरात की तर्कप्रणाली के नमूने का अध्याय लिखा जायगा।

पहले दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार से दो मौकों पर युद्ध के समय सुकरात ने धीरता और वीरता दिखलाई थी। उसके पश्चात् सोलह वर्ष तक फिर कोई उल्लेख योग्य बात नहीं मिलती। इसके बाद एक घटना ऐसी हुई थी जिसमें सुकरात के प्राणों पर आ पड़ने पर भी वह अपने सिद्धांत से नहीं डिगा और जिसका हवाला उसने अपने अभियोग के समय अपनी सफाई देते हुए भी दिया था। वह घटना इस प्रकार है। खृष्टीय सन् से ४०६ वर्ष पहले एक युद्ध मे एथेंस के जहाजी बेड़े ने किसी प्रबल शत्रु को परास्त किया। युद्ध के शांत होने पर यूनानी सेनापति अपनी ओर के मरे हुए सिपाहियों की लाशों का पता न लगा सके। राजधानी मे जब यह खबर पहुँची तब सारे एथेंसवासी क्रोध से ओठ चबाने लगे, क्योंकि यूनानी धर्मशास्त्रानुसार मृतकों का अंतिम विहित संस्कार धर्म्म का मुख्य और परम आवश्यक अंग माना जाता था। इसके सिवाय बहुत से घायल सिपाही डूब भी गए थे जिन्हे सरदार लोग बचा न सके। इस संवाद ने एथेंसवासियों का दु:ख तथा क्रोध और भी बढ़ा दिया क्योंकि कितने ही घरों में लोग अपने प्रिय रिश्तेदारों के शोक से छाती पीट रहे थे और सब यही कह रहे थे—"हाय! हाय!! हमारे ही अमुक भाइयों को सरदारों ने गफलत से

डूबने दिया।" सरदार लोग फौरन् राजधानी मे बुलाए गए और नका विचार करने के लिये सभा बैठाई गई। अपने कर्तव्य में गफलत करने का अपराध उन लोगों पर लगाया गया। अपनी सफाई मे सरदारों ने कहा—"हम लोगों ने अमुक अमुक अधीनस्थ अफसरों को इस कार्य्य के करने की आज्ञा दी थी (इन अधीनस्थ अफसरों मे से ही न पर अभि-योग लगानेवाले एक महात्मा थे) पर एकाएक तूफान आ जाने के कारण मुर्दों को उठाने और घायलों के बचाने का प्रबंध न हो सका।" बहस स्थगित रखकर यह तय पाया कि पहले सभा को निश्चय कर लेना चाहिए कि इन सरदारों का विचार किस रीति पर किया जाय। सभा ने यह प्रस्ताव पास किया कि असामी और फर्य्यादी दोनों ओर की बहस सुनकर मुक्ति या दंड देने के लिये आठों सरदारों के लिये एक संग ही वोट (सम्मति) ली जावे। सभा का यह निश्चय बिलकुल अनु-चित और कानून के विरुद्ध था। नियमपूर्व्वक और उचित रीति से अपराध के निर्णय करने की प्रणाली को छोड़कर सभा ने इस मौके पर लोगो की रुचि का अधिक ध्यान रखा था क्योंकि असली कानून यह था कि "प्रत्येक अपराधी के दंड या रिहाई की आज्ञा अलग अलग विचार होकर दी जाय" पर सारे सदस्य इस समय आठों सरदारों पर बहुत नाराज थे; इसलिये उन लोगों ने इस कानून पर तनिक भी ध्यान नही दिया और वे आठों सरदारो को एक साथ ही दंडित करने का

उपाय सोचने लगे। संयोगवश सुकरात भी इस समय इस राजसभा का एक सदस्य था। इसके सिवाय उसने और कभी कोई राजकार्य्य में भाग नहीं लिया था। इस राजसभा में पाँच सौ सदस्य होते थे, जो चिट्ठी डालकर चुने जाते थे। इस समय एथेंस की प्रजा दस जातियों में विभक्त थी। अस्तु, प्रत्येक जाति में से चिट्ठी डाल डालकर पचास पचास आदमी चुन लिये जाते थे और ये लोग एक व ं तक इस अधिकार पर रहते थे। प्रत्येक जाति के सभासद पैंतीस पैंतीस दिनों तक सभा की कार्रवाई के पूरे उत्तरदाता रहते थे और इन पचासों में दस सभासद बारी बारी से सात सात दिवस के लिये सभापति का आसन ग्रहण करते थे। जब कोई कानून या प्रस्ताव पेश होने को होता तब पहले सभापति जाँच लेता था कि यह नियमानुकूल है या नहीं। यदि नियम के विरुद्ध होता तो वह पेश नहीं किया जाता था। इनमे से एक सभापति प्रति दिन बड़ी और छोटी दोनों राजसभाओं का केवल एक ही दिन के लिये प्रधान होता था। इस प्रधान को 'अपिस्ता' कहते थे। उसका काम केवल प्रस्ताव को सभा के सामने वाद के लिये उपस्थित करना था। जिस दिन इन आठ सरदारों का मामला पेश हुआ उस दिन संयोगवश सुकरात ही सभापति या 'अपिस्ता' था। यह प्रस्ताव बिल्कुल नियमविरुद्ध था, पर लोग सब सरदारों पर बहुत क्रुद्ध थे, इसलिये किसी ने इसके विरुद्ध आवाज नहीं उठाई। कुछ

सभापतियों ने नियम-विरुद्ध होने के कारण इस प्रस्ताव के पेश होते समय कुछ चूँ चाँ की थी पर सभासदों की डाँट और धमकी से वे दुम दबाकर बैठ गए, किंतु सुकरात ने न माना। "पकड़कर जेल में ठूँस दिए जाओगे; मार मारकर तुम्हारी हड्डी चूर चूर कर दी जायगी, गला घोंटकर मार डाले जाओगे" इन सब धमकियों और क्रोधोन्मत्त साधारण सभासदों के दाँत कटकटाने की उसने कुछ भी परवाह न की और प्रस्ताव को वोट के लिये पेश करने से साफ इनकार कर दिया। इसका जिक्र उसने अपने आत्म-दोष-मोचन मे किया है, जो आगे आवेगा। पर सुकरात क्या कर सकता था ? उसका अधिकार तो केवल उसी दिन भर के लिये था। इसलिये सर्वसम्मति से उस दिन सभा स्थगित कर दी गई और दूसरे दिन जब दूसरा कमजोर प्रधान या 'अपिस्ता' हुआ तब लोगो की इच्छा पूर्ण हो गई और आठो सरदारो पर अपराध प्रमाणित कर उन्हे प्राणदंड दे दिया गया। यह तो एक घटना हुई। अब दूसरी सुनिए।

दो वर्ष बाद वे ही शत्रु, जिन्हें एथेंसवासियों ने जहाजी लड़ाई में हराया था और जिनके कारण आठ सरदार फाँसी चढ़े थे, एथेंस पर चढ़ आए और उन्होंने नगर पर अधिकार कर एथेंस के प्रजातंत्र राज्य का नाश कर दिया और इसके बदले मे क्रीटियस ने (जो पहले सुकरात का साथी भी रह चुका था) स्पारटन जनरेल लाइसैंडर की सहायता से तीस

मनुष्यों की राज्यतंत्री सभा कायम कर दी। ये तीसों मनुष्य केवल एक ही वर्ष भर राज्य कर पाए। पीछे से फिर पहले की तरह प्रजातंत्र राज्य स्थापित हो गया। पर इसी साल भर के शासन में इन तीसों ने मारे अत्याचार और प्रजापीड़न के लोगो के नाकों दम कर दिया था। इन लोगों का जिनसे जिनसे अकस था, चाहे वह राजनैतिक मामले के कारण हो चाहे अपने किसी खास कारण से हो, वे सब एक न एक बहाने से मारे जाने लगे। कई रईसों का धन ही उनका काल हो गया। यह तीसों की मंडली क्या थी, मानों पिशाच-मंडली थी। जब जिसको चाहा इसने मारने का आदेश दे दिया और जिससे चाहा जल्लादों का काम लिया; क्योंकि इस पैशाचिक कांड मे जितने लिप्त हो सकें उतनों ही को लिप्त कर लेना इसका उद्देश्य था। इसी उद्देश्य से एक दिन उन्होंने अन्य चार नागरिकों के साथ सुकरात को भी बुला भेजा और लीयोन नामक स्थान से सलमी नामक किसी मनुष्य को एथेंस मे हत्या करने के लिये बुला लाने की आज्ञा दी। सुकरात के अन्य चारों साथियों ने तो जान जाने के डर से कुछ नहीं कहा और वे सलमी को लीयोन से ले आए, पर सुकरात ने यह आज्ञा मान्य न की और वह सीधा घर चला गया। अपने आत्म-दोष-मोचन के समय इस बात का हवाला देते हुए उसने कहा था—"उस मौके पर कुछ बातचीत न कर, अपने काम से मैंने साफ प्रकट कर दिया था कि मैं मृत्यु को तृण बराबर

भी नहीं डरता, पर हाँ अधर्म्म से अवश्य बहुत डरता हूँ।" इसके पहले भी वह क्रोटियस और उसकी मंडली का बहुत ही विरागभाजन हो चुका था; क्योंकि उन लोगों ने जो पैशाचिक कांड करना शुरू किया था उसकी खुले तौर पर सुकरात ने कड़ी आलोचना आरंभ कर दी थी और इस कारण से इन अत्या-, चारियों ने सुकरात को बुलाकर बहुत कुछ डाँट डपट की थी और यह भी धमकी दी थी कि "युवकों से बातचीत करोगे, (जैसी कि सुकरात की आदत थी) तो फाँसी पर लटका दिए जाओगे।" पर सुकरात ने इन सब धमकियों की रत्ती भर भी परवाह न की, जिसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों मे इन पैशाचिक शासकों के शासन का अंत हो गया और पहले की तरह प्रजातंत्र राज्य स्थापित हो गया। इधर तो सुकरात यों अन्याय का विरोध कर तथा युद्धक्षेत्र मे वीरता दिखाकर अपना आत्मिक बल दिखा रहा था, उधर अरिस्टोफेन नाम का एक भ़ंडुवा कवि सब तरह से उसका अनिष्टसाधन करने मे लगा हुआ था। भडुवा कवि पुराने विचार का मनुष्य था और नवीन विचार और तर्कप्रणाली से कुढ़ता था। सोफियाइयों से तथा प्राकृतिक दार्शनिकों से इसे बड़ी घृणा थी और चूँकि सुकरात सभी विश्वास और विचार के मनुष्यों से प्रत्येक बात पर तर्क वितर्क और जिरह करता रहता था इस-लिये अरिस्टोफेन ने उसे सोफियाइ और नवीन दार्शनिक दोनों का पैरोकार समझा और एक नाटक रचकर सुकरात की खूब

खिगधी उड़ाई और उसे उल्लू बनाने की चेष्टा की। उस बेचारे को क्या मालूम कि सुकरात ने अपनी सारी जिंदगी इन्हीं सोफियाइ और नवीन दार्शनिकों के विरुद्ध तर्क वितर्क करने और खंडन में बिताई है। उसे तो अपने नाटक के लिये एक पात्र चुनना था जो जरा विख्यात मनुष्य हो, चाहे वह सोफियाइ हो या न हो। अतः उसने इस काम के लिये बेचारे सुकरात ही को चुना; क्योंकि वह पुराने विचारों पर तर्क वितर्क किया ही करता था और इस कारण बहुत सी युवकमंडली उसके संग लगी फिरती थी, तथा उसकी ऊँची नाक, तेज आँखें और ऊँचे सिर से सब लोग परिचित थे और साधारण मोटा लबादा ओढ़े हुए एथेंस के बाजारो मे घूमते और लोगों से तर्क वितर्क करते हुए नित्य सभी लोग उसे देखते थे। इसलिये अरिस्टोफेन को अपने नाटक के लिये यही उपयुक्त पात्र जँचा, और अपने नाटक मे उसने सुकरात के मुँह से सब तरह की बेसिरपैर की बेतुकी बातें कहलवाईं, जिन्हें सुन सुनकर नाटक के दर्शकगण हँसते और सुकरात को एक घोर नास्तिक, कँगला, हतभाग्य समझते थे। सुकरात के विरुद्ध यों ही एक दल खड़ा हो गया जो भ्रमपूर्व्वक उसे कुछ का कुछ समझने लगा और उस पर जब अभियोग चला था तब उस पर दोषारोपण करनेवालों में इस दल के भी कई मनुष्य थे। सर्वसाधारण मनुष्य यही समझते हैं कि प्रचलित पुराने विश्वासों पर तर्क वितर्क करनेवाले सब नास्तिक होते हैं और जब कि सुकरात पुराने

विश्वासी—सोफियाइ और नवीन दार्शनिकों से भी तर्क वितर्क करता, उनके माने हुए सिद्धांतों की जाँच पड़ताल करता और सबको मूर्ख बना देता था, तो इस कारण तीनों दलवाले उससे बुरा मानने लग गए थे। ऐसे मनुष्य, सच्चे जिज्ञासु तो बहुत थोड़े होते हैं जो तर्क में लाजवाब होने पर अपनी मूर्खता साफ स्वीकार कर लें, बड़े बड़े नामी विद्वानों और शास्त्रियों का मुँह लाल हो जाता है और अपने को अपमानित समझकर तार्किक से किसी नीच उपाय द्वारा वे बदला लेने की सोचने लगते हैं। यही हाल भारतवर्ष मे स्वामी शंकराचार्य्य और स्वामी दयानंद के साथ भी हो चुका है। इन दोनों को विपक्षियों ने चिढ़कर नीच उपाय से मार डाला। इन्होंने सोचा था कि इनके मारने से इनके सिद्धांतों का प्रचार रुक जायगा, पर इन पुरुषों को इतिहास उस समय क्रोध के आवेश में बिल्कुल भूल गया, नहीं तो उन्हें साफ प्रमाण दिखलाई देता कि इन बातों का उलटा फल होता है और हुआ भी वैसा ही। भगवान् शंकराचार्य को विष देनेवाले बौद्धो का अब भारत में नाम निशान भी नही है और स्वामी दयानंद के अनुयायी उस समय से अब कितने बढ़ गए हैं यह तो सभी जानते हैं। ये दो दृष्टांत यहाँ इसलिये दिखाए गए हैं कि इस विषय में प्राचीन यूनानी ऋषि सुकरात से इन भारतीय ऋषियों की जीवनी ज्यों की त्यों मिलती है। अस्तु, जब कि सुकरात के कुछ भक्त भी थे तब सहस्रों शत्रु भी खड़े हो गए

थे, जिनकी नासमझी ने अंत मे उस महापुरुष का प्राण-संहार कर ही के छोड़ा। यह क्योंकर और कैसे हुआ, यही पढ़ने योग्य है और आगे के अध्यायों में आवेगा। इसमे संदेह नहीं कि लोगों का यह संपूर्ण भ्रम था और अरिस्टोफेन ने अपने नाटक में सुकरात का जो चित्र खींचा है वह आदि से अंत तक बिलकुल मिथ्या और अपमानजनक है, यहाँ तक कि इस नाटक का एक दर्शक एक बार क्रोध में आकर उछल पड़ा था और उसने अरिस्टोफेन को संबोधन करके कहा था कि "छिः छिः, तुमने सुकरात का चित्र बिलकुल उलटा खींचा है। वह कैसा धीर, वीर और साहसी पुरुष है यह मैं युद्धभूमि मे स्वयं देख चुका हूँ"। अस्तु, यों ही सुकरात के बहुत से भक्त भी थे जिन्होंने उसके अभियोग में उसे निर्दोष ठहराया था। सुकरात के जीवन मे उसका अभियोग और उसकी मृत्यु ही प्रधान घटनाएँ हैं जो आगे आवेगी। इसलिये साधारण जीवनवृत्तांत मे यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया है। इतना यहाँ और कह देना अनुचित न होगा कि सुकरात पूरा वैरागी होने पर भी गृहस्थ था और उसके दो तीन लड़के-बाले भी थे। उसकी स्त्री बड़ी कर्कशा और हठी थी, पर वह उसी के साथ शांतिपूर्वक अपना गुजारा करता था। तात्पर्य्य यह कि उसकी गृहस्थी सुखमय नहीं थी इसलिये उसका अधिक समय बाहरी लोगों से बातचीत, तर्क वितर्क, खंडन मंडन ही मे बीतता था, यहाँ तक कि अपनी जीविका की भी उसे कुछ

परवाह नहीं थी, जिस कारण वह बड़ी गरीबी से गुजारा करता था। यही कारण उसकी स्त्री के कर्कशा होने का भी कहा जा सकता है क्योंकि निरुद्यमी स्वामी से स्त्री कब प्रसन्न रहती है? जो हो, यहाँ तो दूसरी ही धुन थी। चाहे एक समय भोजन मिले या न मिले, चाहे घर जाते ही स्त्री सैकड़ों झिड़कियाँ सुनावे, लोग नाटक मे उसकी चिग्घी उड़ावे, फटे मोटे पैबंद लगे हुए कपड़े हों; पर वह एथेंस नगरी के बाजार, हाट, न्यायालय, स्नानागार, दूकान, राजसभा के बाहरी मैदान तथा सभी पबलिक स्थानों मे डटा रहता और किसी न किसी से किसी न किसी विषय पर नित्य तर्क वितर्क करता हुआ दिखाई देता था। उसके सारे तर्क का मूल यही था कि बिना जाँचे किसी विषय में अपने को समझदार मत समझो। मैं भी समझदार नहीं हूँ और अपने को वैसा समझता भी नहीं हूँ। तुम मूर्ख होकर अपने को सर्वज्ञ समझे बैठे हो। यही तुम्हारी बड़ी भारी गलती है। यदि ज्ञान सीखना है तो 'मैं ज्ञानी हूँ' इस अभिमान को पहले त्यागकर कहो कि "मैं कुछ नहीं जानता, सीखना चाहता हूँ।" तभी ज्ञानार्जन कर सकोगे, नहीं तो जन्म भर मूर्ख बने रहोगे और ऐहिक और पारमार्थिक किसी तत्त्व को भी न समझ सकोगे और मनुष्यजन्म वृथा जायगा। यही बतलाने की मेरी कोशिश है और ईश्वर की ओर से मुझको इसका आदेश है। ये ही बातें उसने अपने अभियोग के समय स्पष्ट रूप से कही भी हैं। जो

हो, यूनान देश की एथेंस नगरी मे यह उस समय एक अलौकिक पुरुष था। उसकी तर्क-प्रणाली का उल्लेख अब आगे के अध्याय में आवेगा, जहाँ एक परिचित एथेंसवासी से वह धर्म्म, अधर्म्म के रूप के विषय में बातचीत करता दिखाया गया है। आगे के अध्यायों में उसका अभियोग, आत्मदोष-मोचन (सफाई), वंदीगृह और मृत्यु की घटना तथा अंत में उसके सिद्धांतों का कुछ निराकरण—उसके शिष्यों की बातचीत द्वारा—दिखाया गया है। यद्यपि विशेष रोचक नहीं हैं पर मननशील पाठकों के लिये आगे के अध्याय मनन करने योग्य हैं। कई अँगरेज विद्वानों का यह सिद्धांत है कि अपने अभियोग और मृत्यु के समय सुकरात ने जो जो बातें कही हैं वे उसके शिष्य प्लेटो ने पीछे से गढ़कर रची हैं, स्वयं सुकरात की कही हुई नहो हैं। चाहे जो हो, वे बातें सुकरात के स्वभाव और सिद्धांत की बोधक तो अवश्य हैं। इसलिये यदि कोई यह सिद्ध करने का प्रयत्न करे कि उक्त बातें ज्यों की त्यों सुकरात के मुँह से नहीं निकलीं तो उन बातों का महत्व कुछ घट नहीं सकता। गीता भगवान् श्रीकृष्ण ने अक्षरशः अर्जुन से यदि न कही हो और भगवान् वेदव्यास ने रचकर भगवान् कृष्ण के सिद्धांतों का उसमे समावेश कर दिया हो तो इससे क्या गीता का महत्व घट जायगा? कदापि नहीं। वही बात यहाँ भी समझ लेनी चाहिए।

तीसरा अध्याय

सुकरात की तर्कप्रणाली

स्थान सभाभवन

उपस्थित—यूथीफाइरन और सुकरात

यूथी०—क्योंजी सुकरात! आज तुम यहाँ सभाभवन में कहाँ? रोज तो इलासीयम में रहते थे। मेरी तरह तुम्हारा यहाँ कोई मुकद्दमा तो होगा ही नहीं।

सुक०—नहीं भाई यूथी! एथेंसवासी इसे मुकद्दमा नहीं, जुर्म कहते हैं।

यूथी०—क्या कहा? तुम पर क्या कोई जुर्म लगा रहा है? तुम खुद तो किसी पर जुर्म लगा ही नहीं रहे होगे।

सुक०—बिलकुल नहीं।

यूथी०—तब क्या तुम्हीं पर किसी ने जुर्म लगाया है?

सुक०—जी हाँ।

यूथी०—किसने?

सुक०—मैं खुद तो उसे अच्छी तरह जानता भी नहीं, शायद कोई अपरिचित युवा पुरुष होगा। उसका नाम शायद मेलीटस है और उसकी जाति पिथीस है। पिथीस जाति का इस नाम का कोई आदमी तुम्हे याद आता है—वही

ऊँची नाक और लंबे लंबे केशोंवाला एक आदमी है जिसके छोटी सी दाढ़ी भी है।

यूथी०—भाई सुकरात मैं तो नहीं जानता। पर यह तो बतलाओ तुम पर उसने कौन सा जुर्म लगाया है?

सुक०—मामूली जुर्म नहीं है। एक युवा पुरुष का ऐसी भारी बात पर एक राय कायम कर लेना कोई मामूली बात नहीं है, क्योंकि वह सबसे कहता फिरता है कि "नौजवान किस तरह बिगड़ते हैं और उन्हें बहकानेवाला कौन है, यह मैं खूब जानता हूँ।" वह बड़ा बुद्धिमान् आदमी मालूम पड़ता है, जो मुझे मूर्ख जानकर भी, न्यायाधीशों के सामने मुझ पर अपने दोस्तों के बहकाने का इलजाम लगाता है। मेरी समझ में तो वही एक ऐसा आदमी है जिसने राजनैतिक सुधार का ठीक ठीक सीधा उपाय निकाला है, अर्थात् जिसे युवकों को पूरे लायक बनाने का बड़ा खयाल है, ठीक जैसे किसान छोटे पौधे के बचाव का पहले उपाय करके तब दूसरी तरफ ध्यान देता है। मैं समझता हूँ कि शायद इसी लिये मेलीटस मेरे ऐसे बूढ़े कंटकों को दूर किया चाहता है, जो कि उसकी राय में युवकों को बहकानेवालों में शामिल है। जब ये कंटक दूर हो जायँगे तब फिर वह मुझ जैसे भी वयोवृद्ध पुरुषों पर कृपादृष्टि करेगा और यों ही लोगों के परोपकार करने के पुण्य का भागी होगा।

जिस ढंग से उसने काम करना शुरू किया है, उससे तो यही मालूम होता है।

यूथी०—शायद यह ठीक हो, पर मेरा मन तो इसे स्वीकार नहीं करता। मेरी समझ में तो वह तुम्हें कष्ट पहुँचाने की क्या कोशिश कर रहा है, मानों राज्य की जड़ में बेल डाल रहा है। पर यह तो बतलाओ, वह कहता क्या है? किस तरह तुम युवकों को बहकाते हो?

सुक०—अरे मित्र, क्या कहूँ। वह बहकाने का भी एक विचित्र ही ढंग बतलाता है। कहता क्या है कि मैं "देवताओं का सिरजनहार" हूँ। बस इसलिये वह मुझ पर जुर्म लगा रहा है कि मैं पुराने देवी-देवताओं पर आस्था न रख-कर नए नए देवताओं की पूजा चलाना चाहता हूँ।

यूथी०—ठीक है, अब मैं समझा। शायद उसका तात्पर्य उससे है जो तुम कहा करते हो कि मुझे "दैवी आवेश" हो आता है, और इसी लिये धर्म्म में एक नया संप्रदाय चलाने का वह तुम पर जुर्म लगाता है; क्योंकि यह तो वह जानता ही है कि ऐसी बातों पर लोग भेड़ियाधसान की तरह कुछ का कुछ समझ लेते हैं और बस, इसी बहाने न्यायालय में वह तुम्हें दोषी ठहराना चाहता है! खाली तुम्हें क्यों, मैं अपनी ही क्यों न कहूँ। देखो! मैं ही जब कभी सभा मे दैवी बातों का उल्लेख करता हूँ, या कोई भावी होनेवाली बात कहता हूँ तब लोग मेरी

बात हँसी दिल्लगी मे उड़ा देते हैं, मानों मैं पागल हो गया हूँ। कोई कहे तो सही, कि आज तक मैंने जो जो होने-वाली बातें कही हैं वे क्या नहीं हुईं? मारे जलन के ये लोग मरे जाते हैं। ओह! ऐसे लोगों की हमे परवाह भी न करनी चाहिए, ये हमारा कर ही क्या लेंगे?

सुक०—इन लोगों के इस तरह हँसी करने का कुछ आश्चर्य मत मानो। मेरी समझ में तो एथेंसवासियों को दूसरे को बुद्धिमान् मान लेने में कुछ आपत्ति नहीं होती। वे समझते हैं कि हाँ, अमुक मनुष्य बुद्धिमान् है। हो, अपने को क्या, पर वह तभी तक है जब तक वह बुद्धिमान् अपनी बुद्धि उन्हें सिखाने नही जाता। जहाँ उसने उन्हे अपनी बुद्धि देकर बुद्धिमान् बनाना चाहा कि बस सब ईर्ष्या या, शायद जैसे कि तुम कहते हो, और किसी सबब से उससे कुढ़ने लगते हैं।

यूथी०—मेरी बड़ी इच्छा है कि इस बारे मे एक बार मैं अपने ऊपर इन लोगों का व्यवहार अनुभव करूँ।

सुक०—यह तो होने का नहीं, क्योंकि वे लोग शायद सोचते हों कि यह तो ज्यादा किसी से मिलता जुलता नहीं और न अपनी बुद्धि दूसरे को सिखाना चाहता है, इससे छेड़ क्यों करें। पर मेरा मामला बेढब है। मुझे सब जानते हैं, क्योंकि एक ही मुहल्ले मे रहने के सबब से उन लोगों से बातचीत किए बिना मुझसे नहीं रहा जाता।

जो मिलता है उससे मैं बिना संकोच के दोस्त की तरह बिना कुछ लिए बातचीत करने लगता हूँ। इसका मुझे यहाँ तक शौक है कि अगर मैं इस लायक होता तो अपनी गाँठ से कुछ देकर लोगों को अपनी बात सुनाया करता, पर जैसे कि तुमको हँसी में ये लोग उड़ाते हैं, ऐसे ही मुझे भी यहाँ अदालत मे बुलाकर उल्लू बनाना चाहते हैं तो बनावें, मैं कोई हर्ज नहीं समझता। और कहीं नहीं तो चलो अदालत ही में हँसी दिल्लगी मे दिन बीत जायगा, पर अगर ये लोग वास्तव मे कुछ कार्रवाई करना चाहते हैं तो ईश्वर ही जाने क्या का क्या होगा?

यूथी०—अरे मित्र सुकरात! कुछ भी नहीं, होना हवाना क्या है? तुम नाहक फिक्र करते हो? देखना हम लोग दोनों अपना मुकद्दमा फतह करके यहाँ से चलेंगे।

सुक०—पर मित्र, मैं यह तो पूछना भूल ही गया, तुम्हारा कौन सा मुकद्दमा है? तुम असामी हो कि फर्यादी?

यूथी०—मैं फर्यादी हूँ!

सुक०—किसकी फर्याद है?

यूथी०—कुछ न पूछो! ऐसे की फर्याद है कि उसके विरुद्ध फर्याद करना अपने को निरा उल्लू और पागल साबित करना है।

सुक०—क्यों? क्या उसके पंख हैं? उड़ जायगा।

यूथी०—अजी नहीं, उड़ेगा क्या। मारे बुढ़ापे के अच्छी तरह चल सकता ही नहीं, उड़ना तो दूर रहा।

सुक०—आखिर वह है कौन ?

यूथी०—मेरा बाप है।

सुक०—क्या कहा ? तुम्हारे पिता हैं।

यूथी०—जी हाँ, वे ही हैं।

सुक०—उनसे तुम्हें क्या शिकायत है ? जुर्म क्या है ?

यूथी०—खून का जुर्म है!

सुक०—ओहो! ठीक है, लोग बेचारे न्याय अन्याय क्या जानें। सिवाय तुम्हारे शायद ही ऐसा कोई न्यायदर्शी बुद्धिमान् होगा जो ऐसा काम करे, जो तुम आज कर रहे हो।

यूथी०—तुम बहुत ठीक कहते हो।

सुक०—क्या जिस आदमी को तुम्हारे पिता ने मार डाला है वह तुम्हारा कोई रिश्तेदार था ? जरूर होगा, नहीं तो किसी ऐसे गैर के लिये तुम अपने सगे बाप को क्यो फँसाने लगे थे।

यूथी०—भाई सुकरात! तुम्हारी बात सुनकर तो मुझे हँसी आती है। अरे, मृत व्यक्ति मेरा रिश्तेदार हो या न हो इससे क्या ? तुम्हें तो फकत यही पूछना चाहिए था कि मारनेवाले ने मारकर उचित किया कि अनुचित ? यदि उसने उचित किया हो तो उसे छोड़ देना चाहिए, नहीं तो सगा भी क्यों न हो उसे अवश्य दंड दिलवाना चाहिए। जान बूझकर ऐसे आदमी से सहवास करोगे और उसे न्यायालय के सामने लाकर सत्य और न्याय के ऋण से उऋण नहीं होगे तो तुम भी खून करनेवाले के

पाप के भागी बने बिना छूट नहीं सकते। 'अबकी बार तो मृत व्यक्ति मेरे पड़ोस के खेत का एक ग़रीब रखवाला था। शराब के नशे मे वह मेरे एक गुलाम से बिगड़ उठा और उसने उसे मार डाला। मेरे पिता ने इसके बदले मे उसके हाथ पैर बाँध उसे गड़हे में डाल रखा और 'क्या कर्तव्य है' यह पूछने के लिये धर्माचार्य के पास आदमी भेजा। उधर आदमी भेजकर इसको खूनी असामी समझकर उसने उसकी कुछ भी सुध न ली क्योंकि उसने समझा कि ·खूनी असामी है, मर ही जायगा तो क्या हर्ज है और वास्तव मे हुआ भी यही। दूत के फिर आने तक भूख और जाड़े के मारे वह बेचारा मर ही गया और अब इस अपराध के लिये मैं अपने पिता पर जुर्म लगाता हूँ तो घर के सब लोग मय पिताजी के मुझसे बहुत चिढ़े हुए हैं। वे कहते हैं कि पिता ने उस आदमी को कभी मारा नहीं है, और अगर एक बार नहीं सौ बार भी मान लें कि मारा ही हो तो इससे क्या? क्या वह खूनी, घातक नहीं था और तुम्हें क्या पड़ी है जो ऐसे अदने से आदमी के लिये अपने सगे बाप को खून के जुर्म मे फँसाकर नाहक अधर्म के भागी बनते हो! सुना सुकरात, धर्म के विवेक मे इन लोगों की बुद्धि की दौड़ देख ली न!

सुक०—अच्छा भाई यूथीफाइरन, यह तो बतलाओ कि तुमने क्या धर्म, अधर्म और दैवी बातो का ठीक ठीक विवेक

कर लिया? क्या तुम्हें निश्चय है कि इस मामले में अपने पिता को अपराधी ठहराकर न्यायालय में घसीटने में तुम खुद तो कोई अधर्म नहीं कर रहे हो? क्या न्याय अन्याय की जाँच पड़ताल करने में तुम्हारी इतनी पहुँच है?

यूथी०—वाह जी वाह! यह तो तुमने खूब कही। अगर इन बातों को मैं सही सही समझता ही नहीं होता तो फिर मैं किस मर्ज की दवा ठहरता! तब और मामूली आदमियों से मुझमे विशेषता ही क्या होती?

सुक०—बहुत ठीक। तब तो मेरे लिये भी यही उचित है कि मैं तुम्हारा चेला हो जाऊँ और अपना मुकद्दमा शुरू होने के पहिले ही मेलीटस को इसी विषय पर बहस करने के लिये ललकारूँ। मैं कहूँगा कि मैंने खूब सोच विचारकर देखा कि दैवी बातों का ज्ञान रखना बहुत जरूरी है, और जब तुम मुझसे इसी लिये नाराज हो कि मैं देवताओं के विषय में अप्रतिष्ठाजनक बातें फैलाता हूँ तो इसमे मेरा कुछ क़सूर नहीं है। मैं यूथीफाइरन का चेला हूँ और अगर यूथीफाइरन को इन बातों का पूरा पंडित मानते हो और उसे पक्का धर्मिष्ठ समझते हो तो मुझे भी वैसा ही समझो। यदि ऐसा नहीं समझते तो मुझ पर जुर्म क्यों लगाते हो, मेरे गुरु पर जुर्म लगाओ, जो अपने बड़ों को बिगाड़ता है अर्थात् मेरे ऐसों को नए नए विचार सिखाकर बहकाता है, और खुद अपने

बाप को दुर्वचन कहकर और धमकाकर बिगाड़ता है, अर्थात् अपनी राह पर लाना चाहता है, इत्यादि। मैं ये ही सब बातें कहूँगा जिसमे वे मुझे छोड़कर तुम्हे फँसा दें। अगर उसने बात न सुनी तो फिर अदालत के सामने उसे इसी बात पर बहस करने के लिये फिर दोबारा ललकारूँगा।

यूथी०—तभी तो मजा आवेगा। मैं भी उसकी वह पोल खोलूँगा कि वह भी याद करेगा, जरा मेरे घर बयाना देकर मजा तो देखे। अपनी बात पीछे, पहले उसी के वह धुर्रे उड़ाऊँगा कि सारी अदालत जान जायगी।

सुक०—अरे यार, इसी लिये तो तुम्हे गुरु मान रहा हूँ। उसे तुम्हारे जैसे जबरदस्त का सामना तो पड़ा नहीं है, इसलिये, मुझ ही गरीब का गला घोटने को तैयार हो गया है। जानता है न कि "यह क्या है? इसे बहस मे नीचा दिखा देते ही हैं, चलो इसी को पापी बना के फँसावें"। सो तुम मुझे जरा पाप और पुण्य का मर्म, इस खून के बारे में इसका जो संबंध है, समझा दो तो अच्छा हो। मैं तो समझता हूँ धर्म सब कामों मे एक सा ही है, अर्थात् धर्म का रूप सदा हर हालत मे ज्यों का त्यों रहता है और अधर्म हमेशा हर हालत मे धर्म के विरुद्ध ही रहता है। इसका असली स्वरूप कभी नहीं बदलता। जहाँ पाप होगा वहाँ अधर्म अवश्य ही होगा।

यूथी०—बहुत ठीक कहा। यही तो है ही।

सुक०—अच्छा तो फिर पाप पुण्य का भेद तो जरा समझा दो।

यूथी०—अच्छा, लो सुनो। धर्म यह है कि जिसने कोई अपराध किया हो, चाहे वह कोई हो, अपना सगा बाप ही क्यों न हो, उसे अवश्य दंड दिलवाना चाहिए जैसा कि मैं इस समय कर रहा हूँ। अधर्म यह है कि उसे दंड न दिलवाना। मैं तुमसे यह मुकालते की बात नही कहता, इसका पक्का प्रमाण भी दूँगा। पहले कई बार लोगों के सामने इसे साबित कर भी चुका हूँ। वह यह है, धर्म यह है कि "पापी को छोड़ना नही, चाहे कोई क्यों न हो। अच्छा, जीअस ऐसा धर्मात्मा और न्यायशील देवता तो दूसरा नही हुआ है। देखो उसी ने अपने पिता क्रोनस को अपनी संतानो का भक्षण करने के अपराध मे बंधन मे डाल दिया था और क्रोनस ने भी इसी लिये अपने पिता को दंड दिया था। देखो, यह सब जान सुनकर भी लोग मुझसे ऐसा बुरा मानते हैं कि मैं अपने बाप को दंड दिलवाने की कोशिश कर रहा हूँ। देवता के लिये तो यह बात उचित मानी जाय और मेरे लिये ठीक इसके विपरीत। बलिहारी है!

सुक०—बस इसी लिये तो मैं भी अपराधी ठहराया जा रहा हूँ, क्योंकि देवताओं के बारे में जब लोग ऐसी बातें कहते हैं तो मुझे अच्छा नहीं लगता। ऐसी कहानियों में

संदेह करने ही के कारण मैं पापी समझा जाऊँ तो क्या ताज्जुब है। पर जब तुम्हारे ऐसा समझदार आदमी इन किस्सों को सच्चा मानता ही है तो मुझे क्या चारा है। मुझे भी मानना ही पड़ेगा, क्योंकि मुझे तो इतनी समझ है ही नहीं कि तुम्हारे सामने इन सब बातों के बारे में कुछ कह सकूँ पर मैं तुमसे मित्रभाव से पूछता हूँ कि क्या हकीकत मे तुम इन सब बातो को सच मानते हो?

यूथी०—हाँ जी, खाली यह तो कुछ भी नहीं है, इससे और भी अजीब अजीब बातों का मुझे पता है जिन्हें लोगों ने कभी सुना भी नहीं होगा।

सुक०—तब तो तुम वास्तव मे यह मानते हो कि देवताओं में लडाई-झगड़े, दंगे-फिसाद, मार-पीट हुआ करती है जैसा कि कवियों ने वर्णन किया है, या जैसा कि मंदिरों मे तसवीरे बनी हुई हैं, खासकर उस पोशाक पर जो चित्रकारी बनी हुई है जो कि पंथनीअक के त्योहार पर अक्रोपोलिस को ले जाई जाती है।

यूथो०—मानते तो हैं ही, और अभी मैंने कहा भी है कि तुम कहो तो और भी ऐसी ऐसी अद्भुत कहानियाँ सुनाऊँ कि तुम्हारे होश दंग हो जायँ।

सुक०—ऐसी बात है? अच्छा फिर किसी वक्त सुन लेगे। इस समय तो कृपा करके मैंने जो पूछा है उसी का ठीक ठीक जवाब देते तो अच्छा था। मैंने पूछा था कि "धर्म्म

क्या है ?" सो तो अभी तक तुमने ठीक बतलाकर मेरी दिलजमई की नहीं। तुमने फकत यही कहा कि "इस समय जो हम कर रहे हैं"—"अपने पिता को खून के लिये सजा दिलवाना" यही धर्म्म है और पुण्य का काम है।

यूथी०—सो तो है ही। तुम बहुत ठीक कहते हो।

सुक०—हो सकता है। पर और भी तो बहुत से काम 'पुण्य' के हैं।

यूथी०—हैं क्यों नहीं ?

सुक०—अच्छा, तुम फिर से याद करो। देखो मैं यह नहीं पूछता कि तुम मुझे बहुत से पुण्य कार्य्यों मे से दो चार का नाम बतलाओ, पर मैं तो पुण्य कर्म का मर्म पूछता हूँ, जिससे कि पुण्य के कुल काम असल में पुण्य कहलाने लगते हैं। मैं समझता हूँ कि तुमने अभी कहा है कि पुण्य का एक स्वरूप है। वह जिसमें हो वह कार्य्य धर्म्म का है और पाप का एक पृथक् स्वरूप है। वह जिसमें हो वह कार्य्य अधर्म्म कहलाता है। क्यों, यही न कहा था ?

यूथी०—हाँ यही कहा था।

सुक०—अच्छा तो हमें इस स्वरूप का मर्म समझा दो और यह बतला दो कि वह स्वरूप कैसा है, जिसमें कि हम उसे समझकर उसी के प्रमाण से तुम्हारी और दूसरे आदमियों की भी करतूतों का मुकाबला करके यह निश्चय कर

सकें कि इस स्वरूप से अमुक आदमी के कर्म मिलते हैं इसलिये अमुक मनुष्य का कार्य्य धर्म्मानुकूल है या इससे नहीं मिलते इसलिये धर्म्मविरुद्ध है। इसकी प्रामाणिक माप ऐसी ही कुछ होनी चाहिए।

यूथी०—हाँ हाँ, जो तुम्हारी ऐसी मनशा होगी, तो मैं वह स्वरूप भी बतला दूँगा।

सुक०—मनशा तो है ही।

यूथी०—अच्छा लो, सुनो "जिन बातों से देवता प्रसन्न हों वह पुण्य है और जिनसे नाराज हों वह पाप है"।

सुक०—वाह ! क्या कही है, यही तो हम चाहते थे। पर हमें इतनी समझ नहीं है कि तुम्हारी बात को सत्य असत्य निश्चित कर सकें। खैर, तो तुम इसे खुलासे तौर से सबूत पेश करके प्रमाणित कर ही दोगे। फिर खटका ही किस बात का है।

यूथी०—जरूर, इसमे भी कोई संदेह है ?

सुक०—अच्छा, अब हम लोगो ने जो बातें की हैं उनकी जाँच पड़ताल करनी चाहिए। देवताओं को जो चीजें पसंद हों वे पवित्र हैं और जो मनुष्य उन्हे पसंद हैं वे धर्मात्मा हैं और इसके विरुद्ध जो वस्तुएँ या मनुष्य हैं वे उन्हें नापसंद हैं अतएव वे अपवित्र और पापी हैं।

यूथी०—बहुत ठीक।

सुक०—क्यों यही है न ? यही न इसका खुलासा है ?

यूथी०—हाँ हाँ, यही तो है ही। इससे बढ़कर और खुलासा क्या होगा ?

सुक०—अच्छा भाई यूथी, यह भी तो हमीं लोग जिक्र कर रहे थे कि देवता लोगों मे लड़ाई-झगड़ा, राग-द्वेष और अनबन हुआ करती है।

यूथी०—हाँ कहते तो थे।

सुक०—पर यार, यह नही पता लगता कि किस तरह की अनबन से इन लोगों मे यह राग-द्वेष हुआ करता है ? अच्छा देखें शायद इस तरह से इसका कुछ पता लगे। अच्छा अगर हममें तुममें यह झगड़ा हो जाय कि अमुक संख्या अमुक संख्या से अधिक है अर्थात् चार दो से अधिक है, तो क्या इसके सबब से हम लोगों मे नाराजगी और शत्रुता की नौबत आनी चाहिए ? क्या फौरन् गिनती करके हम लोग अपने इस विवाद का फैसला नहीं कर लेंगे ?

यूथी०—अवश्य कर लेगे।

सुक०—और अगर इसी तरह से किसी चीज के छोटी बड़ी होने का विवाद उपस्थित हो तो हम लोग उसे नापकर विवाद तय कर लेगे। क्यों कर लेंगे न ?

यूथी०—कर ही लेगे।

सुक०—और यों ही किसी चीज़ को तौलकर वजन का झगड़ा मिटा सकते हैं न ?

यूथी०—हाँ, सो तो है ही।

सुक०—तब अब ऐसा कौन सा सवाल रहा जिसमें राय न मिलने के सबब से हमें गुस्सा आ जाय और हम एक दूसरे के दुश्मन बन जायँ? शायद तुम्हें अभी इसका उत्तर न सूझता हो। खैर, तो सुनते जाओ। भला-बुरा, उचित-अनुचित, श्रेष्ठता-नीचता, इन्हीं बातों का पचड़ा है न? इन्ही बातों के लिये ही तो हममें, तुममें और गैरों मे भी जब एक से दूसरे की राय नहीं मिलती तब झगड़ा फिसाद हुआ करता है?

यूथी०—हाँ जी, इन बातो से तो अनबन होती ही है।

सुक०—अच्छा तो फिर देवता लोग भी जब लड़ें झगड़ेंगे तब इन्हीं बातों के लिये ही न?

यूथी०—और नहीं तो क्या?

सुक०—अच्छा तो तुम कहते हो कि कुछ देवता लोग एक बात को उचित समझते हैं और दूसरे देवता दूसरी बात को धर्म्म समझते हैं। उनमें कुछ जिस बात को उत्तम समझते हैं, दूसरे उसी बात को अधर्म समझते हैं, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो उनमे इन बातों पर लड़ाई झगड़े कभी न होते।

यूथी०—सो तो है ही।

सुक०—और उनमे से हर एक जिसे अच्छा समझता है उससे प्रेम रखता है और जिसे बुरा समझता है उससे घृणा करता है। क्यों यही है न?

यूथी०—बेशक।

सुक०—पर तुम कहते हो कि उनमे से कुछ एक किसी कार्य को उचित समझते हैं और दूसरे उसी को अनुचित मानते हैं, और इसके बारे मे उनमें वाद-विवाद, लड़ाई-झगड़े सब कुछ हो जाते हैं। क्यों ऐसा ही है न ?

यूथी०—है ही।

सुक०—तब तो तुम्हारे बतलाए हुए नियम के अनुसार वही चीज पवित्र और अपवित्र दोनों ही गुणवाली हुई।

यूथी०—हाँ।

सुक०—तब तो मेरी बात का जवाब नहीं हुआ। मैंने तुमसे यह तो नहीं पूछा कि कौन सी चीज पवित्र अपवित्र दोनों गुणवाली है, लेकिन तुम्हारे कहने से ऐसा मालूम पड़ता है कि देवताओं को वही बात पसंद नापसंद दोनों ही है, तो क्या ताज्जुब है कि तुम्हारा यह काम (अपने पिता को जुर्म मे फँसाना) जीअस देवता को पसंद हो और क्रोनस और उरोनस को नापसंद हो, सप्तेश को पसंद हो और हीरी को नापसंद हो और इसके अलावे और भी कई देवताओं को, जिनकी राय एक नहीं होगी, यह कार्य्य अच्छा मालूम हो या दूसरों को बुरा मालूम हो।

यूथी०—वह चाहे जो हो पर इस पर किसी में मतभेद नहीं होगा कि यदि कोई किसी को अन्यायपूर्वक मार डाले तो उसे अवश्य दंड देना चाहिए।

सुक०—यह क्योंकर ? क्या रात दिन मनुष्यों में इसी बात पर झगड़ा नहीं होता कि अमुक मनुष्य ने खून किया है, या कोई काम अनुचित किया है, सो उसका यह काम कानून के अनुसार दंडनीय है या नहीं ?

यूथी०—हाँ, यह तो रात दिन अदालतो मे हुआ ही करता है। अपराध करके दंड से बचने के लिये लोग झूठ सच कहने और सब कुछ करने कराने के लिये तैयार रहते हैं।

सुक०—क्या वे लोग यह बात मंजूर कर लेते हैं कि "हमने अपराध किया है" और फिर ऐसा कहकर भी यह कहते हैं कि हमें दंड नहीं मिलना चाहिए ?

यूथी०—नहीं, ऐसा तो नहीं कहते।

सुक०—तब वे लोग, जैसा कि तुम कहते हो, सब कुछ कहने और करने कराने को तैयार नहीं रहते। मैं जहाँ तक समझता हूँ, वे अपने मुँह से अपराध स्वीकार करके "हमें दंड न हो" ऐसा कहने की हिम्मत नहीं कर सकते। बात असल में यह है कि लोग अपराध स्वीकार ही नहीं करते। लोग यह मानते ही नहीं कि हमने अमुक काम बुरा किया है या अनुचित किया है। क्यों, यही है न?

यूथी०—हाँ, हाँ, तुमने बहुत ठीक कहा।

सुक०—तो फिर देवताओं का भी यही हाल है। उचित अनुचित के लिये जब वे आपस मे लड़ते होंगे तब एक कहता होगा कि यह कार्य्य उचित है, दूसरा कहता होगा

कि नहीं अनुचित है। बस, इसी बात पर झगड़ा चलता होगा और यह बात तो असंभव है कि अपराध स्वीकार करके फिर कोई कहे कि हमे दंड नहीं मिलना चाहिए, चाहे वह देवता ही क्यों न हो।

यूथी०—हाँ, सो तो ठीक ही है।

सुक०—अच्छा तो झगड़नेवाले-चाहे देवता हों या मनुष्य, जब झगड़ेंगे तब हर एक अलग अलग बात पर झगड़ेगा। जब किसी बात पर वे झगड़ेंगे तब उनमे से कुछ कहेंगे कि यह उचित धर्म्मानुकूल हुआ है, कुछ कहेंगे कि नही अनुचित धर्म्म-विरुद्ध हुआ है। क्यों यही न होगा?

यूथी०—हाँ।

सुक०—अच्छा तो फिर अब यह मुझे अच्छी तरह समझा दो। इस बात का तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि अगर "एक मजदूर दूसरे किसी के सेवक को मार डाले और उस सेवक का स्वामी उस मजदूर को कैद करके विद्वानों से उसके दंड-विधान की राय पूछने को आदमी भेजे और उसी बीच में वह कैदी मजदूर मर जाय" तो कैद करनेवाले स्वामी को सब देवता अपराधी ठहरावेगे? तुम किस तरह यह विवेक करते हो कि पुत्र के लिये पिता को ऐसे काम में अपराधी ठहराकर खून का जुर्म लगाना उचित या न्यायानुकूल है? इसे जरा सोच समझ के साफ तौर पर मेरे दिल मे बैठा दो कि सब देवता

अवश्य ही तुम्हारे इस कार्य को धर्मानुकूल समझने में सहमत हैं। अगर तुमने मेरी दिलजमई कर दी तो मैं भी कहूँगा कि "हाँ देखो तो बुद्धिमानी इसे कहते हैं"!

यूथी०—मैं तुम्हें ये सब बातें साफ साफ समझा सकता हूँ, पर बड़ी देर लगेगी।

सुक०—वाह जी! तुमने क्या जजों से भी मुझे सुस्त ठहरा लिया? उन्हे तो तुम यह बात खुलासा करके समझाओगे कि तुम्हारे पिता ने अधर्म किया है और ऐसे काम को सब देवता एक सम्मति से बुरा समझते हैं।

यूथी०—अगर वे मेरी बात मानेंगे तो जरूर समझाऊँगा।

सुक०—अगर तुम्हारी बात ठीक होगी तो वे अवश्य ही मानेंगे। पर जब तुम बोल रहे थे तब अपने आप ही मेरे मन मे यह प्रश्न उठा कि "मान लो कि यूथी ने खूब साफ तौर से यह बात साबित कर दी कि सब देवता ऐसे काम को अनुचित समझते हैं" तो इससे धर्म अधर्म की मीमांसा क्या होगी? शायद यही एक काम ऐसा है कि जो देवताओं को नापसंद हो, पर अभी हम ऊपर देख चुके हैं कि धर्म अधर्म का भेदाभेद इस प्रकार किया नहीं जा सकेगा, क्योंकि यह तो मालूम हो ही चुका है कि जो बात देवताओं को नापसंद है वही पसंद भी है। इसलिये इस बात की बहस छोड़कर, मैं यह मान लेता हूँ कि तमाम देवता एक सम्मति से तुम्हारे पिता के इस

काम को अनुचित मान लेंगे, और इससे घृणा प्रकट करेंगे। पर इससे क्या हमारे तर्क का मानदंड ठीक हो जायगा कि जिस बात से वे सब घृणा करें वह अधर्म है और जिससे वे प्रीति करें वह धर्म है? जिसे कुछ देवता पसंद करें और कुछ नापसंद करें वह क्या होगा? या तो वह धर्म-अधर्म दोनों ही होगा या दोनों में से एक भी न होगा। क्या तुम धर्म-अधर्म को इसी प्रणाली से स्पष्ट किया चाहते हो?

यूथी०—और नहीं तो क्या?

सुक०—हमें तो कुछ नहीं है पर तुम्हीं विचारकर देखो कि सूत्र का अवलंबन करके तुम मुझे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सब ठीक ठीक समझा सकोगे।

यूथी०—अच्छा ठीक है, मैं यह कहता हूँ कि "जिसे सब देवता चाहते हैं वह धर्म है और सब देवता जिससे नफरत करते हैं वह अधर्म है"।

सुक०—बस, इसी व्याख्यान की जाँच पड़ताल करनी है न। मैं या और लोग जो दावा पेश करें या हम आप ही जो कुछ कहें उसे बिना कुछ पूछपाछ किए मान लेना है या इस दावे की उलट पलटकर खूब जाँच पड़ताल करनी है, क्यों तुम क्या चाहते हो?

यूथी०—नहीं, नहीं, जाँच पड़ताल जरूर करेंगे पर इतना कहूँगा कि अबकी बार मैंने जो दावा पेश किया है वह बिल्कुल सही है।

सुक०—मित्रवर ! यह तो अभी थोड़ी ही देर में साफ हुआ जाता है। अच्छा तो अब इस प्रश्न पर जरा ध्यान दो तो। "देवता लोग धर्म (पवित्रता) को पवित्र होने के सबब से चाहते हैं या वे किसी बात को चाहते हैं इसलिये वह पवित्र मानी जानी चाहिए, अर्थात् वे पवित्रता को चाहते हैं या वे जिसे या जो कुछ चाहे या पसंद करे वही पवित्र है"?

यूथी०—भाई, मैं तुम्हारी बात को ठीक ठीक समझा नहीं।

सुक०—अच्छा मैं और खुलासा किए देता हूँ। हम प्रायः यह कहा करते हैं कि अमुक वस्तु चल सकती है, चल रही है। देखी जा सकती है, दिख रही है; इससे तुम समझ तो जरूर जाते होगे कि चल सकती है और चल रही है, देखी जा सकती है और दिख रही है, इसमे क्या फर्क है ?

यूथी०—समझ क्यो नहीं जाते हैं, समझते ही हैं।

सुक०—और हम यह भी तो कहते हैं कि अमुक वस्तु प्यारी है, प्यारी लगने के लायक है या अमुक वस्तु प्यारी लगती है, प्रेम का आकर्षण करती है। तात्पर्य यह है कि कोई चीज प्रेम का आकर्षण करने की शक्ति रखती है (पर किसी कारण से लोगो की निगाह उस पर पड़ी नहीं कि वह प्रेम का आकर्षण करती) या कोई वस्तु प्रेम-आकर्षण करती है (लोगो की निगाह उस पर पड़ गई है), इसका फर्क तो समझते हो न ?

यूथी०—हाँ; क्यों नही।

सुक०—अच्छा तो मुझे अब यह बताओ, कि जो चीज चल सकती है वह चल भी रही है ऐसा क्या कह सकते हैं, केवल इसी कारण से कि वह चल सकती है ?

यूथी०—नहीं, ऐसा क्योंकर कहा जा सकता है ? जब वह चलेगी तभी कहा जायगा कि चल रही है।

सुक०—हाँ, तो अब तुम हमारा अभिप्राय समझ गए न। मैं यह कहता हूँ, कि कोई चीज प्रेम पाने के लायक या चाहने लायक हो सकती है पर वह जब तक किसी के प्रेम को न पावे या उसकी प्रीति का गुण प्रकट न हो तब तक क्या उसे प्रीति कह सकते हैं ?

यूथी०—नहीं कह सकते।

सुक०—अच्छा तो फिर यहाँ भी वही बात आई। किसी चीज को कोई, प्यारी न होने के कारण, प्यार नहीं करता। प्यारी हो तो प्यार करता है या यह कहोगे कि किसी के प्यार करने ही से वह चीज़ प्यारी कहलावेगी।

यूथी०—प्यारी होगी तभी वह प्यार करेगा, प्यार करने ही से सर्वथा 'प्यारी' थोड़े ही हो जायगी।

सुक०—अच्छा तो फिर पवित्रता के बारे में क्या कहा जाय ? तुम्हारी व्याख्या के अनुसार यह वही वस्तु है न जिसे सभी देवता चाहते हैं ?

यूथी०—हाँ।

सुक०—केवल इसके पवित्र होने ही से या और भी कोई कारण है ?

यूथी०—नहीं, केवल पवित्र होने ही के कारण।

सुक०—तब तो यह पवित्र है इसलिये देवता चाहते हैं, न कि देवता इसे चाहते हैं इसलिये इसे पवित्र मानना चाहिए। ऐसा तो है नहीं ?

यूथी०—हाँ, मालूम तो ऐसा ही पड़ता है।

सुक०—तब तो जो देवताओ के पसंद आने लायक चीज है उसी को वे चाहते हैं और वह है भी ऐसी ही प्रीति की और गुणवाली जिससे देवता उसे चाहते हैं।

यूथी०—बहुत ठीक !

सुक०—सब देवताओं को जो पसंद हो वही पवित्र (धर्म) नहीं ठहरा, और देवता जो कुछ पसंद करे या कर लें उसी को पवित्र नहीं कह सकते, जैसा कि तुमने कहा है। वह तो (पवित्रता) कोई दूसरी ही चीज होगी।

यूथी०—ऐसा क्यों ?

सुक०—क्योंकि यह बात हम लोगो में तय पा चुकी है, कि देवता लोग धर्म को पवित्र होने ही के कारण पसंद करते हैं, केवल उनके पसंद करने ही से कोई चीज पवित्र नहीं हो सकती। क्यों ऐसा ही है न ?

यूथी०—है तो ऐसा ही।

सुक०—तब तो जो देवताओं के पसंद लायक चीज है उसी को वे पसंद करते हैं अर्थात् वह चीज अपनी उक्त योग्यता रखने के कारण ही देवताओ को पसंद आती है ?

यूथो०—और नहीं तो क्या ? सो तो है ही।

सुक०—तो फिर पवित्रता (धर्म्म) देवताओं को प्रिय नहीं ठहरी और देवताओं को जो कुछ प्रिय है वही धर्म्म नहीं है, जो कि तुम्हारा दावा है। ये दोनों वस्तुएँ भिन्न भिन्न हैं।

यूथो०—ऐसा क्यों ?

सुक०—क्योंकि यह बात हम लोगों में तय पा चुकी है कि किसी वस्तु के पवित्र होने ही के कारण देवतागण उसको पसंद करते हैं, केवल उनके पसंद आने ही से कोई वस्तु पवित्र नहीं हो सकती। क्यों ऐसा ही है न ?

यूथो०—हाँ।

सुक०—और उन्हें कोई वस्तु प्यारी उनके प्यार ही के कारण से है और ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि उन्हें अमुक वस्तु प्रिय है और वे उसे प्यार नहीं करते।

यूथो०—बहुत ठीक।

सुक०—तो फिर मित्रवर! पवित्रता और देवताओं को जो (वस्तु) प्रिय है ये दोनों एक वस्तु नहीं ठहरतीं, भिन्न भिन्न चीजें हैं। यदि देवता पवित्रता ही को प्यार करते होते तो पवित्र जनों को भी अवश्य प्यार करते, क्योंकि उन्हें (पवित्र) जनों की भी पवित्रता प्रिय है, पर जो पवित्र जनों को प्रिय है वह यदि देवताओं को भी प्रिय होती तो उनके प्रिय होने के कारण पवित्रता भी पवित्र होती, पर सो तो है नहीं। यह तो ठीक इसके विपरीत

है। दोनों भिन्न भिन्न हैं, क्योंकि एक तो इस प्रकार की है (जो देवताओं को प्रिय है) अर्थात् प्रिय है क्योंकि प्रीति पाती है, और दूसरी प्रीति पाकर प्रिय होती है। मैंने यह पूछा था कि "पवित्रता क्या है?" पर तुमने हमें इसका मर्म (तत्त्व) समझाया नहीं, तुम केवल इसका एक गुण वर्णन करके बस चुप रह गए अर्थात् यह "सब देवताओं को प्यारी है"। तुमने यह नहीं बतलाया कि वास्तव में "वह है क्या?" देवता पसंद करें या न करें, या और भी इसमे सत्तर प्रकार के गुण हों हमे इससे क्या मतलब? हम यह बात साफ किया चाहते हैं कि पवित्रता (धर्म्म) क्या है और अपवित्रता (अधर्म्म) क्या है?

यूथी०—मैं तुम्हें क्योंकर अपने हिए का मर्म समझाऊँ, कुछ समझ में नहीं आता। जो कुछ हम कहते हैं या जो बात पकड़ते हैं वह ठहरती नहीं है, चक्र की तरह घूमती रहती है।

सुक०—तुम्हारा दावा या तुम्हारी व्याख्या भी मेरे पुरुषा दाऊ-दयालजी (डाएडेलस) की तरह है। यदि यही बात मैंने कही होती या इस प्रकार से उक्त व्याख्या उपस्थित की होती तो तुम मेरी पूरी चिग्घी उड़ाते और कहते कि हाँ "बहुरंगी दयालजी के वंशधर न हो। इसी लिये घड़ी घड़ी रंग बदलते हो, एक पर स्थिर नहीं रहते"। पर गनीमत हुई कि यह सब व्याख्या तुम्हारी की हुई है।

इसी लिये मसखरी उड़ाने का कोई मौका तो है नहीं। तुम स्वयं ही देख रहे हो एक बात स्थिर होने ही नहीं पाती।

यूथी०—वाह ! मसखरी उड़ाने का मौका नहीं क्या है ? यह तुम्हारी ही करतूत है कि कोई बात तय नहीं होने पाती। तुम दाऊदयालजी के अवतार हो, यदि मेरी व्याख्या मानी जाय तो फिर कुछ झगड़ा रहे ही काहे को।

सुक०—वाह यार ! तुमने तो मुझको दाऊदयाल से भी बढ़कर कारीगर ठहरा दिया। वे तो अपनी ही बनाई हुई चीजो को घुमाते फिराते थे, पर मैं दूसरो की चीजों को भी घुमा फिरा, उलट पलट कर सकता हूँ और मजा यह है कि बुद्धिमानी जबरदस्ती मेरे सिर मढ़ी जाती है। मैं तो यही चाहता हूँ कि एक दयालजी क्या सौ दयालजी क्यों न आवे पर हम लोगों की बातें अचल रहें ! खैर जाने भी दो, इन बातो मे क्या तत्त्व रखा है। हमे तो असली बात से मतलब है। मैं अपने भरसक तुम्हें सहायता पहुँचाने मे कसर नही रखूँगा जिसमें तुम मुझे किसी न किसी तरह (धर्म्म) समझा सको, क्योंकि मैं देखता हूँ कि तुम्हें इसकी कुछ ऐसी फिक्र नहीं है। नाराज मत हो। धीरे, धीरे। अच्छा यह तो बताओ कि धर्म्म या पवित्रता सबकी सब न्यायशील (उचित) अवश्य है न ?

यूथी०—जरूर है।

सुक०—अच्छा तो फिर क्या सब न्याय भी पवित्र अवश्य होगा, या सब पवित्रता के न्याय होने पर न्याय का एक भाग पवित्र और दूसरा भाग कुछ और है।

यूथी०—मैं तुम्हारा तात्पर्य नहीं समझा।

सुक०—ऐसा क्यों? क्या उम्र में या बुद्धि मे किसी बात मे तुम मुझसे किसी तरह हीन हो? मैंने ठीक कहा था कि तुममें इतनी ज्यादा बुद्धि है कि तुम इन सब बातों में उसे खर्च करना व्यर्थ समझते हो। मित्रवर, समझने की कोशिश करो, मैं तुमसे पहेली नहीं पूछता हूँ। किसी कवि ने जो बात कही है मेरा तात्पर्य ठीक उसके विपरीत है। कवि ने कहा है "जहाँ भय होगा वही श्रद्धा भी होगी"। पर मैं इस कवि की बात को नही मानता। क्यों नही मानता, बतलाऊँ?

यूथी०—हाँ, हाँ।

सुक०—मैं इस बात को ठीक नहीं समझता कि जहाँ भय होगा वहाँ श्रद्धा भी होगी। मैं रात दिन देखता हूँ कि बहुत से लोग महामारी, अकाल इत्यादि से डरते हैं, पर उस पर श्रद्धा नही रखते। तो फिर जहाँ भय रहा वहाँ श्रद्धा कहाँ रही? क्यों मैं ठीक कहता हूँ न?

यूथी०—ठीक।

सुक०—पर हाँ यह अवश्य देखने मे आता है कि जहाँ श्रद्धा रहती है वहाँ भय भी रहता है। देखो बड़ों के सामने,

जिन पर हम श्रद्धा रखते हैं, हमें पाप करते भय या लज्जा अवश्य आती है। इसी से समझ लो, जहाँ श्रद्धा रहती है वहाँ भय भी रहता है और यह कहना सरासर गलत है कि जहाँ भय होगा वहाँ श्रद्धा भी होगी। पर श्रद्धा हमेशा भय के साथ नहीं रहती क्योंकि भय का घेरा श्रद्धा से अधिक फैला हुआ है। यह भय का एक हिस्सा है, जैसे कि 'ताक' (असमान संख्या) संख्या का एक हिस्सा है, क्योंकि जहाँ 'ताक' होगा वहाँ संख्या अवश्य ही होगी, पर यह कोई आवश्यक नहीं है कि जहाँ संख्या हो वहाँ "ताक' (असमान संख्या) अवश्य हो। अब समझ गए न?

यूथी०—हाँ।

सुक०—अच्छा तो फिर मैं भी वही पूछता हूँ, कि जहाँ जहाँ न्याय (इंसाफ) है वहाँ क्या हमेशा पवित्रता रहती है? अथवा जहाँ हमेशा न्याय है वहाँ पवित्रता हो भी पर ऐसा भी होता है कि जहाँ न्याय है वहाँ हमेशा पवित्रता नहीं रहती क्योंकि पवित्रता तो न्याय का केवल एक हिस्सा मात्र है। क्यों यही बात है न, या और कुछ?

यूथी०—हाँ, ठीक है।

सुक०—अच्छा, तो अब दूसरी बात लो। यदि पवित्रता न्याय का एक हिस्सा है तो हमें यह भी बतलाना पड़ेगा कि वह कौन सा हिस्सा है? मान लो कि यदि तुमने

मुझसे अभी पूछा होता कि 'ताक' संख्या का कौन सा भाग है तो हम कहते कि जो संख्या बराबर न हो उसी को 'ताक' कहते हैं। क्यों यही है न ?

यूथी०—हाँ।

सुक०—अच्छा तो तुम हमे बतला सकते हो कि न्याय का कौन सा भाग पवित्र है ? बतला दो तो बड़ा अच्छा हो, फिर मुझे भी कुछ भय न रहे। मैं बेखटके मेलीटस से कहूँ कि अब मैंने यूथीफाइरन से अच्छी तरह सीख लिया है कि पाप और पुण्य क्या है, अब तुम मुझे अन्याय से अपराधी नहीं ठहरा सकते।'

यूथी०—अच्छा लो सुनो। पवित्रता और पुण्य न्याय का वह हिस्सा है जो देवताओं के प्रति ध्यान देने अथवा खबरदारी से संबंध रखता है, अर्थात् देवताओं के प्रति हमारा जो कर्त्तव्य है उसके साधन करने से जो संबंध रखता है; और बाकी का हिस्सा वह है जो मनुष्यों के प्रति कर्त्तव्य-साधन से संबंध रखता है।

सुक०—जवाब तो तुमने अच्छा दिया। पर एक छोटी सी बात छूट गई है जिसे मैं पूछकर और भी तसल्ली कर लिया चाहता हूँ। असल मे मैं ठीक समझा नहीं कि वह 'ध्यान देना' अथवा 'कर्त्तव्यसाधन' क्या है जिसके विषय में तुम कह रहे हो ? यह तो होगा ही नहीं कि और वस्तुओ के प्रति हम जो ध्यान देते या खबरदारी

करते हैं वैसे ही 'ध्यान या खबरदारी या कर्त्तव्यसाधन' से देवताओं के संबंध में भी तुम्हारा तात्पर्य है। जैसे कि दृष्टांत के तौर पर देखो। यह तो हम खूब जानते हैं कि घोड़ों के प्रति 'कर्तव्य' या उनकी खबरदारी करना घोड़ों का शिक्षक (अश्वपालक) खूब जानता है।

यूथी०—बेशक।

सुक०—क्योंकि 'अश्वविद्या' से तात्पर्य उसी विद्या से है जिसका संबंध घोड़ों के पालन, रक्षण या उनके प्रति जो कर्त्तव्य हैं उन्हें करने से है।

यूथी०—हाँ।

सुक०—और यह भी तो ठीक है न, कि शिकारी के अलावे 'कुत्तों' के प्रति जो कर्त्तव्य है उसे और लोग कम जानते हैं अर्थात् शिकारी के "इल्म" या आखेट-विद्या से तात्पर्य उसी विद्या से है जो 'कुत्तों की खबरदारी' करने से संबंध रखती है।

यूथी०—यह तो ठीक है।

सुक०—वैसे ही 'चरवाही-विद्या' से तात्पर्य उसी विद्या से है जिससे चरनेवाले पशुओं की खबरदारी होती है, उन पर मुनासिब ध्यान दिया जाता है, या यों कहो कि उनके प्रति जो कर्त्तव्य है उसका उचित पालन किया जाता है।

यूथी०—बेशक ऐसा ही है।

सुक०—और तुम्हारा यह कहना है कि 'पवित्रता या पुण्य वह है जिससे कि देवताओं की खबरदारी (उनके प्रति कर्त्तव्यसाधन) होती है'।

यूथी०—हाँ।

सुक०—अच्छा तो सब तरह की खबरदारी से तात्पर्य तो एक ही है न? क्या इससे यही तात्पर्य है कि जिसके प्रति यह यत्न किया जाता है उसकी भलाई हो, उसे फायदा पहुँचे, जैसे कि यत्न करने से घोड़ों को फायदा पहुँचता है, उनकी नस्ल की तरक्की होती है? सारांश यह कि 'अश्वविद्या' का ठीक उपयोग होने से घोड़ों की सब तरह से उन्नति होती है।

यूथी०—अवश्य होती है।

सुक०—इसी तरह से शिकारी के 'करतब' से कुत्तों को फायदा पहुँचता है, उनकी उन्नति होती है और गाय बैलों को ग्वालों के इल्म से लाभ पहुँचता है। यह बँधी बात है। यह तो है ही नहीं कि जिसके प्रति यत्न किया जाता है उससे उसे हानि पहुँचाने या कष्ट देने का अभिप्राय हो।

यूथी०—नहीं जी, ऐसा क्यों होगा?

सुक०—उसे फायदा पहुँचाने ही से मतलब है न?

यूथी०—निस्संदेह।

सुक०—अच्छा, तो फिर यह भी तुम्हारा कहना है कि पुण्य या धर्म्म का मतलब देवताओं की खबरदारी करना है।

यूथी०—बेशक।

सुक०—अच्छा, ते। खबरदारी सबकी एक ही तरह न होती है? मतलब यह कि जिसकी खबरदारी की जाती है उससे उसको फायदा पहुँचता है, जैसे कि घोड़े की खबरदारी की जाय ते। घोड़े को फायदा पहुँचेगा, उसकी तरक्की होगी, अश्वपालक की विद्या का यही काम न है? क्यों मैं ठीक कहता हूँ कि गलत?

यूथी०—ठीक कहते हो।

सुक०—उसी तरह से शिकारी के हुनर से कुत्तों को फायदा पहुँचता है, उनकी तरक्की होती है, और चैापायों को चरवाहे के हुनर से फायदा पहुँचता है। क्यों इसका उपयोग सब जगह एक ही सा लाभकारी साबित होता है न? कहीं ऐसा ते। नही होता कि इस खबरदारी से, जिसकी खबरदारी की जाती है, उसे किसी तरह का कष्ट हो या नुकसान पहुँचे?

यूथी०—नहीं जी, ऐसा भला क्योंकर हो सकता है?

सुक०—फायदा हो न पहुँचता है?

यूथी०—बेशक।

सुक०—ते। क्या 'धर्म्म' वह हुनर है, जिसके द्वारा हम देवताओं की खबरदारी करके उन्हें फायदा पहुँचाते हैं या उनकी तरक्की करते हैं? तुम क्या यह बात मानते हो कि कोई पुण्य का काम करने से हम किसी देवता को सुधार देते हैं या पहले से उसकी कुछ तरक्की कर देते हैं?

यूथी०—नहीं, बिलकुल नहीं।

सुक०—ठीक है, मुझे भी पूरा विश्वास है कि तुम ऐसा नहीं मानते हो। इसी लिये तो मैंने पूछा था कि "देवताओं के प्रति कर्त्तव्य" से तुम्हारा तात्पर्य क्या है? यह तात्पर्य्य तो हरगिज न होगा।

यूथी०—बहुत ठीक! मेरा यह तात्पर्य्य बिलकुल नहीं था।

सुक०—अच्छा, तो फिर क्या तात्पर्य्य था? देवताओं के प्रति 'किस प्रकार के कर्तव्य' को पुण्य या धर्म्म कहा जाय?

यूथी०—यही, जैसा कि गुलामों का अपने मालिक के प्रति कर्तव्य है।

सुक०—ठीक, मैं समझ गया। अर्थात् यह देवताओं की एक गुलामी है या उनकी सेवा करना है।

यूथी०—बेशक।

सुक०—अच्छा, अब तुम मुझे एक बात बतलाओ। जिस हुनर से डाक्टर का काम निकलता है (या यों कहो कि जो हुनर उसकी सेवा करता है) उसका नतीजा क्या है? क्यों, नतीजा तो तंदुरुस्ती ही न है?

यूथी०—बेशक।

सुक०—अच्छा! और जो हुनर जहाज बनानेवाले की सेवा करता है या जिस हुनर से जहाज बनानेवाले का काम निकलता है, उससे क्या पैदा होता है?

यूथी०—जहाज पैदा होता है या जहाज बनता है, और क्या होगा?

सुक०—उसी प्रकार से मेमार (पेशराज) के हुनर का फल इमारत है। क्यों है न ?

यूथी०—है ही।

सुक०—अच्छा, तो मित्रवर ! अब यह बतलाइए कि देवताओं की सेवा करने का जो हुनर है उससे क्या पैदा होता है ? कौनसा नतीजा निकलता है ? तुम इस बात को जरूर जानते होगे; क्योंकि तुम कह चुके हो कि 'मैं औरों से दैवी बातों मे ज्याद: दखल रखता हूँ"।

यूथी०—बेशक, रखता हूँ।

सुक०—वाह ! वाह ! फिर क्या कहना है। बस लगे हाथ बतला ही डालो कि वह कौन सा नतीजा है जिसके पैदा करने या निकालने के लिये देवताओं को हमारी सेवा की जरूरत पड़ती है।

यूथी०—बड़े बड़े उत्तम और श्रेष्ठ नतीजे हैं। इसके बहुत से उत्तम फल हैं।

सुक०—हाँ, ठीक वैसे ही बहुत से श्रेष्ठ फल या नतीजे एक सेनापति द्वारा भी उपजाए जाते हैं। अर्थात् एक सेनापति की कारवाई द्वारा भी होते हैं, पर सब नतीजों की सिरताज तो युद्ध मे विजय या जीत ही न है ? क्या मैं ठीक नहीं कहता हूँ ?

यूथी०—ठीक है।

सुक०—वैसे ही मैं कह सकता हूँ कि किसान भी बहुत से उत्तम फलों का कारण होता है, पर सबका सिरताज फल तो यही है कि वह धरती से अन्न पैदा कर देता है।

यूथी०—बहुत ठीक।

सुक०—अच्छा, तो फिर देवताओं की कार्रवाई से जो बहुत से श्रेष्ठ फल पैदा होते हैं उनमें से सबका सिरताज, मुख्य या निचोड़, फल या परिणाम क्या है? अर्थात् इससे कौनसा खास प्रयोजन सिद्ध होता है?

यूथी०—अरे भाई, सुकरात! तुमसे तो मैं अभी कह ही चुका हूँ कि इन सब बातों का असली मर्म समझना हँसी खिलवाड़ नहीं है; पर तो भी मैं तुम्हें एक आम बात बतलाए देता हूँ। वह यह है कि "यदि किसी आदमी को यह निश्चय है कि मनसा, वाचा, कर्म्मणा उसकी प्रार्थना, यज्ञ-आहुति, पूजा इत्यादि देवताओं को स्वीकार है, तो उसके ये ही कर्म 'पवित्र' हुए; इससे यह फल होता है कि सर्वसाधारण की भलाई बनी रहती है, उनकी कुशल-क्षेम रक्षित रहती है, जैसे कि एक विशेष गृहस्थ की इससे भलाई होती है और उस पर दुःख नहीं आता, वह आपत्ति और विपत्ति से बचा रहता है। ठीक इसी से विपरीत जो क्रिया है वह 'अपवित्र' है, जो देवताओं को स्वीकार नहीं है और जिसके करने से नाना प्रकार के दुःख और आपत्तियाँ प्राणियों पर आती हैं।

सुक०—बहुत ठीक, इतने फेर फार करने की क्या जरूरत थी। तुम चाहते तो दो ही बातों मे मेरी बात का जवाब दे देते; पर मैं देखता हूँ कि तुम मुझे सिखाना नहीं चाहते, क्योंकि ठीक उसी मौके पर जब तुम यह बात कहा ही चाहते थे, जो मैं तुमसे इतनी देर से पूछ रहा हूँ, तुम चुप हो गए। अगर तुम कहते चलते तो अब तक मैंने तुमसे सीख लिया होता कि 'पवित्रता' क्या है। अच्छा तो मैं फिर से पूछता हूँ। जिस तरफ तुम मुझे ले चलोगे, जाना पड़ेगा। खैर, तो तुम यह बतलाओ कि जब तुम 'पवित्र' या 'पवित्रता' कहते हो तब उससे क्या मतलब समझते हो? इससे क्या यज्ञ, प्रार्थना और पूजा की एक विद्या या विधि से मतलब नहीं है?

यूथी०—यही मतलब है।

सुक०—यज्ञ का मतलब यही है कि देवताओं को कुछ देना और प्रार्थना का मतलब है उनसे कुछ माँगना। क्या यही है या और कुछ?

यूथी०—यही है।

सुक०—तो क्या तुम्हारे कहने का तात्पर्य यह है कि देवताओ से माँगने और देने की जो विधि या विद्या है वही पवित्रता या धर्म है?

यूथी०—और क्या? यह तात्पर्य तो है ही। अब इतनी देर में तुम मेरी बात समझे।

सुक०—समझूँगा क्यों नहीं। जब मैं तुम्हारी विद्याबुद्धि से लाभ उठाने की ठान चुका हूँ और उसी तरफ मन लगाए हुए हूँ, तो क्या समझूँगा नहीं, खूब समझूँगा। तुम्हारी अदनी बात भी वृथा नहीं जाने दूँगा। अच्छा भाई साहिब, यह तो बतलाओ कि देवताओं की सेवा करना किसे कहते हैं? क्यों, यही न कि उनको कुछ देना या उनसे कुछ माँगना?

यूथी०—यही है।

सुक०—तो उनसे वही माँगना उचित होगा, जिसकी हमें जरूरत हो?

यूथी०—बेशक।

सुक०—और उनको जिस बात की जरूरत हो, वही उनको देना भी उचित होगा? ऐसी चालाकी तो करनी है ही नहीं कि जिस आदमी को जिस चीज की जरूरत नहीं उसे बलात् वह चीज नजर की जाय।

यूथी०—नहीं, ऐसा तो सर्वथा अनुचित है।

सुक०—तो फिर तुम्हारे कहने मुताबिक 'पवित्रता' या 'धर्म्म' देवता और मनुष्यों के बीच एक प्रकार का व्यापार ठहरा।

यूथी०—खैर, जो चाहो कह लो।

सुक०—नहीं भाई, जो चाहे क्या कह लें। जो यथार्थ होगा वही कहेंगे; पर यह मेरी समझ मे नहीं आता कि हम लोगों से कुछ चीजें पाकर देवताओं को फायदा क्या

पहुँचता है ? हमें उनसे चीजें मिलकर जो फायदा पहुँचता है वह तो स्पष्ट ही है। जो कुछ अच्छी चीजें हैं, सब उन्हीं से मिली हैं। पर हमारे देने या दान से उन्हें कौन सा फायदा पहुँचता है ? क्या उनसे व्यापार करने में हमें इतना गहरा मुनाफा है कि हमे सब अच्छी चीजे मिल जाती हैं और बदले में देना कुछ नहीं पड़ता ?

यूथी०—वाह भाई सुकरात ! तुम्हारी भी अजीब समझ है, क्या हमारी भेंट से देवताओं को कुछ फायदा पहुँचता है?

सुक०—पर वह भेंट क्या है, जो हम देवताओं को देते हैं ?

यूथी०—भेंट और क्या होगी। यही भक्ति और श्रद्धा, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ और जो देवताओं को सर्वथा स्वीकार है।

सुक०—अच्छा, तो 'पवित्रता' देवताओं को सर्वथा स्वीकार है, पर उससे उनको कुछ फायदा नहीं पहुँचता या वह उनको प्यारी नहीं है ?

यूथी०—वाह ! प्यारी क्यो नही है ? इससे बढ़कर उन्हें और कोई वस्तु प्यारी नहीं है।

सुक०—अच्छा, तो तात्पर्य्य यह निकला कि पवित्रता या धर्म्म वह वस्तु है जो देवताओं को प्यारी है।

यूथी०—बहुत ठीक।

सुक०—अब मैं क्या कहूँ ? अब मैं तुम्हे यह निश्चय करा दूँ कि तुम जो दावा पेश करते हो या जो तर्क की

विधि निर्देश करते हो वह एक जगह ठहरती नहीं। कभी इधर कभी उधर जाती रहती है। अब तुम मुझे दाऊदयाल मत कहना, जब कि तुम खुद दाऊदयाल से बढ़कर ऐसे चतुर हो कि तुम्हारी युक्तियाँ चक्र की तरह इधर से उधर घूमती रहती हैं। देखो, हम लोग जहाँ से चले थे फिर चक्र की तरह घूमकर वहीं आ पहुँचे। तुम्हें जरूर याद होगा कि यह बात हम लोगों में तय पा चुकी है कि "देवताओं को जो वस्तु प्यारी है" और "पवित्रता या धर्म्म" ये दोनों एक चीज नहीं हैं। क्यों याद है कि भूल गए ?

यूथी०—खूब याद है।

सुक०—अच्छा, तो अब तुम फिर वही कह रहे हो कि 'देवता जिसे प्यार करते हैं' वही 'पवित्र' है। देवता जिसे प्यार करते हों या देवताओं को जो प्रिय हो, ये दोनों चीजे तो एक ही न हुईं ?

यूथी०—जरूर।

सुक०—तो फिर, या तो हम लोगों का पहला निश्चय गलत था, और यदि गलत नहीं था तो अब का निश्चय गलत है।

यूथी०—ऐसा ही तो मालूम पड़ता है।

सुक०—तो अब फिर नए सिर से आरंभ करना पड़ा और 'पवित्रता क्या है' इसकी छानबीन करनी पड़ी। विना इसका पूरा पता लगाए मैं हटने का नही। मुझे नालायक

न समझकर मेरे प्रश्न को खूब ध्यान देकर सुनिए और अबकी मुझे इसका यथार्थ मर्म समझा दीजिए; क्योंकि सिवा आपके और इस बात का ज्ञाता कोई नहीं है। अस्तु, तुम्हारे ऐसे वेदव्यास को पाकर अब मैं बिना सीखे तुम्हें छोड़ने का नहीं। यह तो सर्वथा असंभव है कि तुम बिना धर्म्म या अधर्म्म का मर्म समझे अपने बेचारे बूढ़े बाप को गुलाम के खून करने का अपराध लगाकर दंड दिलवाना चाहते हो; क्योंकि तुम्हें देवताओं के नाराज हो जाने का भी भय अवश्य ही होगा। यदि यह काम अधर्म्म का हुआ तो देवताओं की खफगी का ठिकाना नहीं रहेगा और लोक-निंदा भी होगी, पर मुझे निश्चय है कि तुम 'धर्म्म क्या है' और 'अधर्म्म क्या है' यह जरूर ठीक ठीक जानते हो। अस्तु, कृपा कर मुझे बतला दो, अब छिपाओ मत। मुझे इस शिक्षा का दान दो।

यूथी०—अच्छा, फिर कभी देखा जायगा। मुझे बड़ी देर हो गई, अब जल्दी जाना है।

सुक०—वाह जी वाह! यह खूब! ऐसा न करो। मित्रवर! तुम्हें ऐसा उचित नहीं है। मैं कितनी देर से आशा लगाए बैठा हूँ कि तुमसे '**धर्म्माधर्म्म**' का मर्म समझकर **मेलीटस*** से अपनी जान बचाऊँगा, और तुम

---

* इसी शख्स ने सुकरात पर नास्तिकता का दोषारोपण करके उसे प्राणदंड दिलवाया था।

मेरी सब आशाओं पर पानी फेरकर चले जाते हो। मैं मेलीटस से कहना चाहता था कि लो सुनो! अब यूथी-फाइरन ने मुझे दैवी बातों का पूरा ज्ञान करा दिया है, अब मैं मूर्ख नहीं रहा कि देवताओं के बारे में मनमानी बातें बनाऊँ या उनमें नई तरंदाजी चलाऊँ और इसी बुनियाद पर मैं उसे आगे के लिये एक बहुत आनंददायक जीवन की आशा दिलानेवाला था।

चौथा अध्याय

सुकरात का दोष-विमोचन

इस बातचीत से साफ प्रगट होता है कि सुकरात के प्रश्नोत्तर करने का ढंग क्या था और इस काम में उसे कैसा आग्रह और दिली प्रेम था। तीसरे अध्याय के आरंभ ही मे यूथीफाइरन से बातचीत करते समय सुकरात ने आप ही कहा है कि उस पर जुर्म लगाया गया है और उसी कारण वह अपने नित्य की बैठक का स्थान छोड़कर आज न्यायालय मे आने पर विवश हुआ है। पाठको! आप देखें इस महा-पुरुष की धीरता को! जिस पर आज प्राणदंड की संभावना-वाला जुर्म लगनेवाला है वह कैसी बेपरवाही से इस अभियोग का जिकर करता है और अपने मुकद्दमे से थोड़ी ही देर पहले अपने कर्त्तव्य अर्थात् 'लोकसमीक्षा' में कमर कसे तत्पर है। उसकी सारी जिंदगी अपने कर्त्तव्य में रँगी हुई है इसके आगे उसे दीन दुनिया तो क्या अपने प्राणों के जाने की भी परवाह नहीं। वह अपनी धुन का कैसा पक्का है! जब न्यायालय में समयानुसार सब लोग आकर बैठ गए तब सुकरात भी उप-स्थित हुआ और पहले उस पर जुर्म लगानेवालों ने अपनी वक्तृता दी। उस वक्तृता का यहाँ वर्णन न कर केवल सुक-रात की ही वक्तृता का सविस्तर वर्णन किया गया है, जो कि

उसने अपने दोष-मोचन या सफाई में दी थी। इसी वक्तृता में उसने अपने पर दोषारोपण होने के कारण, तथा अपनी जिंदगी का बहुत सा किस्सा स्वतः ही, अपने मुँह से, बयान किया है। सच पूछिए तो सुकरात की यह वक्तृता एक प्रकार का उसका आत्मचरित्र है। इसलिये उसके मुकद्दमे की और सब छोटी छोटी बातें न लिखकर, उसकी वक्तृता ज्यों की त्यों आगे दी गई है जिससे आप ही सब प्रगट हो जायगा।

अपने अभियोक्ताओं का व्याख्यान समाप्त होने पर जब उसे अपने दोष-मोचन के लिये "जो कुछ कहना चाहते हो, कहो" ऐसी आज्ञा हुई तब उसने यों कहना आरंभ किया—

हे एथेंसवासियो, मैं कैसे कहूँ कि मुझ पर दोष लगाने-वालों के बयान से आप लोगों के चित्त पर क्या असर हुआ है, पर इतना तो मैं कह सकता हूँ कि उनकी चलती फिरती, चाल से भरी हुई बातों से मैं अपने को भूल सा गया हूँ, किंतु यह न समझिए कि उनकी एक भी बात सच है। पर भाइयो! उन्होंने जितनी झूठी बातें बनाई हैं, उनमें से उन्हें यह कहते सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि "आप लोग सुकरात से सावधान रहिएगा, यह बात बनाने में बड़ा चतुर है, कहीं आप लोगों को धोखा न दे दे।" शोक है कि, इन निर्लज्जों को यह बात कहते तनिक भी लज्जा नहीं आई। क्या लोग नहीं जानते थे कि मेरे जबान हिलाते ही इनकी इस मिथ्या उक्ति की पोल खुल जायगी? और मैं साबित कर दूँगा

कि मैं कदापि 'चतुर वक्ता' नहीं हूँ। हाँ, यदि 'चतुर वक्ता' से तात्पर्य उन लोगों का 'सदा सत्यवादी' से हो तो दूसरी बात है। तब तो मैं उनसे सहमत हूँ, और अपने को उनसे श्रेष्ठ वक्ता कह सकता हूँ। मेरे फर्यादियों ने आप लोगों से 'सिर से पैर' तक झूठ ही झूठ कहा है, पर मैं आप लोगों से सिवाय सच के कुछ भी न कहूँगा। हाँ, उनकी तरह बड़े बड़े वचन-विन्यास-संयुक्त, बड़े श्रम से तैयार की हुई 'स्पीच' तो मैं नहीं दे सकूँगा पर जो कुछ पहले मुँह मे आवेगा, बिना तैयारी के सीधा निरा सत्य आप लोगों की सेवा मे निवेदन करूँगा, क्योंकि मुझे विश्वास है कि मैं हक पर हूँ, इसलिये आप लोग भी मुझसे अन्यथा की आशा न रखें। भाइयो, अब इस उम्र में आप लोगों के सामने झूठा बयान लेकर उपस्थित होना क्या मुझे शोभा देगा? मैं अब युवा नहीं हूँ कि तरह तरह की बनावटी मिथ्या बातों का जाल रचकर आप लोगों को धोखे मे डालूँ। पर हाँ भाइयो, मेरी एक बिनती अवश्य है, और मैं कर जोड़कर आप लोगों से यह माँगता हूँ कि बयान करते समय जब मैं अपने मामूली ढंग से बात करना शुरू करूँ, जैसा कि बाजार हाट में यार दोस्तों मे बातचीत करने की मुझे आदत है, तब आप लोग कृपा करके चौंकें नहीं और बीच में दखल न देवें। यही मेरी प्रार्थना है।

असल मे बात यह है कि सत्तर वर्ष की उम्र मे आज यह पहला अवसर है कि अपराधी रूप से मैं अदालत के सामने

खड़ा किया गया हूँ। इसके पहले अदालत में मैंने कभी पैर नहीं रखा। इसलिये यहाँ के अदब कायदे से मैं बिलकुल अनजान हूँ। यदि मैं कोई अजनबी परदेशी होता और अपने देश की रीति के अनुसार बयान करता तो आप लोग जरूर इस बात पर विशेष ख्याल नहीं करते और मुझे अपने देश के कायदे के मुताबिक बोलने के लिये क्षमा करते। उसी क्षमा का मैं अब भी प्रार्थी हूँ और समझता हूँ कि इसके मिलने का मुझे हक है। आप लोग इस बात का कुछ खयाल न करें कि मेरे बयान की भाषा कैसी है, ढँग क्या है, केवल इतना ध्यान रखें कि बात सत्य है कि नहीं। मेरा मामला न्याययुक्त है या नहीं; क्योंकि यही श्रेष्ठ न्यायाधीशों को उचित भी है, जैसे कि श्रेष्ठ वकीलों को भी सत्य भाषण ही करना चाहिए। हे एथेंसवासी भाइयो! मुझे दो तरह की सफाई पेश करनी पड़ेगी, क्योंकि मुझ पर अपराध लगानेवाले दो तरह के हैं। एक तो पुराने लोग हैं और दूसरे हाल के नए महाशय हैं। वर्षों से बहुत से लोग मुझे आप लोगों के सामने दोषी ठहरा रहे हैं। इन्होंने एक बात भी सच नहीं कही है, और इन्हीं लोगों का मुझे अधिक भय है क्योंकि अनीटस वगैरः यद्यपि बहुत बलवान् हैं, पर मैं उनसे अधिक नहीं डरता। असल में इन पुराने लोगों से अधिक डरने का कारण यह है कि कुछ आज ही नहीं वर्षों से, जब आप लोग बच्चे थे तब से, आप लोगों के कोमल हृदयों पर ये लोग

इन दोषों का प्रभाव डाल रहे हैं, और तभी से आप लोगों को समझा रहे हैं कि "देखो! सुकरात नाम का एक बुद्धिमान् आदमी है, जो दैवी बातों मे तरह तरह की तरंदाजी गढ़ा करता है, जो पृथिवी की कुल बातों की जिरह के सवालों से जॉच पड़ताल करता है और बुरी से बुरी बातों को सबसे अच्छी जँचवा देना जिसका काम है।" भाइयो, ऐसी रिपोर्ट फैलानेवालों से ही मैं अधिक डरता हूँ, क्योंकि इनके श्रोतागण निश्चय कर लेते हैं कि जो मनुष्य ऐसे सब काम करता है वह ईश्वर को कभी मान ही नहीं सकता, वह जरूर नास्तिक होगा। देवी-देवताओं पर तो उसका विश्वास भला काहे को होने लगा। हे भाइयो! ऐसे दोष लगानेवाले, एक दो नहीं बहुत से हैं, और बहुत दिनों से ये लोग मुझ पर दोष लगा रहे हैं। आप लोगों को ये सब बातें सुना रहे हैं, जिसमे आप लोगों के चित्त पर यह बात खूब अंकित हो जाय, और उस समय उनकी बातों का प्रत्युत्तर देनेवाला भी वहाँ कोई उपस्थित न रहे।

सबसे बढ़कर आश्चर्य की बात तो यह है कि मैं उन लोगों के नाम से बिल्कुल अनजान हूँ, और सिवाय भड़ुवे कवियों के (जो लोग बड़ी नीच तरह से मेरी नकल उतारकर मसखरी उड़ाते हैं) मैं किसी का पता भी नहीं बतला सकता; पर बाकी के और सब लोग, कोई तो ईर्ष्या और जलन से और कोई सचमुच ही अपने विश्वास के अनुसार, मुझे आप लोगों

के सामने बुरा बना रहे हैं। इन्हीं शत्रुओं का सामना करना सबसे कठिन है, क्योंकि परिचित न होने के कारण ऐसे लोगों को मैं अदालत के सामने बुलाकर उनसे जिरह कर ही नहीं सकता। मुझे तो अपने बचाव के लिये यहाँ केवल परछाहीं (छाया) से लड़ना और जवाब-सवाल करना पड़ेगा। सवाल ही करना है, जवाब देनेवाला कोई है हो नहीं। इसलिये आप लोग मेरी बात मान रखिए कि मुझे दो तरह के फर्य्यादियो का मुकाबला करना है। एक तो मेलीटस वगैर: और दूसरे वे ही पुराने महाशय जिनका उल्लेख मैं कर आया हूँ। आपकी मर्जी मुताबिक पहले मैं पुराने फर्य्यादियों के मुकाबले में अपनी सफाई पेश करूँगा, क्योंकि मुझ पर जुर्म लगाते हुए पहले पहल इन्हीं लोगों को आपने सुना है और नए फर्य्यादियों से कही बढ़ चढ़कर इन लोगों की कोशिश और पैरवी रही है।

अच्छा तो भाई एथेंसवासियो! जो थोड़ा सा अवकाश मुझे दिया गया है उसी बीच में मुझे अपनी सफाई पेश करनी है और बहुत दिनों से मेरे विरुद्ध आप लोगों के मन मे जो बाते जमाकर, मेरी तरफ से आप लोगों का मन फेरा गया है, उन बातों का सिलसिलेवार खंडन करके मुझे अपने को दोष-मुक्त करना होगा। मुझे आशा है कि यदि मैं इस काम में सफल हो सका, तो आपका और मेरा दोनों ही का भला है। मैं यह जानता हूँ कि यह काम कठिन है पर खैर जो हो, भग-

वान् की जब ऐसी ही इच्छा है तब मुझे भी यह आज्ञा शिरोधार्य है और मैं यथासाध्य अपनी सफाई पेश करूँगा। अच्छा तो अब फिर से उसी बात से शुरू करता हूँ कि वे कौन सी बातें हैं जिनकी रिपोर्ट फैलाकर आप लोगों का मन मुझसे फेरा गया है, या मेलीटस के सामने कौन कौन सी बातें उपस्थित थीं, जिन बातों पर विचार करके उसने फर्दजुर्म तैयार कर दिया है।

वह कौन सा कलंक है जो मेरे शत्रुओं ने मुझ पर लगाया है? थोड़ी देर के लिये मैं मान लेता हूँ कि ये लोग मुझ पर कानून के मुताबिक जुर्म लगा रहे हैं, उस फर्दजुर्म की इबारत यों होगी—"सुकरात एक कुकर्मी मनुष्य है, जो स्वर्ग और पाताल की बातों में बेजा दखल देता है, बुरी से बुरी बातों को ऐसे ढँग से कहता है कि वे उत्तम जँचने लगें, और लोगों को यह सब सिखाता फिरता है"। उसी प्रकार की बात ये लोग कहते हैं, और अरिस्टोफेन ने अपने नाटक में एक नकल ऐसे ढंगों से उतारी भी है, जिसे कि आप लोगों ने भी देखा होगा। सुकरात नाम रखकर एक आदमी को टोकरे मे सुलाया गया और वह कहता जाता था कि "मैं आकाश मे चल सकता हूँ"। वह और भी बहुत तरह की मूर्खता की बकवाद करता था जिसका मर्म मैं कुछ भी नहीं समझ सका। शायद ऐसा कोई मनुष्य हो जो उक्त प्रकार की विद्या जानता हो, पर यह मुझे पूरा विश्वास है कि इसी बात के लिये मेलीटस

मुझ पर कभी भी अपराध नहीं लगावेगा। पर भाई एथेंस-वासियो! बात असल मे यह है कि इन सब बातों से मुझसे कुछ भी संबंध नहीं है। आप लोगों में से भी बहुतेरे इस बात के गवाह हैं। आप लोगों से मेरी प्रार्थना है, क्योंकि आपमें से बहुतों ने मुझे प्रायः बातचीत करते सुना है। आप बतलाइए और अपने संगी साथियों से भी पूछिए, या जो लोग नहीं जानते उन्हें सूचित कर दीजिए कि क्या कभी भी आप लोगों ने मुझे ऐसी बातों का थोड़ा बहुत या कुछ भी जिक्र करते देखा या सुना है? बस इसी बात से साबित हो जायगा कि मेरे बारे में इस तरह की और भी जो कहानियाँ गढ़ी गई हैं वे सब बनावटी और झूठी हैं। सच पूछिए तो इनमे से कोई कहानी भी सत्य नहीं है, और यदि आप लोगों ने यह सुना हो कि मैं लोगों को पढ़ाने या सिखाने की नियत से बुलाता था, इसके लिये उनसे रुपया वसूल करता था; यदि ऐसी कोई बात आप लोगों ने सुनी हो, तो वह भी निरी झूठी है। पर हाँ, यह मैं कह सकता हूँ कि लियोनतीनी के गोरगी, सियस के प्रोडिकस, या एलिस के हिप्पीयस, * जिस तरह लोगो को शिक्षा देते हैं उस प्रकार से शिक्षा देने मे मजा तो बड़ा है। ऊपर मैंने जिन तीन महाशयों के नाम बतलाए हैं, इनमें से कोई भी जब चाहे किसी शहर में जाकर वहाँ के युवकों को समझा बुझा के उनके साथियों से अलग कर सकता

* ये लोग उस समय के सोफिस्ट संप्रदाय के शिक्षक थे।

है और अपने संग मेल पैदा करके उनसे रुपया वसूल कर सकता है। शायद मैं ठीक कहता हूँ कि परोस के रहनेवाले एक ऐसे महाशय इसी समय एथेंस में मौजूद हैं।

अभी उसी दिन की बात है कि हिप्पोनीकस के लड़के कैलाश से मेरी मुलाकात हुई। अकेले इसी आदमी ने सूफियों के लिये इतना रुपया खर्च किया है कि और सबों ने मिलकर भी इतना नहीं किया होगा। मैंने उससे कहा, "देखो भाई कैलाश! यदि तुम्हारे दोनों लडके—उसके दो लड़के हैं—घोड़ी के या गाय के बछड़े होते तो हम उनके लिये एक शिक्षक नियत कर देते जो उनको स्वाभाविक विद्या में निपुण कर देता; तो वह शिक्षक या तो कोई साईस या किसान होता पर ऐसा तो है नहीं, वह तो आदमी है। तो फिर उन्हें शिक्षित करने के लिए तुम किसे नियुक्त करने लगे हो? कौन ऐसा आदमी है जो एक भले रईस आदमी की स्वाभाविक विद्या का उस्ताद है? ये तुम्हारे अपने लड़के हैं, इसलिये मैं समझता हूँ कि तुमने इस बात का अवश्य विचार कर लिया होगा। तुम्हारी निगाह मे वास्तव में ऐसा कोई आदमी है? यदि है, तो बतलाओ। चलो मैं भी सुन लूँ कि वह कहाँ का रहनेवाला है; उसका क्या नाम है? और उसकी फीस क्या है?" उसने जवाब दिया, "भाई सुकरात! उसका नाम इमीनस है, वह परोस का निवासी है और फीस उसकी पाँच मीनाई (एक यूनानी सिक्का जो आजकल के

इकसठ रुपए के बराबर होता था) है।" उसकी इस बात से मैंने समझा कि वास्तव मे इमीनस बड़ा भाग्यवान् है। वह इस फन में ऐसा उस्ताद है और ऐसी चतुरता से सिखा सकता है। यदि मेरे पास ऐसी विद्या होती तो मैं तो बड़े बड़े आव-भाव दिखाता और मेरे पैर जमीन पर पड़ते ही नहीं।" पर एथेंसनिवासी भाइयो! बात असल में यह है कि मेरे पास ऐसी विद्या इत्यादि कुछ भी नहीं है।

शायद कोई भाई मुझसे यह पूछे कि "अच्छा भाई सुक-रात, तो तुम फिर करते क्या हो? तुम्हारे विरुद्ध यह सब शिकायत आती क्यों है? हो न हो मामूली बातों से जरूर कुछ विलक्षण कार्य तुम करते हो, जिससे तुम्हारे खिलाफ यह पचड़ा खड़ा हुआ है; नहीं तो क्या कारण है कि तुम्हारे विरुद्ध ये सब शिकायतें खड़ी होतीं। इसलिये हम पूछते हैं कि तुम असल मे क्या करते हो, जिससे यह सब उपाधियाँ खड़ी हुईं, जिसमें हम लोग भी गलत फैसला न कर बैठें?"

मैं मानता हूँ, कि आप लोगों के मन मे ऐसे प्रश्नों का उठना मुनासिब है। अस्तु, तो मैं अब बतलाता हूँ कि किस कारण से मेरे विरुद्ध ये सब शिकायतें खड़ी हुईं और मैं बद-नाम हो गया। अच्छा तो लीजिए सुनिए। आप यह न समझें कि मैं दिल्लगी या मसखरी कर रहा हूँ। जो कुछ कहता हूँ, अक्षर अक्षर सत्य है। भाइयो! मेरी यह बदनामी केवल एक तरह की बुद्धिमानी के कारण हुई है। यह कोई

अद्भुत चीज नहीं, केवल वही बुद्धि है जिसके होने से मनुष्य, मनुष्य पदवी पा सकता है। इसी अर्थ से मैं वास्तव में 'बुद्धि-मान्' कहला सकता हूँ। पर उन महाशयों के पास, जिनका कि मैं अभी उल्लेख कर रहा था, ऐसी बुद्धि अवश्य होगी जिसका दर्जा "मानुषी बुद्धि" से कहीं चढ़ा बढ़ा है या कुछ ऐसा वैसा है जिसका खुलासा मुझसे हो नहीं सकता, क्योंकि उस असाधारण बुद्धि के बारे में मुझे तो कुछ बोध है नहीं। यदि कोई कहे कि 'मुझे बोध है' तो वह निरा झूठा है और मुझे बदनाम करना चाहता है। भाइयो, यदि मेरी बातें आपको कुछ अहंकार भरी मालूम पड़ती हों तो आप लोग कृपापूर्वक मुझे बीच में टोकिए मत। मुझे कहने दीजिए। मैं जो कुछ कहता हूँ, अपनी बनाई नहीं कहता। जो जिसने कहा है उसी की भाषा मे मैं आपसे कहता हूँ, और उसकी बातों का विश्वास आप लोग भी करते हैं। अपनी बुद्धिमानी की गवाही मे मैं डेलफी के देवताओं की गवाही पेश कर सकता हूँ। चेरीफोन को तो आप जानते ही होंगे। जवानी ही से वह मेरा साथी रहा, साधारण प्रजा के साथ वह देश से निर्व्वासित हुआ था, और उन्हीं के साथ फिर लौटा भी। आप लोग उसके मिजाज से भी वाकिफ होंगे कि वह जिस काम को हाथ में लेता उसे कैसी तेजी और दृढ़ता के साथ करता था। एक समय वह डेलफी को गया और उसने यह प्रश्न कर ही तो डाला। दोस्तो, फिर मेरी अर्ज है कि आप लोग

चिल्लाएँ नहीं। उसने पूछा कि सुकरात से अधिक बुद्धिमान् और भी कोई है? जिसके जवाब में वहाँ के पुजारीजी ने कहा कि "नहीं, कोई नहीं।" चेरीफोन आप तो मर गया है, पर उसका भाई यहाँ मौजूद है जो मेरी बातों की गवाही देगा। आप कहेंगे कि इन बातो से क्या? भाइयो! मैं आप लोगों को अपनी बदनामी की जड़ कहाँ से शुरू हुई यही बतलाना चाहता हूँ।

जब मैंने यह देववाणी सुनी तब मैं विचारने लगा कि इस प्रकार की स्पष्ट देववाणी से तात्पर्य्य क्या है? क्योंकि मैं खूब जानता हूँ कि मुझमे 'बुद्धि' जो पदार्थ है उसका लेश मात्र भी नहीं है, तो फिर उनका ऐसा कहना कि "सुकरात ही सबसे अधिक बुद्धिमान् है" क्या अर्थ रखता है? वे देवता होकर झूठ तो बोलेंगे नहीं। बहुत दिनों तक मुझे इसका कुछ तात्पर्य्य समझ नहीं पड़ा। अंत को लाचार होकर बड़ी अनिच्छा से मैंने इस पहेली को यों सुलझाने की ठानी। जो मनुष्य सबसे अधिक बुद्धिमान् प्रसिद्ध था, उसके पास मैं यह सोचकर गया कि यहाँ से मैं देवताओं की गलती साबित कर दूँगा और उन्हें बतलाऊँगा कि "देखो तुम मुझे सबसे अधिक बुद्धिमान् कहते हो, पर यह मनुष्य मुझसे भी अधिक बुद्धिमान् है"। अस्तु, मैंने उस आदमी से जिरह के सवाल करने शुरू किए। उसके नाम बतलाने की जरूरत नहीं। वह एक राजनीतिविशारद व्यक्ति था। इसका परिणाम क्या हुआ वह

भी सुनिए। जब मैंने उससे बातचीत की तब मालूम हुआ कि यद्यपि बहुत से लोग उसे बुद्धिमान् कहते हैं और वह अपने आपको खुद भी 'बुद्धिमान्' समझता है, पर वास्तव में वह बुद्धि-मान् है नहीं। फिर मैंने उसे यह बात साबित करने की चेष्टा की कि तुम यद्यपि अपने को बुद्धिमान् समझे बैठे हो, पर वास्तव में बुद्धिमान् हो नहीं। मेरे ऐसे कहने से वह और उसके इर्द गिर्द जितने लोग खड़े थे सब मेरे शत्रु हो गए। अस्तु, जब मैं वहाँ से चला तब मैंने सोचा कि देखो मैं इस मनुष्य से जरूर अधिक बुद्धिमान् हूँ क्योंकि वास्तव में बात कौन सी ठीक है, यह तो हममें से कोई भी नहीं जानता पर न जानने पर भी वह अपने को जानकार समझे बैठा है। मैं जानता ही नहीं और अपने को जानकार समझता भी नहीं। फिर मैं दूसरे आदमी के पास गया जो पहले से भी अधिक बुद्धिमान् प्रसिद्ध था। यहाँ भी यही परिणाम हुआ, और मैंने इसे और इसके आसपास के लोगों को अपना शत्रु बना लिया। फिर तीसरे, फिर चौथे यों ही एक के बाद दूसरे के पास मैं जाता और परिणाम में सब मेरे शत्रु होते जाते थे जिससे मुझे बड़ी चिंता और कुछ दुःख भी होता, पर मैं क्या करता? ईश्वर की आज्ञा को मान्य तो सबके ऊपर करना होगा, क्योंकि जहाँ कहीं भी कोई बुद्धिमान् सुनाई दे, उसके पास जाकर देववाणी की जाँच करना और उसका तात्पर्य्य समझना तो होगा ही। अस्तु, भाइयो! मैं अपने सिर की कसम खाकर आपसे सच

कहता हूँ कि देवताओं की आज्ञा के अनुसार अपनी बुद्धिमानी जाँचने का यह नतीजा हुआ कि बहुत से लोग मेरे शत्रु हो गए और पता यह लगा कि जो अपनी बुद्धिमानी के लिये सबसे अधिक प्रसिद्ध है, वही सबसे अधिक निर्बुद्धि है; और जो लोग साधारण मनुष्य समझकर नीची निगाह से देखे जाते हैं वे ही शिक्षक होने के अधिक उपयुक्त पात्र हैं। भाइयो! मैं आपसे क्या कहूँ कि उक्त देववाणी की जाँच के लिये मुझे कितना घूमना पड़ा है। पहाड़ ऐसा परिश्रम करके भी मैंने जाँच करना नहीं छोड़ा। यहाँ से वहाँ भटकते भटकते मुझे क्या क्या कष्ट उठाने पड़े सो मैं ही जानता हूँ। राजपुरुष, कवीश्वर, नाटककार, गायक, मैं सभो के पास इस इच्छा से भटका कि कोई तो मुझसे अधिक बुद्धिमान् निकलेगा। मैंने कवीश्वरो की कविता, जिस पर कि उन्होंने बड़े परिश्रम किए थे, लेकर इस इच्छा से उनसे बातचीत की कि शायद इससे मैं कुछ सीख सकूँगा। भाइयो, सच पूछिए तो मुझे कहते लज्जा आती है, पर कहूँगा अवश्य। बात यह है कि इन कवियों की अपेक्षा तो कोई राह चलता आदमी भी उनकी कविता के बारे में अधिक बुद्धिमत्ता से बातचीत कर सकता है। इससे मुझे यह पता लगा है कि कुछ बुद्धिमानी के बल से नहीं, केवल किसी तरह की स्वाभाविक शक्ति या दैवी आवेश मे आकर—पीर, पैगंबर या वाणी कथन करनेवालों की तरह—ये लोग कविता बनाया करते हैं, जो मनमानी कहते हैं

और समझते कुछ नहीं; मजा यह है कि कविता तो बनाई, लेकिन उस कविता का मर्म कुछ समझे नहीं और मैं कवि हूँ, इसलिये जगत् ब्रह्मांड की सब बातें मेरे ही पेट में हैं—इस बात के घमंड से उनके पैर जमीन पर पड़ते ही नहीं। पर वास्तव में और बातों में वे समान मूर्ख हैं। अस्तु, मैं इनसे भी विफलमनोरथ होकर यही सोचता हुआ घर आया कि क्या राजकर्म्मचारी, क्या कवि दोनों ही से मैं अधिक समझदार हूँ।

अंत को यह समझकर मैं कारीगरों के पास गया कि कारीगरी या दस्तकारी के हुनर का तो लेश मात्र भी मुझे ज्ञान नहीं है और ये लोग तरह तरह की चीजें बनाते हैं। अस्तु, ये बहुत सी उम्द: उम्द: बातें जानते हैं। चलो इनसे तो कुछ बातचीत करें। भाइयो! -यहाँ भी मैंने धोखा खाया। यह जरूर है कि बहुत सी ऐसी बातें वे जानते हैं जो मैं नहीं जानता और इस बारे में वे मुझसे अधिक बुद्धिमान् अवश्य हैं; पर कवियों की तरह इनके सिर पर भी झूठे घमंड का भूत सवार है।

सब कोई अपने को भारी से भारी मामले में भी चतुर समझता है, केवल एक इसी कारण से कि वे अपनी कला में पूरे होशियार हैं, और उनकी इस गलती से उनकी असली बुद्धि पर परदा पड़ गया है। जो कुछ बुद्धि है भो उस पर भी जंग चढ़ गया है। अस्तु, मैंने अपने मन से पूछा कि "अच्छा मैं उनकी मूर्खता या बुद्धि कुछ भी लूँ या नहीं? दोनों लूँ या खुद जैसा

हूँ, वैसा ही रहूँ" ? मन ने जवाब दिया कि "नहीं, जैसे हो वैसे ही रहना अच्छा है"।

भाइयो, इस प्रकार के तर्क वितर्क से मैंने बहुतों को अपना कट्टर से कट्टर दुश्मन बना लिया और लोग मेरे नाम पर तरह तरह के कलंक फैलाने लगे और कहने लगे कि 'मैं बुद्धिमान्* आदमी हूँ।' राह चलते आदमी हमेशा यही विचार ले जाते हैं कि मैं अपने विचार का बुद्धिमान् जरूर हूँ और दूसरे लोगों को मूढ़ बना देना ही मेरा काम है; पर मेरे जो दोस्त हैं वे समझते हैं कि बुद्धिमान् केवल देवता ही हैं; और यह जो देववाणी उन्होंने कही है, इससे उनका तात्पर्य यह है कि मनुष्यों की बुद्धि निहायत अदनी चीज है; या यों कहो कि कोई चीज ही नहीं है। इससे यह तात्पर्य्य नहीं है कि वे मुझे 'बुद्धिमान्' बतलाते हों। उन्होंने केवल दृष्टांत रूप से मेरा नाम लेकर लोगों को यह जतलाना चाहा कि देखो "तुम लोगो में वही सबसे अधिक बुद्धिमान् कहलावेगा जो सुकरात की तरह जानता है कि वास्तव मे उसकी अपनी बुद्धि में कुछ सार नहीं है।" इसी लिये मैं अब तक देशी या विदेशी जो हो उसके पास जाना और उसकी जाँच करना नहीं छोड़ता, जैसा कि देवताओं की आज्ञा है और जब मुझे पता लगता है कि वह बुद्धिमान् नहीं है तब मैं उसे बतला देता

---

* 'बुद्धिमान्' से तात्पर्य्य एथेंसवासी 'प्रकृतिवादी दार्शनिको' से लेते थे।

हूँ कि तुम 'बुद्धिमान्' नहीं हो और इसी काम में मैं ऐसा उलझा रहता हूँ कि मुझे दम मारने की फुरसत नहीं, और न मैं अपने खास या पबलिक के किसी काम का भी ध्यान रख सकूँ। भगवान् की इस आज्ञा का पालन करने में मैं निहायत दरिद्री हो गया हूँ। सिवाय इसके जो युवक मेरे संग लगे फिरते हैं सब बड़े आदमियों के लड़के हैं, जिन्हें फुरसत बहुत है और लोगों पर जिरह के सवाल होते सुनकर जिन्हें बड़ा मजा आता है। कभी कभी वे आपस में मेरी नकल भी उतारा करते हैं और दूसरों पर भी जिरह के हाथ फेरते हैं। मेरी समझ मे उन्हें भी बहुतेरे ऐसे मिल जाते हैं जो जानते तो कुछ नहीं पर अपने को सबसे अधिक बुद्धिमान् समझे बैठे हैं; और ये लोग जब प्रश्नों का जवाब न दे सकने पर मूर्ख साबित हो जाते हैं तब उन्हें इन युवकों पर बड़ा क्रोध आता है। क्रोध तो अपने ही पर आना चाहिए, सो नहीं उक्त युवकों हो पर और सबसे बढ़कर मुझ पर उनके क्रोध की मात्रा दूनी हो जाती है। वे कहने लगते हैं कि सुकरात एक नष्ट आदमी है जो युवकों को बिगाड़ा करता है। यदि उनसे कोई पूछता कि "भाई सुकरात करता क्या है? सिखाता क्या है?" तो उनसे इसका ठीक कुछ जवाब तो बन पड़ता नहीं। बस दार्शनिकों के विरुद्ध जो एक बँधी गत चली आती है वे उसे ही कह डालते हैं कि "सुकरात आकाश-पाताल की बातों की खोज करता है। लोगों को सिखाता है

कि देवताओं को मत मानो और बुरी से बुरी बातों को अच्छी जँचवा देता है'' । बस यही वे कह देते हैं । मैं समझता हूँ कि वे यह बात मंजूर करना नहीं चाहते कि वास्तव में वे कुछ जानते नहीं । इनकी पोल खुल गई है और इनकी मूर्खता सिद्ध हो गई है । बस ये लोग बहुत दिनों से मेरे विरुद्ध आप लोगों के कान भर रहे हैं क्योंकि ये लोग ईर्ष्या और द्वेष से पूर्ण हो मुझ पर बड़ी कड़ी निगाह रखते हैं । बस इसी बुनियाद पर मेलीटस, आनाइटस और लाइकन ने मुझ पर जुर्म लगाए हैं । मेलीटस तो कवियों की तरफ से मुझसे नाराज है, आनाइटस कारीगरों और राजपुरुषों की तरफ से और लाइकन व्याख्यानवालों की तरफ से मुझसे दुःखी है । इसी लिये मैंने शुरू ही मे आपसे कह दिया है कि वास्तव मे, मुझे आश्चर्य होगा यदि इस थोड़े से समय में, जो मुझे अपने दोष-मोचन करने के लिये मिला है, वर्षों से जमी हुई आप लोगों के दिल पर की इस गर्द को मैं हटाने मे समर्थ हो सकूँगा । भाइयो, सच जानिए मैंने आप लोगों से असली बात कही है, कुछ छिपाया नहीं है; छोटी बड़ी कोई बात भी छोड़ी नहीं है और बस एक इसी कारण से, सदा स्पष्ट और सत्यवादन से लोग मेरे शत्रु हो गए हैं । यह भी इस बात का प्रमाण है कि मैं सच ही बोलता हूँ, और मेरे विरुद्ध जो दोष लगाए गए हैं उनका यही सब कारण है । चाहे अभी या कभी, आप जब चाहे जॉच देखें तो यही सबब निकलेगा ।

पुराने फर्यादियों ने मुझ पर जो जुर्म लगाए हैं, उनकी सफाई के लिये मैंने जो कुछ कहा है वही काफी होगा। अब मैं दूसरे फर्यादी हमारे नवीन देशहितैषी (जैसा कि वे अपने को कहते हैं) मेलीटस, और अन्य नवीन फर्यादियों ने जो जुर्म मुझ पर लगाए हैं उनकी सफाई आरंभ करता हूँ। मान लीजिए ये लोग नए फर्यादी हैं और इनका फर्दजुर्म यों है कि "सुकरात एक कुकर्मी मनुष्य है, जो युवकों को बिगाड़ता है; सारा शहर जिन देवताओं को मानता है वह उन्हे नहीं मानता, अपने मनमाने नए नए देवताओं को मानता है।" यही जुर्म है। अच्छा तो इस जुर्म की हर एक बात को अलग अलग लेकर जॉच कीजिए। प्रथम मेलीटस कहता है कि मैं युवकों को बिगाड़कर अधर्म्म करता हूँ—पर भाई एथेंसवासियो! मैं नहीं, खुद मेलीटस ही अधर्म्म कर रहा है; क्योंकि लोगों को बिना समझे बूझे अदालत के सामने धर घसीटना वह दिल्लगी समझता है, और जिस बात पर कभी क्षण भर के लिये भी उसने सोचने का कष्ट नहीं उठाया है उस बात का यों ही झूठमूठ वह अपने को सबसे बड़ा पैरोकार जतलाता है। अच्छा तो अब आप मेरी इन बातों का प्रमाण लीजिए।

आइए जनाब मेलीटस! सामने आइए, और बतलाइए कि "क्या यह बात सत्य है कि आप यह उचित समझते हैं कि युवक लोग जहाँ तक हो सकें श्रेष्ठ हों" ?

मेली०—बेशक।

सुक०—अच्छा, अब आप कह डालिए कि वह कौन है जो इन युवकों को श्रेष्ठ बनाता है? जब आप इस बात के इतने पैरोकार हैं, तो यह जरूर जानते होंगे। आप इसी लिये जुर्म लगाकर मुझे अदालत के सामने लाए हैं कि आपके बयान के मुताबिक मैं युवकों को बिगाड़नेवाला हूँ। अच्छा तो अब आप यहाँ न्यायाधीशों के सामने कह दीजिए कि युवकों को सुधारनेवाला कौन है? क्यों साहब, चुप क्यों हैं? कहिए? जब आप कुछ जवाब नहीं देते, तो मानना पड़ेगा कि आपके पास कोई जवाब है नहीं। क्या आप नहीं जानते कि ऐसा करना बड़ी बुरी बात है, बदनामी का सबब है? क्या आपका चुप रहना इस बात का सबूत नहीं है कि आपने कभी इस बात पर क्षण भर भी सोचने की तकलीफ नहीं की है? आइए, बतलाइए जनाब, युवकों को श्रेष्ठ नागरिक (रईस) कौन बनाता है?

मेली०—कानून।

सुक०—अजी साहब, मेरा यह प्रश्न नहीं है। वह आदमी कौन है? कौन कानून जाननेवाला है जो युवको को सुधार देता है?

मेली०— ये ही यहाँ के न्यायाधीश (जज) लोग।

सुक०—क्या कहते हो? क्या ये लोग युवकों को शिक्षा देते और सुधारते हैं?

मेली०—बेशक।

सुक०—सबके सब या इनमें से कुछ लोग ?

मेली०—सबके सब।

सुक०—जय माया की! वाह क्या अच्छी बात है! उपकार करनेवालों की इतनी बहुतायत है! अच्छा और यहाँ के श्रोतागण भी उन्हें सुधारते ही हैं न ?

मेली०—जरूर सुधारते हैं।

सुक०—और राजसभा के सभासदगण।

मेली०—हाँ वे भी।

सुक०—अच्छा, तो क्या साधारण सभासद सब युवकों को बिगाड़ते हैं, या वे भी युवकों को सुधारते हैं ?

मेली०—वे भी युवकों को सुधारते हैं।

सुक०—तो तात्पर्य यह कि सिवाय मेरे और सारे एथेंसवासी युवकों के सुधारने में लगे हुए हैं; उनको बिगाड़नेवाला एक मैं ही हूँ। क्या तुम्हारा यह मतलब है ?

मेली०—और नहीं तो क्या ? यही मतलब तो है ही!

सुक०—तब तो मैं बड़ा हतभागा ठहरा। अच्छा तो यह बतलाओ कि क्या घोड़ों के बारे में भी ऐसा ही होता है? क्या एक आदमी उन्हें नुकसान पहुँचाता और बाकी सब लोग उन्हें सुधारते हैं; क्यों यह तो नहीं है न ? मामला ठीक इसके विपरीत है। केवल एक ही आदमी या कुछ आदमी—जो सवार या साईस हैं—उन्हें सुधार सकते हैं, और ज्यादः आदमी जब घोड़ों को काम में

लाते या जब उनका उनसे वास्ता पड़ता तो उनके बिगाड़ने ही के कारण बनते हैं। क्यों मेलीटस ऐसा ही है न? घोड़े या चाहे और कोई पशु सबकी बात यही है न? अवश्य है, चाहे तुम या आनाइटस हाँ कहो या न कहो। युवकों के बड़े भाग्य कहना चाहिए जब कि केवल एक आदमी उनका बिगाड़नेवाला और जमाना भर उनका सुधारनेवाला हो। पर मेलीटस, बात असल में यही है, कि तुमने कभी युवकों के लिये कुछ सोचा नहीं है। यह तुम्हारी बातों हीं से साबित हुआ जाता है। तुम्हारे कहने से बहुत साफ प्रगट हो रहा है कि जिस बात के लिये तुम मुझे फँसा रहे हो उसकी तुमने कभी कुछ परवाह नहीं की है।

अच्छा मेलीटस, यह तो बतलाओ किसके संग रहना अच्छा है? बुरे नगरवासी के या भले रईसों के? बतलाओ, जवाब दो। मैं तुमसे कोई मुश्किल बात नहीं पूछ रहा हूँ। क्या बुरे नगरवासी अपने पड़ोसियों का नुकसान और भले रईस पड़ोसियों का उपकार नहीं करते?

मेली०—जरूर करते हैं।

सुक०—क्या ऐसा भी कोई आदमी है जो अपने साथियों से भलाई के बदले बुराई चाहता हो? जवाब दो, कानून के पाबंद होकर तुम्हें जवाब देना ही होगा। क्या कोई यह चाहता है कि लोग मेरे संग बुराई किया करे?

मेली०—कभी नहीं।

सुक०—अच्छा तो तुम मुझ पर. युवकों को जान बूझकर या अनजाने बिगाड़ने का इलजाम लगाते हो ?

मेली०—जान बूझकर तुम युवकों को बिगाड़ते हो।

सुक०—क्या कहा ? जब कि तुम मुझसे इतने छोटे होकर इतनी समझ रखते हो कि बुरे नगरवासी हरदम बुराई किया करते हैं और भले रईस भलाई करते हैं तब क्या मैं इतना बड़ा गदहा होऊँगा कि यह न समझूँगा कि यदि मैं अपने किसी साथी को दुष्ट बनाऊँगा तो वह किसी न किसी तरह मुझे हानि जरूर पहुँचाएगा ? यह सब जानकर भी तुम कहते हो कि जान बूझकर मैं इतना भारी अपराध कर रहा हूँ। मैं तो क्या, कोई भी यहा तुम्हारी ऐसी बात पर विश्वास नहीं कर सकता। या तो मैं युवकों को बिगाड़ता ही नहीं, और यदि ऐसा करता भी होऊँ तो यह काम मुझसे अनजाने मे होता है। अस्तु, तुम दोनों ही तरह से झूठे ठहरते हो। और यदि मैं अनजाने में इन्हें बिगाड़ता हूँ तो कानून तुमसे नहीं कहता कि ऐसे अपराध के लिये, जिसमे कि मेरा कुछ हाथ नही है, तुम मुझको अभियुक्त करो। हाँ तुम चाहो तो मुझे अकेले मे ले जाकर भला बुरा कह सकते या समझा सकते हो; क्योंकि ज्योंही मुझे मालूम हो जाय कि मैं अनजाने मे एक बुरा काम कर रहा हूँ,

मैं ऐसे काम से हाथ रोक सकता हूँ। सो तो तुमने किया नहीं, उलटे मुझको अदालत के सामने ला खड़ा किया, जहाँ कानून लोगों को समझता बूझता नहीं वरन् दंड दिया करता है।

भाई एथेंसवासियो, सच तो यह है, जैसा कि मैं पहले से कहता आ रहा हूँ कि मेलीटस ने इन सब बातों पर कभी तनिक भी ध्यान नहीं दिया है। अच्छा तो फिर जनाब मेलीटस साहब! आप यह बतलाइए कि मैं क्योंकर युवकों को बिगाड़ता हूँ, क्योंकि तुम्हारे फर्द-जुर्म के मुताबिक मैं उन्हें नगर के देवताओं पर से विश्वास हटवाकर, नए नए देवताओं पर विश्वास करना सिखाता हूँ। तुम्हारा यही तात्पर्य्य न है कि मैं इसी शिक्षा से युवकों को बिगाड़ता हूँ। क्यों यही है कि नहीं?

मेली०—बेशक, मेरा यही तात्पर्य्य है।

सुक०—अच्छा तो अब उन देवताओं के विषय मे, जिनका हम जिक्र कर रहे हैं, तुम जरा मुझे और यहाँ जजों को साफ तौर से समझा तो दो; क्योंकि मैं तुम्हारा तात्पर्य्य ठीक समझा नहीं। तुम क्या कहते हो कि मैं युवको का गैर देवताओं पर विश्वास कराता हूँ, और नगर के देवताओ पर नहीं? तुम क्या मुझे इन्हें अजनबी देवताओं पर विश्वास करवाने का अपराध लगाते हो? यदि तुम्हारा यह तात्पर्य्य है तो मैं भी कुछ देवताओं पर

विश्वास करनेवाला ठहरा, बिलकुल नास्तिक नहीं कहला सकता, या तुम यह कह सकते हो कि मैं बिलकुल किसी देवता पर विश्वास करता ही नहीं और युवकों को भी ऐसा ही सिखाता हूँ।

मेली०—मैं यह कहता हूँ कि तुम किसी देवता पर बिलकुल विश्वास करते ही नहीं।

सुक०—वाह! वाह! मेलीटस वाह! तुमने तो मुझे भौचक्का कर दिया। यह तुम क्या कहते हो? तुम क्या कहते हो कि और लोगों की तरह मैं चाँद सूरज को देवता नहीं मानता?

मेली०—हाँ! हाँ! न्यायाधीश महाशयो! मैं कसम खाकर कहता हूँ कि यह नहीं मानता; यह कहता है कि सूरज निरा पत्थर और चाँद मट्टी है।

सुक०—वाह भाई मेलीटस! तुम क्या यहाँ अनक्सागोरस* पर मुकद्दमा चलाने आए हो? क्या यहाँ के न्यायाधीशों को इतना हेच और अपढ़ समझते हो कि ये लोग अनक्सागोरस के सिद्धांतों से वाकिफ न होंगे! और युवक लोग मुझसे भला ये बातें सीखने क्यों आवेंगे जब कि एक सिक्का खर्च कर वे बात की बात में थीएटर† मे

---

* सुकरात से पहले एक दार्शनिक हो गया है।

† अरिस्टोफेन नाम के एक कवि ने एक नाटक रचकर अनक्सागोरस के सिद्धांतों की दिल्लगी उड़ाई है, जिसका तमाशा यूनानी लोग थीएटर में करते थे।

जाकर सब जान सकते हैं और मुझे हँसी में उड़ा सकते हैं, पर तुम क्या वास्तव में ऐसा ही समझते हो कि मैं देवताओं को बिलकुल मानता ही नहीं ?

मेली०—बेशक, ऐसा ही समझता हूँ, तुम पूरे नास्तिक हो।

सुक०—यह तो कोई भी नहीं मानता, और मैं यथार्थ कहता हूँ कि तुम भी मन में अपनी बातें मिथ्या समझते हो। हे एथेंसवासी भाइयो! मुझे मेलीटस बड़ा घमंडी और दुष्ट आदमी मालूम पड़ता है, और वह केवल अपनी जवानी के मद मे मुझ पर अपराध लगा रहा है। इसकी अवस्था एक ऐसे आदमी की तरह है जो मुझसे परीक्षा के तौर पर ऐसी पहेली पूछ रहा हो जिसका कोई जवाब न हो। तात्पर्य्य यह कि यह मन मे कहता है कि देखो बच्चा, सुकरात, तुम बड़े बुद्धिमान् बनते हो, देखो मैं हँसी मसखरी के तौर पर अपनी बात आप काटता हुआ भी, तुम्हे और यावत् सब श्रोताओं को उल्लू बना रहा हूँ कि नहीं ? क्योंकि वह अपने फर्दजुर्म में अपनी ही बात को आप काटता और कहता है कि "सुकरात ऐसा दुष्ट आदमी है कि वह देवताओं पर विश्वास नहीं करता, पर देवताओं पर विश्वास करता है भी, पर यह बात कुछ है नहीं।" आप कहेंगे कि "उसकी बातों का तुम यह अर्थ कैसे लगाते हो ?" अच्छा सुनिए। हाँ जनाब मेलीटस साहब ! आइए मेरी बातों का जवाब दीजिए

और भाई एथेंसवासियो! आप लोग मेरी पहली बिनती पर ध्यान रखें और मुझे बीच में टोकटाक न करें।

क्यों जी मेलीटस, कहो तो ऐसा भी कोई आदमी है जो मनुष्य संबंधी बातों का रहना मानता हो और मनुष्यों का रहना न मानता हो? भाइयो। आप लोग बाधा न देकर अवश्य इससे इस प्रश्न का उत्तर दिलवाइए। क्या ऐसा भी कोई आदमी है जो अश्वविद्या पर तो विश्वास करता और अश्वों के होने का विश्वास नहीं करता? अथवा वंशी-वादन को मानता और वंशी-वादक का होना नही मानता? नही, ऐसा नहीं है और हो भी नहीं सकता। तुम उत्तर न दो तो भी क्या हुआ, मैं डंके की चोट यह न्यायाधीश और तुमसे भी कहता हूँ कि ऐसा हो नहीं सकता। पर मेरे दूसरे प्रश्न का उत्तर तो तुम्हें देना ही पड़ेगा। ऐसा भी कोई आदमी है जो दैवी (देवता संबंधी) बातों पर विश्वास करता है और देवताओं के होने का विश्वास नही करता?

मेली०—नहीं, ऐसा नहीं है।

सुक०—खैर गनीमत है कि न्यायाधीशों ने तुमसे इसका उत्तर निकलवाया तो सही। अच्छा, तो तुम कहते हो कि मैं दैवी बातों पर विश्वास करता हूँ—नए पुराने की बात नहीं—उन्हें मानता तो हूँ, और दूसरों को इनमे विश्वास करना सिखाता हूँ? चाहे नए, चाहे पुराने तुम्हारे कहे

मुताबिक मैं किसी न किसी तरह के देवता को मानता अवश्य हूँ। यह तुम हलफ उठाकर जजो के सामने कह भी चुके हो। जब कि मैं दैवी बातों पर विश्वास करता हूँ तब परिणाम यही निकलेगा कि देवताओं को भी अवश्य मानता हूँ। क्यों, क्या ऐसा नहीं है? ऐसा ही है। जब तुम जवाब नहीं देते, तो मानना पड़ेगा कि तुम मेरी बात मानते हो। अच्छा, तो क्या हम लोग यह नहीं मानते कि दैवी जीव या तो स्वयमेव देवता हैं या देवताओं की संतानें हैं। क्यों यह मानते हो कि नहीं?

मेली०—मानता हूँ।

सुक०—ठीक है, तो तुम यह मानते हो कि मैं दैवी बातों पर विश्वास करता हूँ। अच्छा तो जब दैवी बातें हैं तब देवता अवश्य हैं। दूसरे शब्दो मे तुम्हारे ही कहने के मुताबिक मैं देवताओं को मानता हूँ; फिर तुम्हारा यह कहना कि देवताओं को नहीं मानता क्या सीधी सादा बात को पेचीली बनाकर मेरी मसखरी उड़ाना और मुझे धोखा देना नहीं है? यदि तुम यह कहो कि यह छोटे देव, देवी, बड़े देवताओं के जारज या दोगले संतान हैं (चाहे दूसरी माता से या दासियों से हों), जैसा कि कहा जाता है, तो मैं पूछता हूँ कि भला ऐसा भी कोई मनुष्य होगा जो देवताओं के संतानों का होना माने और देवताओं का होना न माने? क्या कोई यह मानेगा कि

गदहे या घोड़े के बच्चे तो होते हैं पर गदहे या घोड़े नहीं होते ? मुझ पर ऐसा अद्भुत अपराध लगाने से तुम्हारा अभिप्राय क्या है ? तुम मेरी विद्या जाँचना चाहते हो या तुम्हें मुझ पर लगाने लायक और कोई अपराध मिला ही नहीं ? तुम चाहे लाख सिर मारो पर तुम्हारी यह बात कभी कोई अदनी से अदनी समझ रखनेवाला मनुष्य भी नहीं मानेगा कि दैवी बातों पर विश्वास रखना देवताओं पर विश्वास रखना नहीं है ।

पर भाई एथेंसवासियो ! बात असल में यह है कि मेलीटस ने मुझ पर जो अपराध लगाया है उससे अपने को दोषमुक्त करने के लिये मैंने जो कुछ कहा वही बस है । अपनी सचाई का प्रमाण मैंने यथेष्ट दे दिया । पर मैं फिर से आप लोगों को बतलाए देता हूँ कि बहुत से लोग मुझसे नाराज़ हैं और मेरे सैकड़ों शत्रु हो गए हैं और शायद यदि मैं अपराधी ठहराया गया तो इसी कारण से ठहराया जाऊँगा । आनाइटस या मेलीटस के कहने से नहीं, जनसाधारण का अंध पक्षपात और अयथा संदेह मेरे नाश का कारण होगा । मेरे पहले भी इसी अंध-विश्वास ने बहुतों की जान ली है और यदि मेरी जान भी गई तो इसी कारण जायगी, और फिर कुछ मैं ही तो इसका आखिरी बलिदान हूँ नहीं, न जाने आगे भी कितने बेचारे इसी कारण मारे जायँगे ।

शायद कोई कहे कि "क्यों भाई सुकरात, तुम्हारे सिर पर क्या भूत सवार है, जो ऐसा काम करते नहीं लजाते जिससे प्राणों पर आ बनने की नौबत पहुँच गई ?" तो उसे सिवाय इसके मैं क्या जवाब दूँगा कि देखो भाई, जब कि कोई अदना सा आदमी भी कोई काम कर्त्तव्य समझकर सिर पर उठा लेता है, तब क्या फिर वह उसके आगे जीने मरने की परवाह करता है ? आप खुद भी समझ देखें कि उसके ध्यान में जब समा गया कि जो काम मैं करता हूँ, न्याय्य और उचित करता हूँ, अनुचित नहीं, तो फिर चाहे वह भला हो या बुरा कैसा ही मनुष्य क्यों न हो उसे क्या मरने जीने की कुछ परवाह होगी ? यदि आप ऐसा समझते हैं कि उसे मरने जीने को कुछ समझना चाहिए तो आप सख्त गलती करते हैं। देखिए आप ही के पौराणिक इतिहास के अनुसार ट्राय के युद्ध मे जो दैवी मनुष्य काम आए और उनमे थेटिस के पुत्र ने जिस वीरता से प्राण त्यागे. क्या उनका कोई आज दिन नाम भी लेता यदि अपमान के आगे उन्होंने मृत्यु की तनिक भी परवाह की होती ? क्योंकि जब उनकी मातादेवी ने स्नेहवश (जब कि वह हेकटर को मारने के लिये होंठ चबा रहा था) पुत्र से यह कहा कि "देख बेटा ! यदि तू अपने साथी पित्रोकल का बदला लेने के लिए हेकटर को मार डालेगा तो

तेरे प्राण भी कदापि नहीं बच सकते क्योंकि हेकटर के बाद ही तेरी बारी आवेगी।" उसने माता की बात सुनी, पर मृत्यु के भय से वह जरा भी नहीं डरा। उसे कापुरुष बनकर जीना और अपने मित्र का बदला लिए बिना जीना अधिक भयानक मालूम हुआ। उसने केवल यही कहा—"नहीं माताजी, मैं उस कुकर्मी को दंड दूँगा और मरूँगा। मुझे मत रोको, पापी को दंड देने दो और मरने दो। मैंने वृथा ही पृथिवी का भार बढ़ाने के लिये जन्म नहीं लिया है। लोगों में कलंकित होने के बदले सौ सौ बार मरना अच्छा है।" आप लोग क्या सोचते हैं कि वह तनिक भी मृत्यु से डरा था? भाई एथेंसवासियो! मेरा तो यही सिद्धांत है कि मनुष्य ने जिस काम को कर्त्तव्य समझकर धारण कर लिया, चाहे उसे वह स्वयमेव करे या अपने स्वामी या सर्दार द्वारा उसके लिये नियुक्त किया जाय, उसे उस काम से हटना नहीं चाहिए। सिवाय अधर्म के अपने कर्त्तव्य-पालन से च्युत होने के बदले उसे और किसी बात का ध्यान नहीं रखना चाहिए, चाहे कोई भी आफत आवे वा भले ही मृत्यु भी क्यो न आ जाय।

क्यों जनाब, जब युद्ध के समय पोटीडिया, एमफीपोलिस, डेलीयम, इन सब युद्धों के अवसर पर आप लोगों ने जिन अफसरों को मुकर्रर किया उनके आज्ञा-

नुसार मैं अपनी जगह पर नहीं डटा रहा और अन्य सिपाहियों की तरह मरने की जोखिम से डरा। फिर आज अपने कर्तव्य से क्यों मुख मोड़ूँ ? वही कर्तव्य जिसका आदेश मुझे भगवान् की ओर से हुआ है अर्थात् बुद्धि के खेल मे लोगों से तर्क वितर्क करना और अपनी जाँच करवानी यही मेरा इस समय के कर्तव्य का युद्ध-क्षेत्र है। ऐसा करना भी निहायत बेजा होगा, और यदि न्याय से पूछिए तो इसके लिये मुझ पर अपराध लगेगा कि मैंने देववाणी को अमान्य किया और मृत्यु के भय से बुद्धिमान् न होने पर भी मैं अपने को बुद्धिमान् समझता रहा। भाइयो, मृत्यु से डरना भी सिवाय इसके और कुछ नहीं है कि बुद्धिमान् न होकर अपने को बुद्धिमान् समझना। मृत्यु से डरना क्या है, यही है कि जिस बात को नहीं जानते उसका जानकार बनना। मनुष्य जितनी बातें बतला सकता है उनमे मृत्यु से बढ़कर उत्तम बात होनेवाली उसके लिये और कोई नही है, पर लोग इससे ऐसा डरते हैं कि मानों वे खूब जानते हैं कि इससे बढ़कर बुराई और दूसरी नही है। और ऐसा डरना क्यों ? केवल इसी लिये कि वे बिलकुल जानते नहीं कि क्या होगा। वे समझते हैं कि बड़ा बुरा होगा। किसी ने आकर आज तक कहा तो नहीं कि मौत बुरी है या भली, पर लोग

उसको बुरा समझे बैठे हैं। इस बारे मे भी सब लोगों से मेरी समझ निराली है। यदि मैं अन्य लोगों से अपने को बुद्धिमान् मानूँ भी तो इसी कारण से कि मैंने जहाँ तक सोचा है परलोक का पूर्ण और सच्चा ज्ञान मुझको नहीं है, और यह मैं जानता हूँ कि इस विषय में मैं मूर्ख हूँ। पर लोग समझ बैठे हैं कि परलोक जाने से बढ़कर बुराई और कोई नहीं है। इसी लिये वे मौत से थर थर काँपते हैं। पर हाँ यह मैं खूब जानता हूँ और इसका मुझे ठीक ज्ञान है कि अधर्म्म करना बुरा है; अपने बड़े की आज्ञा टालना अनुचित है; चाहे वह देवता हो या मनुष्य। इसलिये जिस काम को मैं बुरा समझता हूँ, उसे कभी करूँगा नहीं, और जिसे अच्छा समझता हूँ उसके करने से संसार का कोई भय भी मुझे रोक सकेगा नहीं। अस्तु, यदि आप लोग इस समय मुझे छोड़ देंगे और आना-इटस की बात गलत समझकर मेरी रिहाई कर देंगे, तो बात यही होगी, अर्थात् यही समझा जायगा कि मुझ पर किसी तरह का जुर्म लगना ही अनुचित था; और यदि ऐसा न कर आप लोग मुझे प्राणदंड देने ही पर मजबूर हों, क्योंकि उसके कहने के मुताबिक यदि मैं छूट गया तो आप लोगों के सारे लड़के-बाले मेरी शिक्षा के अनुसार चलकर बिगड़ जायँगे, और आप मुझ पर दया करके कहे कि "अच्छा, देखो सुकरात, अबकी दफः आना-

इटस की बात न मानकर हम तुम्हे छोड़ देते हैं; पर इस शर्त पर कि तुम इस प्रकार के तर्क-वितर्क और जाँच-पड़ताल से बाज आओ; और यदि ऐसी हरकत करते हुए फिर कहीं तुम पाए जाओगे तो निश्चय तुम्हे प्राणदंड मिलेगा।" यदि इन शर्तों पर आप मुझे रिहाई देना चाहेंगे या चाहें तो मेरा जवाब यह है कि हे एथेंसवासी भाइयो, मैं आप लोगों को बड़ी इज्जत और प्यार की निगाह से देखता हूँ, पर परमात्मा की आज्ञा टालकर आपकी आज्ञा नही मान सकता, और जब तक मेरे दम मे दम है मैं कभी भी दार्शनिक तर्क वितर्क करना नहीं छोड़ूँगा और आप लोगों से जिरह करके सचाई ढूँढ़ निकालने से मुँह न मोड़ूँगा और जो मिलेगा उसके आगे इस सचाई को प्रगट करने से बाज नहीं आऊँगा और जैसी कि मेरी आदत है जो मिलेगा उससे कहता रहूँगा कि 'मित्रवर, आप एथेंसवासी हैं, जो विद्या और बुद्धि के लिये भुवन-विख्यात हैं; अस्तु, आपको क्या केवल धन-दौलत, मान-इज्जत या नाम के लिये कुल जिंदगी गँवानी उचित है? क्या विद्या बुद्धि, सत्य असत्य या आत्मिक उन्नति का ध्यान आप लोगों को करना बिलकुल उचित नहीं है?' यदि मेरी बात काटकर वह कहेगा कि 'नहीं, मैं इन बातों का भी ध्यान रखता हूँ' तो मैं उसे यों छोड़ूँगा नहीं। उससे जवाब-सवाल करूँगा, उसकी जाँच पड़ताल करूँगा

और यदि देखूँगा कि वास्तव में उसमें धर्म्म का अंश नहीं है और वह अपने को धर्म्मात्मा समझता है तो उसे ऐसी परमोत्तम चीज की बेकदरी करने के लिये अवश्य खरी और चोखी सुनाऊँगा।

छोटे बडे, देशी विदेशी किसी को भी मैं न छोड़ूँगा। जो मिलेगा उससे छेड़कर ये बातें करूँगा, पर विशेषकर अपने स्वदेशी भाइयों से तो अवश्य कहूँगा क्योंकि वे मेरे सबसे अधिक नजदीकी हैं। मुझे परमात्मा की ओर से ऐसी आज्ञा है। आप अपना अहोभाग्य समझिए कि भगवान् ने मुझे यों आपकी सेवा के लिये सन्नद्ध कर दिया, क्योकि इधर उधर घूमते हुए आप लोगों के पास जा जाकर आपकी आत्मा जिसमें पूर्णता को प्राप्त हो, आप लोगों को आत्मज्ञान हो, यही सुझाना मेरा मुख्य धर्म्म रहा है। मैं निरंतर आप लोगों को यही समझाता रहा हूँ कि आत्मा के आगे शरीर की, धन-दौलत की कुछ भी परवाह मत कीजिए, क्योंकि धर्म्म, धन और दौलत से नहीं होता। धर्म्म से धन, मान, शारीरिक सुख ये सब प्राप्त होते हैं। क्या भीतर क्या बाहर जितनी अच्छी चीजें मनुष्य की हितकारिणी हैं सब धर्म्म ही से प्राप्त होती हैं। भाइयो! यही मेरी शिक्षा है। यदि इस शिक्षा से मैं युवकों को बिगाड़ता हूँ तो वास्तव में बड़ी हानि पहुँचाता हूँ, इसमें संदेह नहीं। शायद कोई यह कहे कि नहीं

यह नहीं, मैं और ही कुछ सिखाता हूँ, तो वह सरासर झूठा है। अस्तु भाई एथेंसवासियो सुनिए, चाहे आप आनाइटस की बातें मानें या न मानें, मुझे चाहे छोड़ें या दंड दें, मैं अपने जीवन का उद्देश्य बदलनेवाला नहीं हूँ और न कभी बदलूँगा। एक दफ़ः क्यों, चाहे सौ दफ़ः भी इसके लिये मुझे मरना पड़े तो भी अपनी प्रतिज्ञा से एक तिल भी न डिगूँगा।

आप मुझे रोकें नहीं। सुनते जाइए। जैसे पहले विनय कर चुका हूँ, उस प्रार्थना को याद रखिए। सुनते जाने से आपके लिये भला ही है। अब मैं आपसे कुछ ऐसी बात कहूँगा जिससे आपका जी चाहेगा कि चिल्ला उठें, पर नहीं आप ऐसा कीजिएगा मत। मैं जो हूँ सो आपको बतला ही चुका हूँ; इस अवस्था में यदि आप मुझे मार ही डालेंगे तो ठीक जानिए कि मुझसे अधिक हानि आप ही की होगी। मेलीटस और आनाइटस की क्या मजाल जो मेरा कुछ कर सकें, यह सर्वथा असंभव है; क्योंकि मुझे पूरा विश्वास है कि भगवान् कभी भी एक भले आदमी को बुरे से कष्ट पहुँचने नहीं देगा। भले ही वे लोग मुझे मार डाले, देश-निकाला दे दें या मुझको अपने सामाजिक अधिकारों से रहित कर दें, क्योंकि ये लोग इन्हीं बातों को सबसे अधिक बुराई समझते हैं, पर मैं ऐसा नहीं समझता। मैं तो यह मानता हूँ कि

वे जैसा काम इस समय कर रहे हैं उससे बढ़कर और कोई दूसरी बुराई हो ही नहीं सकती अर्थात् एक मनुष्य को अन्याय रूप से प्राणदंड दिलवा देना, बेकसूर सजा दिलवाना सबसे बुरा है। अस्तु, भाई एथेंसवासियो, मैं अपने बचाव के लिये हरगिज बहस नहीं कर रहा हूँ जैसा कि आप समझते होंगे; मैं केवल आपको यह बतला रहा हूँ कि परमात्मा के अपराधी मत बनिए। उसने मुझे आपकी सेवा के अर्थ दान किया है। मुझे मारकर इस दान का अपमान मत कीजिए। मुझे यदि आप मार डालेंगे तो निश्चय जानिए फिर मेरे ऐसा दूसरा आदमी आपको मिलने का नहीं, मानों आपकी नगरी एक बड़ा उम्दा घोड़ा है जो अपने कद के कारण कुछ सुस्त है, उसे काटकर जगा देने के लिये गोया एक डाँस की तरह परमात्मा ने मुझे आप लोगों मे भेजा है, क्योंकि ठीक डाँस की तरह मैं जब मौका मिला तभी आप लोगों के बदन पर बैठकर आप लोगों को चौंका देता हूँ, आपसे जबर्दस्ती तर्क करके असली बातें कहलवाता, और आप मे से प्रत्येक का तिरस्कार किया करता हूँ। मेरे बदले मेरे ऐसा दूसरा मनुष्य आपको मिलना कठिन है; अस्तु आप यदि मेरी बात मानें तो मुझे न मारें। आपकी ठीक वही हालत है जैसे कि जब सोते को सहसा कोई जगाता है तो उसे बड़ा बुरा मालूम पड़ता है, इसलिये यदि आप

आनाइटस की बात मानेंगे तो मुझे एक ही बार मे मार-कर निश्चित होकर जन्म भर सो सकते हैं, जब तक शायद परमात्मा कृपाकर आपको जगाने के लिये दूसरा कोई मनुष्य न भेजे। आप लोग निश्चय जानिए कि परमात्मा ही ने मुझे आप लोगों मे भेजा है, क्योंकि केवल एक झोंकवश ऐसा नहीं हो सकता कि मैं अपना खुद का सब सुख-चैन और काम-काज छोड़कर हानि सह-कर आपकी भलाई के लिये जीतोड़ परिश्रम किया करूँ और बिना बुलाए सबके पास जा जाकर बाप या भाई की तरह धर्म्म पर ध्यान रखने के लिये आप लोगों को समझाया करूं। आखिर इसका कुछ न कुछ कारण तो अवश्य है, क्या मुझे इससे कोई निज का लाभ पहुँचा है? या इसके लिये मुझे किसी ने कभी कुछ टके दिए हैं? यह तो आप भी जानते हैं कि मुझ पर अपराध लगाने-वालों ने बेहया होकर सब कुछ मेरे विरुद्ध कहा है पर यह साहस किसी का भी नहीं हुआ कि वह मुझे किसी से कुछ रुपया वसूल करने या माँगने का दोष लगा सके। लाख सिर मारने पर भी वे ऐसा कोई प्रमाण उपस्थित नहीं कर सकते। अधिक क्या कहूँ, मेरी दरिद्रता ही मेरी सचाई का गवाह है।

शायद आप लोगो को यह कुछ अजीब बात मालूम पड़ती हो कि यों तो मैं सबके पास जा जाकर तर्क वितर्क

किया करता हूँ पर पंचायत में न तो कभी आता और न कुछ बोलता हूँ। इसका कारण क्या है? इसका कारण एक दफः नहीं कई दफः कहते हुए आप लोगों ने मुझे सुना होगा। बात यह है कि ईश्वर की तरफ से (वही ईश्वर जिसकी, मेलीटस ने फर्द जुर्म मे खिल्ली उड़ाई है) मुझे एक तरह की आवाज आती है। बचपन से यह आवाज सदा मेरे साथ रही और जहाँ जब कोई ऐसा काम मैं करने लगा, जो मुझे करना उचित नहीं था, तो इस आवाज ने मुझे रोक दिया। और जो किसी काम को करते समय यह आवाज नहीं आती तो उसे मैं बेखटके करता हूँ। इस आवाज ने मुझे पंचायत से, राज्यकार्य्य के बखेड़ों से अलग रहने के लिये कहा तो अच्छा ही किया, क्योंकि मैं ठीक कहता हूँ कि यदि राजकार्य्य में मैं टाँग अड़ाता तो अब तक कब का मेरा सिर धड़ से अलग हो गया होता। बिना किसी की कुछ भलाई किए, बिना किसी की कुछ सेवा किये ही मुझे यह शरीर कब का छोड़ देना पड़ता। भाइयो! मैं सत्य कहता हूँ, आप रंज न हों। ऐसा कौन मनुष्य है जो राज-सभा की बुराई और नियमविरुद्ध बातों के विरुद्ध, सर्वसाधारण मनुष्यों की इच्छा; मनसा और अभिप्राय के विरुद्ध आवाज उठावे और उसकी जान बची रह जाय? यदि उसे थोड़े दिन के लिये भी अपनी जान बचानी है तो

उसे अन्याय तथा अधर्म के विरुद्ध खुले तौर पर आवाज न उठाकर निज के तौर पर काम करना चाहिए। मैं आपसे यह मुकालते की बात नहीं कहता; जो कुछ कहता हूँ सबका पक्का प्रमाण दूँगा, केवल बातों ही का नहीं, काम का सबूत देके साबित करूँगा। अच्छा तो सुन लीजिए; आपको भी मालूम हो जाय कि मुझे क्या हो गया है जिसके कारण कोई भी मौत से भय दिखाकर मुझसे अधर्म नहीं करवा सकता; और अपनी बात छोड़ने की अपेक्षा मैं फौरन मरने के लिये तैयार हूँ। शायद मैं जो बात आपसे कहा चाहता हूँ वह अदालत में एक साधारण बात समझी जाती हो, पर बात वास्तव में है बिलकुल सच। राजसभा में आज तक यदि कोई जगह मैंने पाई है तो वह साधारण सभासद की है। अरगिनूसाइ के युद्ध के बाद दस सेनापतियों ने इकट्ठे होकर अपनी सेना की रक्षा नहीं की। इस अपराध पर आप लोगो ने उन पर जुर्म लगा एक साथ अभियोग चलाना चाहा था। यह बात आप लोगों को भी पीछे से कानून के विरुद्ध मालुम हुई थी। उस समय मेरी ही जातिवाले एंटीउकिस, सब सभापति थे। उन सब प्रधानो में से अकेले मैंने ही आप लोगों की नियमविरुद्ध कार्रवाई का विरोध किया और सबके विरुद्ध अपनी राय दी थी। साधारण सभासद सब मुझे गिरफ्तार करने और पद-

च्युत करने को तैयार हो गए; आप लोगों ने भी झल्ला-कर बकना-झकना शुरू किया और मुझे सबकी राय में राय देने के लिये बड़ा जोर दिया। पर मैंने सोचा कि अन्याय और अधर्म्म की बात मे आप लोगों का पक्ष लेने की अपेक्षा मौत या कैदखाने के खतरे में जाना अच्छा है। यह प्रजातंत्र राज्य के नाश होने के पहले की बात है। जब राज्यतंत्र का जमाना आया तब तीस की मंडली ने अन्य चार मनुष्यो के साथ मुझको भी राजसभा-भवन में बुला भेजा और लीयोन से सलमी नामक एक व्यक्ति को मार डालने के लिये ले आने की आज्ञा दी। उन्हे तो ऐसी ऐसी आज्ञाएँ जारी करने की आदत पड़ गई थी, जिसमे जहाँ तक हो सके अधिक लोग उनके किए हुए अपराधों मे शामिल हो सकें यही उनकी मनसा थी, पर उस मौके पर भी मैंने केवल बातों से नहीं, वरन् काम से, प्रत्यक्ष दिखा दिया कि मैं मृत्यु से तृण बराबर भी नहीं डरता, पर हाँ मनुष्य या ईश्वर के कानून के विरुद्ध कोई काम करने से अवश्य बहुत डरता हूँ। वह गवर्मेंट अपना सब कुछ प्रताप दिखाकर मुझे अधर्म करने के लिये डरा न सकी और जब हम लोग राजसभा-भवन से बाहर निकले तब मेरे अन्य चारों साथी सलमी को लिवा लाने के लिये लीयोन की ओर चले गए और मैं घर चला आया; और यदि उसके थोड़े ही

दिनों बाद बहुत जल्दी उस मंडली के शासन का अंत न हो गया होता तो बेशक मुझे अपनी करतूत के लिये प्राणों से हाथ धोना पड़ता। आप मे से बहुत से लोग इस बात के साक्षी भी हैं।

अब आप ही बतलाएँ कि यदि मैं पबलिक मामलों में दखल दिया करता और एक धार्मिक मनुष्य की तरह हरदम धर्म का पक्ष लेना अपना सर्वोपरि कर्त्तव्य समझता तो क्या अब तक मेरी जान बची रहती? कदापि नहीं, मैं चाहे और कोई भी क्यों न होता, मुझे अवश्य मौत के दरवाजे जाना पड़ता। पर अपनी जिंदगी भर में जब कभी मुझे पबलिक या प्राइवेट किसी मामले मे शामिल होने का मौका पड़ा है तब आप लोगो ने भी देखा ही होगा कि धर्म अधर्म के विषय मे किसी मनुष्य से मैंने रत्ती भर भी रियायत नहीं की है—किसी से भी नहीं—यहाँ तक कि जिन्हें मेरे अभियोक्ता झूठमूठ मेरे शिष्य बतलाते हैं, उनसे भी नहीं; क्योंकि बात तो असल में यह है कि मैं कभी किसी का गुरु बना ही नहीं, पर हाँ जब मैं अपने कर्त्तव्य में लगा रहता था, उस समय जवान या बूढ़ा चाहे जो हो मेरी बात अनायास सुन सकता था। इसके लिये कुछ फीस नहीं लगती थी।

मैं तो गरीब अमीर सभी से प्रश्नोत्तर करने को तैयार हूँ और यदि कोई मेरी बातों का जवाब देकर पुनः उस

विषय पर मेरे विचार सुनना चाहे तो उसे कोई रोक टोक नहीं है और इसी कारण से मैं, इन मनुष्यों को भला या बुरा बना देता हूँ। ऐसा अभियोग मुझ पर लगाना क्योंकर उचित हो सकता है ? क्योंकि न तो मैंने कभी किसी को कुछ सिखाया और न मैं कुछ सिखाने का दावा करता हूँ। ऐसी हालत मे यदि कोई यह हामी भरे कि उसने अकेले मे मुझसे कोई ऐसी बात सुनी या सीख ली है जो सब लोगों ने कभी नहीं सुनी है तो वह सरासर झूठा है।

फिर क्या कारण है कि ये लोग मेरी संगत मे खुशी से अपना बहुत सा समय गवाँते हैं ? मैं तो आपसे यह कह ही चुका हूँ। मैंने आपसे यह बिलकुल सच ही कहा है, कि ये लोग जब ऐसे लोगों पर जिरह के सवाल होते सुनते हैं जो मूर्ख होने पर भी अपने को समझदार समझे बैठे हैं, तो इन्हें बड़ा मजा आता है; क्योंकि इस विषय की चर्चा के सुनने में वास्तव में एक विचित्र ही आनंद आता है। कोई मूर्ख जब जिरह के सवालों से अपनी मूर्खता आप ही प्रगट कर रहा हो और साथ ही अपने को बुद्धिमान् भी समझ रहा हो तब उसकी उस समय की बातें सुनकर श्रोताओं को बड़ा आनंद आता है, इसमे कोई संदेह नहीं। इसके सिवाय मैं यह भी कहे देता हूँ कि लोगों की समीक्षा करने के लिये मुझे

एक दैवी आदेश है। यह आदेश मुझे स्वप्न मे दैवाज्ञा द्वारा तथा अन्य द्वार से प्राप्त हुआ है, जिन द्वारों से मनुष्यों को दैवी आज्ञाएँ प्राप्त हुआ करती हैं। वास्तव में सही बात यह है। यदि सही न होती तो सहज ही खंडित हो जाती, क्योंकि यदि वास्तव में यह बात होती कि मैं युवकों को बिगाड़नेवाला होता तो बड़े होने पर मुझको अपना बिगाड़नेवाला समझकर, उनमें से कुछ लोग अवश्य मुझ पर अभियोग लाते और यों अपना बदला चुकाते। यदि संकोचवश वे लोग ऐसा करने से हिचकते तो उनके बाप भाई रिश्ते नातेवाले मेरी बुराई को याद कर कोई तो अवश्य ही मुझसे बदला लेने के लिये खड़ा होता। देखिए, इनमें से कितने महाशय यहाँ उपस्थित भी हैं। वह देखिए मेरी ही उम्र और मेरी ही जाति का क्रटोबोला का पिता क्रटो मौजूद है, अश्विनी का पिता सप्तेश जाति का लाइसेनिया बैठा है, एपीजेनीस का पिता शीफीयाई जाति का अंतिफोन भी मौजूद है। इनके अतिरिक्त ऐसे भी बहुत से लोग हैं जिनके भाइयों ने मेरी संगत मे अपना बहुत सा समय बिताया है। देखिए थीयोजोटीडी का पुत्र और थीयोडोटो का भाई निकोसत्राता मौजूद है। थीयोडोटो मर गया है, वह क्यों चुप है। थीयोडोटो तो अब उसे मना करने के लिये आने ही नहीं लगा; दीमोदोको का पुत्र और थीगी

का भाई बैठा है, अरस्तु का पुत्र और प्लेटो का भाई आदिमांती मौजूद है, अनिस्तूदोरो का भ्राता अंतुदोरो भी यहाँ मौजूद है। इनके सिवाय और भी बहुतेरों का नाम मैं आपको गिना सकता हूँ। उन्हे अपनी स्पीच देते समय मेलीटस को गवाही में जरूर बुलाना चाहिए था। कोई हर्ज नहीं, यदि वह उस समय इनकी साची दिलवाना भूल गया हो तो अब सही। मैं चुपचाप खड़ा रहूँगा, तब तक जबान भी नहीं हिलाऊँगा—वह आवे और बतलावे कि उसके ऐसे कोई गवाह हैं? गवाह देना तो दूर रहा, आप देखेंगे कि ये सब लोग उलटे मेरी ही बात को पुष्ट करने के लिये (जैसा कि मेलीटस और आनाइटस मुझे कहते हैं) तैयार हैं। अच्छा जाने दीजिए, जो लोग मेरे बिगाड़ने से बिगड़ चुके हैं, वे मेरी हाँ में हाँ मिलावेंगे ऐसा आप कह सकते हैं, पर यह तो बतलाइए क्या कारण है कि उनके नाते रिश्तेवाले भाई बंधु ऐसा करने के लिये अग्रसर नही होते? महाशयो, कारण सिवा इसके कुछ नही है कि वे मुझे सत्य और न्याय का तरफदार और मेलीटस इत्यादि को सरासर मिथ्यावादी जानते हैं।

अस्तु, मित्रो! अब और अधिक मैं क्या कहूँ, इसी प्रकार की और भी सब बातें होंगी, जो कि अब तक अपने बचाव के लिये मैंने कही हैं। शायद आपमें से यहाँ कोई ऐसा हो जिसे यह याद कर लज्जा आती हो कि इस

अभियोग से भी एक साधारण अभियोग में वह किस प्रकार जजों के हाथ पैर जोड़कर छुटकारा पाने के लिये गिड़गिडाया था और आप लोगों के दिल को मुलायम करने के लिये अपने नाते रिश्तेदार बंधु-बांधव और छोटे मोटे बच्चों तक को अदालत के सामने ले आया था, और यह देखकर उसकी अक्ल चकरा रही होगी कि सबसे भारी आपत्ति में—उसकी समझ के अनुसार—फँसे रहने पर भी, मैंने यह सब कुछ भी नहीं किया। शायद यह बात लक्ष्य कर उन महाशय का दिल मेरे प्रति कठोर हो जाय, संभव है कि वे क्रोध से भर जायँ और मेरे विरुद्ध सम्मति (वोट) दे डाले। यदि आपमे से कोई महाशय ऐसे हों—मैं नहीं समझता कि कोई होंगे—पर शायद कोई हो, तो उनसे मेरा यह कहना युक्तिविरुद्ध न होगा, यदि मैं उनसे कहूँ—"मित्रवर मेरे भी नाते रिश्ते, सगे संबंधी, बालबच्चे सब ही हैं; क्योकि मैं भी माता के गर्भ ही से पैदा हुआ हूँ, कुछ आकाश से नहीं टूट पड़ा। सो भाई एथेंसवासियो! मेरे भी सगे संबंधी हैं, और तीन लडके भी हैं, एक उनमे से कुछ बड़ा और दो बच्चे हैं, पर मैं उनमे से किसी को भी यहाँ लाकर आपकी दया का उद्रेक करा अपने छुटकारे का यत्न नहीं करूँगा।"

क्यों ऐसा नही करता? भाई साहबो! आप यह न समझें कि मैं घमंड से ऐसा कर रहा हूँ या आपको

हलका करने की इच्छा से ऐसा करता हूँ;—मुझमें मृत्यु के मुख में जाने की हिम्मत है या नहीं, यह रही दूसरी बात—पर महाशयो! अपने सम्मान के लिये, आपकी महानगरी और आपके नाम के लिये, इस उम्र में उस प्रकार का कोई काम करना मैं उचित नहीं समझता। सच चाहे झूठ, जो हो, लोगों को यह विश्वास तो अवश्य हो गया है कि सुकरात अन्य सब लोगों से कुछ विलक्षण ही है। इसलिये यह बड़ी लज्जा की बात होगी यदि आपमें से यहाँ कोई महाशय जो विद्या, बुद्धि, शूरता या और किसी गुण के लिये विख्यात हैं, उक्त प्रकार की मामूली हेय कार्रवाई करें। मैंने प्रायः देखा है कि अच्छे अच्छे विख्यात सज्जन भी अपने अभियोग के समय तरह तरह के विचित्र काम करते हैं, मानों मृत्यु से बढ़कर और कोई भयानक चीज है ही नहीं, और यदि वे उस समय बच गए तो फिर सदा जीते रहेंगे। ऐसे मनुष्य इस महानगरी की बदनामी के कारण हैं, क्योंकि यदि कोई अजनबी देखे तो यही समझे कि बड़े बड़े योग्य एथेंसवासी जो अपने भाइयों द्वारा न्यायाधीश, राजसभासद तथा अन्य उच्च राजकर्म में नियुक्त किए जाते हैं, एक औरत से भी कम हिम्मत रखते हैं। भाई, एथेंसवासियो! आपमे से जिनका कुछ भी नाम है, उन्हें यह सब काम नहीं करना चाहिए और न हमें

करने देना चाहिए, वरन् अपने आचरण द्वारा आपको प्रगट कर देना चाहिए कि जो लोग ऐसी दया उपजाने-वाली नाट्यकला कर नगर को कलंकित करते हैं उनके प्रति चुप रहनेवालों की अपेक्षा आप अधिक कठोरता का बर्ताव करेंगे।

अच्छा, नेकनामी और बदनामी की बात जाने दीजिए। यों भी मैं यह बात उचित और धर्म्मानुमोदित नहीं समझता कि दंड से बचने के लिये न्यायाधीशों के हाथ पैर जोड़े जायँ। उचित तो यह है कि युक्ति से उनके मन का समाधान कर दिया जाय। सच्ची बातें उनके सामने पेश कर दी जायँ जिसमें वे सारे मामले को यथोपयुक्त न्यायतुला पर तौल सकें। न्यायाधीश यहाँ अपने दोस्तों से दोस्ती अदा करने के लिये नहीं बैठे हैं, न्याय करने के लिये हैं, और वे लोग इस बात की शपथ खा चुके हैं कि यदि चाहेंगे तो किसी पर रिआयत नहीं करेंगे, सब बातें और सब मामले कानून के मुताबिक फैसला करेंगे। फिर क्या यह उचित होगा कि हम लोग आपको शपथ भंग करने के लिये ललचाएँ और आप भी क्यों हमारी बात मानें? क्योंकि ऐसा करना दोनों के लिये अधर्म्म होगा। इसलिये भाइयो, आप लोग मुझ से ऐसी बातें करने की आशा न करें क्योंकि इन बातों को मैं अनुचित, अन्याय्य और अधर्म्म समझता हूँ, और

फिर आज, इस समय मैं ऐसा करूँ जब कि मेलीटस मुझ पर अधर्मी ही होने का अपराध लगा रहा है ! क्योंकि यदि इन कार्रवाइयों से मैं सफल हो गया और हाथ पैर जोड़कर, गिडगिड़ाकर आपकी शपथ भंग करवा सका तो भाइयो, यह तो आपको साफ साफ सिखलानेवाला ठहर जाऊँगा कि देवी देवता कोई है नहीं, और अपनी रक्षा के बदले उलटे नास्तिकता का अपराध मेरे गले बँध जायगा। पर भाई साहबो ! यह सत्य से परे है। मैं देवी देवताओं को वैसा ही मानता हूँ जैसा कि कोई भी मेरे अभियोक्ता मानते हैं। और अब मैं आपके और न्यायकर्ता भगवान् के हाथ अपना मामला सौंपता हूँ जिसमें आप लोग अपने और मेरे लिये जैसा उत्तम समझें फैसला कर दें।

(२२० वोट उसके पक्ष और २८१ वोट विपक्ष में आए। अस्तु, ६१ अधिक सम्मति से वह अपराधी ठहराया गया।)

भाई एथेंसवासियो ! आपके फैसले से मैं कुछ बुरा नहीं मानता हूँ। इसमें कई कारण हैं। मुझे तो बराबर से यह खटका था कि आप मुझे अपराधी ठहरावेंगे, इसलिये इस पर इतना आश्चर्य नहीं हुआ जितना वोटों की गिनती पर हो रहा है। मुझे कदापि आशा नहीं थी कि इतने भी लोग मेरी तरफ से वोट देंगे, पर अब यह मालूम हो गया कि केवल तीस वोट और मेरे पक्ष में होते तो मैं बच जाता। जो हो, मैं तो यही समझता

हूँ कि मेलीटस मेरा कुछ नहीं कर सका; केवल यही नहीं, यदि आनाइटस और लाइकोन ये दोनों भी मुझ पर अपराध लगाने के लिये अग्रसर न हुए होते तो उसे रुपये में तीन आने वोट भी प्राप्त न होते और एक सहस्र दरहिम * का जुर्माना देना पड़ता।

अच्छा, तो वह मेरे लिये मृत्यु दंड ठहराता है। खैर, यह भी सही। अब इसके बदले में मैं अपने लिये और कौन से दंड का प्रस्ताव करूँ? मेरे योग्य कौन सा दंड है? चुपचाप न बैठकर आराम करना छोड़ने की ठानकर मैंने जो अपनी जिंदगी बिता दी, उसके लिये मैं कौन से दंड का प्रस्ताव करूँ? मैंने किसी भी सांसारिक विषय से नाता नहीं जोड़ा। अन्य लोगों की तरह धन दौलत, नाते रिश्तेदारी, नाम, वैभव, व्याख्यानबाजी, बड़े बड़े फौजी और राजकर्म्म के ओहदे, नाच-रंग, खेल-कूद— यहाँ एथेंस नगरी में सभी कुछ है,—पर मैंने सोचा कि इन बातों में जी लगाने के लिये प्राण धारण करना कोई बुद्धिमानी नहीं है। इसलिये मैं इस रास्ते गया ही नहीं, जहाँ जाने से न तो आपको और न अपने को मैं कुछ फायदा पहुँचा सकता। इसके बदले मैं अलग अलग

---

* ऐसा कानून था कि जो अभियोक्ता जजों के पाँचवें भाग की सम्मति प्राप्त न कर सकता उसे एक हजार दरहिम जुर्माना देना पड़ता था तथा और भी कई तरह का लांछन भोगना पड़ता था।

आपमें से हर एक के पास गया। किसलिये? आपका सबसे बड़ा उपकार करने के लिये—आपको यह समझाने के लिये कि "पहले अपने आपको पहचानकर तब अपने कामों मे हाथ डालो।"

तात्पर्य यह कि जहाँ तक संभव था, आपको समझदार बनाने के लिये—आपको यह बतलाने के लिये कि "जब तक एथेंस नगरी क्या है यह न समझ लो तब तक एथेंस के मामलों में दखल न दो", तात्पर्य यह कि इसी प्रकार से और भी सब बातों पर उचित ध्यान देने के लिये कहता गया। तो इस प्रकार से जिंदगी बिताने के लिये मुझे क्या मिलना उचित है? अवश्य कुछ अच्छी चीज मिलनी चाहिए, यदि वास्तव में मैं अपने लिये कुछ मिलने का प्रस्ताव करूँ, जो मेरे उपयुक्त हो और जिसे पाने में मेरी शोभा हो। भाइयो, ऐसे दरिद्र उपकारी के लिये क्या पुरस्कार है, जो केवल आपकी फुरसत का समय ही चाहता है? उसे तो प्राइटेनियम (सरकारी सभागृह) में सर्वसाधारण की ओर से पेंशन मिलनी चाहिए। यही उसका उपयुक्त पुरस्कार है। ओलींपिक खेल (वार्षिक खेल का उत्सव) में जो लोग अपने रथ या घोड़ों द्वारा जो कोई करतूत दिखाकर पुरस्कार पाते हैं उनसे बढ़कर उक्त पुरस्कार का भागी मेरे ही जैसा मनुष्य हो सकता है। वे खिलाड़ी तो आपको

क्षण भर के लिये खुश करते होंगे पर मैं तो ऐसी चेष्टा करता रहा हूँ जिसमे आप वास्तव में जन्म भर सुखी रहें। उक्त खिलाड़ियों को कुछ कमी नहीं है पर मैं दरिद्री हूँ। इसलिये यदि कोई दंड मैं अपने लिये उपयुक्त समझता हूँ तो वह यही है। मेरा यह प्रस्ताव है कि प्राइटेनियम में सर्कार की ओर से मेरी परवरिश की जाय।

शायद हाथ जोड़ने और आँसू बहाकर गिड़गिड़ाने के बारे में मैंने जो कहा था, उसी तरह इस बात पर भी आप मुझे उद्दंड या घमंडी समझते होंगे? पर भाइयो, ऐसा कदापि नहीं है। बात असल में यह है कि मुझे पूरा विश्वास है कि मैंने जान बूझकर कभी किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं है, यद्यपि मैं आपको यह बात समझा नहीं सका हूँ क्योंकि बहुत थोड़ा समय आपके साथ बातचीत करते मुझे बीता है। यदि अन्य स्थानों की तरह यहाँ भी जिंदगी और मौतवाले मुकद्दमे का फैसला एक दिन के बदले कई दिनों में होने का नियम होता तो शायद मैं आप लोगों को समझा देता, पर भाई साहबो! इतने थोड़े समय में मैं क्या कर सकता हूँ? मेरे शत्रुओं ने मुझ पर जो मिथ्या लांछन लगाए हैं उन्हें दूर करने के लिये यह काफी नहीं है। इसके सिवाय जब मुझे पूरा निश्चय है कि मैंने आज तक किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं है तब फिर आज अपने को निरपराधी जानता हुआ अपने लिये

किसी दंड का प्रस्ताव कर, मैं अपनी आप बुराई क्यों करूँ? जरूरत क्या है? क्या इसलिए कि मुझे मेली-टस द्वारा प्रस्तावित दंड भोगना पड़ेगा? पड़े तो पड़े। क्योंकि मैं तो कही चुका हूँ कि मैं नहीं जानता कि उक्त दंड (मृत्यु दंड) अच्छा है या बुरा। ऐसी अवस्था मे क्या मैं ऐसे दंड का प्रस्ताव करूँ जिसे मैं निश्चित रूप से बुरा जानता हूँ? क्या मैं कैदखाने में जाने की इच्छा प्रगट करूँ? क्यों किसलिये? कौन ऐसी आफत आई है जो मैं निर्दयी जेलरों के अधीन अपनी शेष आयु खोऊँ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यह सब मैं कुछ भी नहीं करूँगा। मुझे जेलखाने ही मे सड़ना पड़ेगा, क्योंकि जुर्माना देने के लिये मेरे पास रुपया नही है। क्या मैं देशनिकाले के दंड का प्रस्ताव करूँ? शायद आप लोग इसमें राजी भी हो सकते हैं, पर सोचने की बात है, कि अपनी जान को प्यारा समझकर यदि मैं यहाँ से अन्यत्र चला जाऊँ तो बाहर अन्य देशी लोग क्या मुझे जीता छोड़ेंगे? क्योंकि जब आप मेरे स्वदेशी भाई मुझसे ऐसे चिढ़ गए हैं कि मैं आपको भारी पड़ रहा हूँ तो विदेश में तो मेरे लिये चण भर भी टिकना कठिन होगा। यह तो होने का नहीं। दुर्दशा की पराकाष्ठा हो जायगी। इस नगर से उस नगर, वहाँ से अन्यत्र, यों ही सब लोगों से

निर्वासित हो होकर मुझे मारे मारे फिरना पड़ेगा। जान बचाने का खूब मजा आता रहेगा। क्योंकि मुझे पूरा विश्वास है कि जहाँ मैं जाऊँगा, नई उम्र के लोग मेरी बात अवश्य ही कान लगाकर सुनेंगे, जैसा कि यहाँ सुनते हैं। और यदि मैं उन्हें 'दूर दूर' करूँगा तो वे अपने बड़ों को समझाकर मुझे निकाल बाहर करेंगे। यदि मैंने उनसे भद्रता का बर्ताव किया और उन्हें 'दूर दूर' न किया तो उनके आगम का विचारकर उनके बड़े मुरब्बी मुझे गर्दनिया दे देंगे। यही दुर्दशा होती रहेगी।

अच्छा, आपमें से शायद कोई यह कहे कि "अच्छा भाई सुकरात, एक बात हो सकती है। यदि तुम एथेंस नगरी से बाहर चले जाओ और चुपचाप रहो, न किसी को छेड़ो और न किसी से बोलो-चालो, तब तो कुछ दुर्दशा नहीं होगी।" भाई साहबो! यदि ब्रह्मांड भर में मेरे लिये सबसे कोई कठिन काम है तो वह यही है कि "मैं लोगों को क्योंकर समझा दूँ कि मैं कदापि ऐसा नहीं कर सकता"। यदि मैं कहूँ कि "मैं चुप नहीं रह सकता क्योंकि इससे परमात्मा की आज्ञा-भंग का मुझे पाप लगेगा" तो आप मेरी बात सच नहीं मानेंगे, पर यदि फिर मैं यह कहूँ कि जैसा मैं किया करता हूँ अर्थात् धर्म्म, अधर्म्म, न्याय, अन्याय इत्यादि दार्शनिक प्रश्नों पर लोगों से प्रश्नोत्तर करना, क्योंकि उससे बढ़कर

मनुष्य के लिये और कोई श्रेष्ठतर जीवन है ही नहीं, तब तो मेरी बात पर आप और भी विश्वास नहीं करेंगे। पर चाहे आप न मानें, सत्य तो यही है। तिस पर से खूबी यह है कि मैं यह भी समझता हूँ कि मैं किसी दंड के योग्य नहीं हूँ। यदि मैं पैसेवाला होता तो, चाहे जितनी आप कहते मैं, उतनी बड़ी रकम जुर्माने में दे देता क्योंकि इससे मेरी कुछ हानि न होती। सो तो है नहीं, ऐसी हालत में मैं अर्थदंड देने मे नितांत असमर्थ हूँ, पर हाँ, यदि आप मेरी औकात के भीतर अर्थदंड लेना चाहें तो दे भी सकता हूँ। शायद मैं एक मीना (आजकल के ६१ रु० के बराबर) दे सकता हूँ। अस्तु, इसी जुरमाने का प्रस्ताव करता हूँ। अच्छा, यहाँ उपस्थित मित्रगण, प्लेटो, क्रटो, क्रटोवाला और अपोलोदार मुझे तीस मीना का अर्थदंड प्रस्ताव करने के लिये कहते हैं. इसके लिये, वे जमानत देंगे। अस्तु, मैं तीस मीना अर्थदंड का प्रस्ताव करता हूँ। इतने रुपये के लिये इन लोगों की जमानत काफी होगी।

(प्राणदंड की आज्ञा सुनकर वह जरा नहीं घबराया और पुनः बड़ी शांति से उसने निम्नलिखित वक्तृता दी।)

भाई एथेंसवासियो! आपने बहुत जल्दी की। यह आपके लिये अच्छी बात नहीं हुई, क्योंकि सब लोग इसी कारण से आपको धिकारेंगे और कहेंगे कि "देखो एथेंस

कैसी वाहियात नगरी है और यहाँ के लोग कैसे अधर्म्मी हैं कि उन्होंने सुकरात ऐसे बुद्धिमान् आदमी को यों मार डाला"। चाहे मैं मूर्ख ही क्यों न होऊँ, पर आपको धिक्कारते समय ये मुझे 'बुद्धिमान्' कहेंगे अवश्य, इसमें संदेह नहीं। आपने यदि और जरा धीरज धरा होता तो थोड़े दिनों में प्रकृतिमाता आपकी इच्छा यों ही पूर्ण कर देती, क्योंकि आप देख ही रहे हैं कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ और अब अधिक दिन जीऊँगा नहीं। भाइयो, यह न समझना कि मैं आप सब लोगों के प्रति यह बात कह रहा हूँ। मेरा कहना उन्हीं से है जिन्होंने मेरे प्राणदंड मे सम्मति दी है और अब भी मेरा कथन उन्हीं के प्रति है। शायद आप लोग यह समझते होंगे कि मुझे समझाने की पूरी युक्ति न आई कि जिससे मैं आपको अपने छुटकारे के लिये समझा देता। यदि आप ऐसा समझते हों तब तो दंड से बचने के लिये, चाहे मैं जो चाहूँ सो करूँ या जो चाहूँ सो कह भी सकता हूँ। पर नहीं, मैंने ऐसा नहीं किया। मैं इसलिये मरा पड़ा हूँ कि मैंने उद्दंडता और निर्लज्जता का कोई काम नहीं किया है। कुछ पूरी युक्ति नहीं लड़ा सका ऐसा नहीं है। मैं आपके सामने उस प्रकार से गिड़गिड़ाया नहीं जैसा कि शायद आप लोगों को पसंद होता या उस प्रकार से रोया धोया नहीं और हाथ पैर नहीं जोड़े, जो कि मैं कह चुका हूँ, मेरे योग्य

बात नहीं है, और जैसे बर्ताव पाने की आप लोगों को आदत पड़ी हुई है, क्योंकि और लोग ऐसा करते आए हैं। इसलिये जब मैं अपने बचाव की बातें कर रहा था तब मैंने उचित समझा कि चाहे कैसे ही खतरे का मुकाम क्यों न हो, नामर्दी का काम करना कदापि उचित नहीं है और अब भी मेरा वही विचार है। मैंने तो उचित यही समझा कि जैसा मुनासिब है उसी प्रकार से अपना बचाव करना, जैसा आप समझते हैं वैसा अनुचित बर्ताव कदापि नहीं करना, चाहे प्राण रहें या जायँ। अदालत के सामने या युद्ध में शत्रु के सामने बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन्हें मृत्यु से बचने के लिये मनुष्य को कदापि करना मुनासिब नहीं। युद्ध में यदि हम अस्त्र रखकर शत्रु के पैर पर गिर पड़ें तो सहज ही में प्राण बच सकते हैं। यही क्यों, यदि आदमी पूरी बेशर्म्मी पर कमर बाँध ले तो और भी कई आफत-विपद ऐसी हैं जिनसे वह सहज ही मे अपना बचाव कर सकता है। पर भाई साहबो, वह मौत से तो बच जायगा पर कहिए क्या अधर्म्म से भी बच सकेगा? क्योंकि मौत की अपेक्षा अधर्म्म से बचना और भी कठिन है, क्योंकि अधर्म्म की चाल मौत से कहीं अधिक तेज है। अस्तु, मैं तो बूढ़ा हो ही गया हूँ और सुस्त भी हो गया हूँ। इसलिये धीमी चालवाली मृत्यु ने मुझे आन पकड़ा

है, और मेरे अभियोक्तागण अभी युवा और चतुर भी हैं इसलिये उन्हें तेज चालवाले अधर्म्म ने आ ग्रसा है।

अस्तु, मैं तो आप लोगों से दंड पाकर मौत के दरवाजे जाता हूँ और वे लोग सत्य से दंड पाकर पाप और दुष्टता के दरवाजे की ओर आगे बढ़े हैं। जैसा मुझे वैसा ही उन्हें भी यथायोग्य पुरस्कार स्वीकार है। शायद इस मौक़े पर इन बातों का ऐसा ही होना उचित होगा, सो ठीक ही है, तराजू का पलड़ा बराबर है।

हे एथेंसवासियो! अब मैं आपको कुछ होनी (भविष्यद्वाणी) सुनाऊँगा; क्योंकि आपने मुझे सजा दी है, मैं मरने चला हूँ और इसी मौक़े पर मनुष्यों को दैववाणी कथन की शक्ति सबसे अधिक हुआ करती है। सुनिए, मैं आपको—उन लोगों को जिन्होंने मुझे मृत्युदंड दिया है—यह भविष्यद्वाणी कहता हूँ, कि मुझे आपने जो सजा दी है, मेरे मरते ही उससे सख्त सजा आपको भोगनी पड़ेगी। आपने यह सोचकर यह काम किया है कि शायद आपके जीवन का हिसाब लेनेवाला फिर कोई नहीं रहेगा। पर नहीं, आपका यह सोचना सरासर गलत है। एक दो नहीं, बहुत से ऐसे आदमी उठ खड़े होंगे जिन्हें आप जानते नहीं और न मैंने ही अब तक आपको बतलाया है। ये लोग आपको छेड़ेंगे और आपको अपनी जिंदगी का लेखा उन्हें बतलाना

पड़ेगा। ये लोग मुझसे भी कठोर शिक्षक होंगे और आप मुझसे भी अधिक इन पर क्रोधित होंगे, क्योंकि ये लोग युवक होंगे। यह खूब जानिए कि आप इन्हें मारकर इनका मुँह बंद नहीं कर सकेंगे। यदि आप यह समझते हों कि इन्हें मारकर आप अपनी निंदित करतूतों की निंदा करने से रोक सकेंगे तो आपकी सरासर गलती है। इस तरह से जान बचाना सहज नहीं है और यह राह नेक भी नहीं है। निंदकों की जबान बंद करने की अपेक्षा अपने दोषों का सुधार करना अधिक उत्तम है। अस्तु, जिन लोगों ने मुझे दंड दिया है उनसे यही मेरी अंतिम भविष्यद्वाणी है। अच्छा भाइयो, अब आप लोगों से, जिन्होंने मुझे निर्दोष माना है, इस बारे मे मैं बातचीत करूँगा। मृत्यु के स्थान को जाने के पहले जब तक ये सब लोग तैयारी में लगे हैं, आइए हम आपसे दो दो बातें कर ले। इसलिये मेरी विनती है कि जब तक मैं यहाँ हूँ, आप भी यही रहें, इसलिये कि जब तक संभव हो हम लोग आपस मे बातचीत करने पावें। प्यारे दोस्तो! मैं आपको बतलाना चाहता हूँ कि मुझ पर क्या बीती है। भाई, न्यायाधीशो—आप ही असली न्यायाधीश हैं—मुझ पर एक अनूठी होनी हो बीती है। बात यह है कि शुरू से आज तक जब कोई काम मैं करने जाता तो मुझे अंदर से कोई ताकत अवश्य

रोक देती थी, यदि वह काम अनुचित होता। यह दैवी इशारा आज तक बराबर मेरे संग रहा है, कभी इसने मुझे बिसारा नही। मामूली से मामूली बातों मे भी यह हमेशा मुझे चितावनी देता रहा है। अब आप देख ही रहे हैं कि मुझ पर क्या बीत रही है। वही होने को है जिसे मनुष्य सबसे अधिक विपत्ति समझते हैं, पर उस दैवी चितावनी ने अब की दफ: कहीं भी मेरा साथ नहीं छोड़ा। न तो घर से यहाँ आते समय, या कभी व्याख्यान के बीच, या किसी काम में, जो मैंने यहाँ आकर किया। इस दैवी चिह्न ने मुझे कहीं भी नहीं रोका, जब कि और और मौको पर ऐसा हुआ है कि इसने मुझे बोलते बोलते एकाएक रोक दिया है। पर यहाँ इस मामले में इसने कभी भी बोलते या कुछ करते तनिक भी मेरा साथ छोड़ा नही। इसका कारण मैं क्या समझता हूँ, सो आप सुनिए। बस, यही कि जो बात मुझ पर होनेवाली है वह अवश्य अच्छी बात है, और जो लोग मृत्यु को विपत्ति समझते हैं वे अवश्य गलती पर हैं, मुझे इसका स्पष्ट प्रमाण मिल गया क्योंकि यदि मेरा कुछ बुरा होने-वाला होता तो अवश्य मेरा सदा का दैवी चिह्न मुझे चितावनी देता।

इसके अतिरिक्त यदि दूसरे प्रकार से भी सोचा जाय, तो हमें पता लग जायगा कि मृत्यु अवश्य अच्छी चीज

है, क्योंकि मृत्यु असल में दो बात हो सकती है। या तो मनुष्य का अस्तित्व बिलकुल रहता ही नहीं, एकदम शून्य हो जाता है, या साधारण विश्वास के अनुसार वह एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है। यदि मृत्यु ऐसी वस्तु है कि सब शून्य हो जाय, यदि वह एक ऐसी महा निद्रा है कि जिसमें सोया फिर कभी नहीं जागता तो वास्तव मे इससे बढ़कर उत्तम लाभ की बात कोई हो ही नहीं सकती। आप ही सोच देखिए कि जिस रात को हमे ऐसी घोर निद्रा आती है कि किसी बात का भान नहीं रहता और कोई स्वप्न देखने की बात भी याद नहीं रहती तो उस रात्रि से और रात्रियों का यदि आप मुकाबला करेंगे तो आप देखेंगे कि उसके ऐसे आनंद की रात्रि दूसरी नहीं बीती है। आप तो क्या, स्वयं बड़े बड़े शाहनशाह भी उस रात्रि के सुख की बराबरी दूसरी रात्रियों से नहीं बतला सकेंगे। यदि मृत्यु की निद्रा ऐसी महानिद्रा है तो मेरे हिसाब से तो यह परम लाभ है, क्योंकि अंत को अनंत काल भी तो रात्रि ही के तुल्य है। और यदि मृत्यु केवल परलोक की यात्रा का आरंभ है और जितने लोग मर गए हैं, सब मौजूद हैं, तो इससे बढ़कर उत्तम और क्या होगा? इससे बढ़कर और उत्तम बात क्या होगी कि मरकर उस लोक में जाना जहाँ इन अन्यायी मनमाने न्यायाधीशों से छुटकारा मिलेगा

और सच्चे न्यायाधीशों के बराबर आसन मिलेगा जिन्होंने संसार में रहकर न्याय और सत्य का प्रचार किया था और जो अब देवलोक में आनंद कर रहे हैं ? क्या ही आनंद की बात होगी कि परलोक में यहाँ से गए हुए बड़े बड़े कवि, शूर और ज्ञानी विज्ञानी ऋषि मुनियों के दर्शन होंगे और उनसे वार्तालाप होगा ! यदि ऐसा है तो मैं, एक दफः क्यों, बार बार मरने को तैयार हूँ। मुझे तो और भी आनंद आवेगा जब वहाँ बड़े बड़े न्यायशास्त्र तथा तर्क विद्या के पंडित और सच्चे तर्क करनेवालों से मेरी भेंट होगी जो लोग बेचारे यहाँ इसी कारण से मारे गए थे कि मेरी तरह से उनको अन्याय रूप से दंड दिया गया था। उन लोगों से मिलकर अपनी बीती सुनाऊँगा और उनकी बीती सुनूँगा और यों बैठा बैठा दोनों का मुकाबला करूँगा। बड़ा मजा आवेगा। यहाँ जैसे तर्क से लोगों की जाँच किया करता था, वहाँ भी किया करूँगा और पता लगाया करूँगा कि वहाँ कौन ऐसा है जो अपने को बुद्धिमान् समझता है पर बुद्धिमान् है नहीं। चाहे कुछ ही हो, ट्राय युद्ध के नायक, या उदेशी अथवा शीशीफा या बहुतेरे ऐसे नर नारियों की तर्क द्वारा जाँच करने के लिये कौन ऐसा प्राणी होगा जो सर्वस्व अर्पण करने को न तैयार हो ? यह तो निश्चय है कि वहाँ ऐसा करने-वालों को कोई प्राणदंड नहीं देता।

क्योंकि, जैसा माना जाता है यह यदि सच है तो वे लोग हमसे अधिक आनंद में अवश्य रहते हैं क्योंकि उन्हें मौत का खटका नहीं है, वे अमर हैं।

सो भाई न्यायाधीशो! तुम लोगो को भी उचित है कि जब मौत आवे तब वीरता के साथ उसके सामने जाना, डरना नहीं; और इस बात को सच जानना कि धर्म्मात्मा मनुष्य का परिणाम कभी भी बुरा नहीं हो सकता; इस लोक या परलोक किसी लोक में उसे कष्ट नहीं होगा। उसके भाग्य देवता कभी विमुख नहीं होते; और आज मुझे जो भुगतना पड़ रहा है वह निरा संयोग नहीं है। मुझे भास गया कि इस समय मेरे मरने ही में मंगल है, और इसी कारण से मेरे सदा के मिलनेवाले इशारे ने मुझे कहीं भी रोका-टोका नहीं। अस्तु, मैं अपने फर्य्यादियों से, या जिन्होंने मुझे मृत्युदंड दिया है उन लोगो से, रंज होने का कोई कारण नहीं देखता। पर उन लोगों ने ऐसा समझकर यह नहीं किया है। उन्होंने तो जान बूझकर मुझे कष्ट पहुँचाने की नीयत से मृत्युदंड दिया है। बस, यदि उनका कुछ दोष है तो इतना ही है। तौ भी उनसे मेरी एक विनती यह है सो सुन लीजिए। मित्रो! जब मेरे लड़के बड़े हों तब उन्हे भी दंड देना, और उन्हें उसी तरह से तंग करना जैसा कि मैं आपको तंग करता रहा हूँ। यदि धर्म्म के आगे वे लोग धन दौलत

या और किसी बात की उलझन मे गिरने लगें तो उन्हें अवश्य इस प्रकार से तंग करना। यदि वे किसी लायक न होकर अपने को लायक समझने लगें, उचित बातों पर ध्यान न देवे और निरे निकम्मे होकर अपने को महजन समझने का गुमान करने लगें तो जरूर उन्हे खरी चोखी सुनाना और डॉट डपेट करना, जैसा कि मैं आप लोगो के साथ किया करता था। यदि आपने ऐसा किया तो मैं समझूँगा कि मेरी और मेरे संतानों की आपने मुनासिब कद्र की है।

अस्तु, अब समय आ पहुँचा और हमारी तुम्हारी जुदाई होगी। मैं तो मौत का मजा चखूँगा, आप जीने का मजा लीजिए। भगवान् ही जाने कि मौत अच्छी है या जीवन अच्छा है। इसका ज्ञाता परमात्मा ही है।

जब सुकरात को प्राणदंड की आज्ञा हो चुकी और अदालत से वह बंदीगृह मे भेज दिया गया तब यह सलाह होने लगी कि उसे किस दिन प्राणदंड दिया जाय। दंड तो दूसरे ही दिन हो जाता पर एक कारण से रुक गया। बात यह थी कि यूनानी लोग प्रति वर्ष अपनी एक देवी के प्रसन्नतार्थ एक जहाज में किसी जगह बहुत सी भेंट पूजा भेजा करते थे और जब तक उक्त स्थान से जहाज लौटकर नहीं आता था, वे सब दिन धर्मोत्सव के माने जाते थे और उन दिनों के बीच किसी अपराधी को प्राणदंड की आज्ञा दे देने पर भी जब तक

उत्सव समाप्त नहीं हो जाता था, अपराधी की हत्या नहीं की जाती थी। संयोग से इन्हीं दिनों में यह त्योहार आ पड़ा और सुकरात और दो चार दिन के लिये प्राण धारण कर पाया। इसी बीच मे उसके मित्रों ने बंदीगृह के रक्षकों को रिश्वत इत्यादि देकर उसे भगा देना चाहा और एतदर्थ सुकरात को बहुत कुछ समझाया बुझाया। पर इसके ऐसा धर्मवीर पुरुष ऐसी कायरता का काम क्यों करने लगा था। जैसे सारे जीवन में वैसे ही इस मौके पर भी बड़ी शांति और धीरता से उसने अपने मित्र क्रटो का अच्छी तरह से समाधान कर दिया कि 'भागना उसे कदापि उचित नहीं है। उसके लिये मृत्यु ही परम मंगल है।' बंदीगृह में सुकरात की अपने मित्र के साथ इस विषय पर जो बातचीत हुई है वह भी बड़े मार्के की है और हमें इस बात का पता देती है कि—"आत्मा को अमर समझनेवालों का हीया कैसा बलवान् होता है। उनका विश्वास कैसा अचल और अटल होता है और परमात्मा के वे कैसे सच्चे भक्त होते हैं"। सुकरात के इस अलौकिक कथनोपकथन का वृत्तांत अगले अध्याय में दिया गया है, जहाँ उसका मित्र क्रटो उसे भाग जाने की सलाह देने के लिये सबेरे ही सबेरे जा पहुँचा था।

पाँचवाँ अध्याय

सुकरात का बंदीगृह

सुक०—ऐं! इतने तड़के तुम यहाँ कहाँ? अभी तो पौ भी नहीं फटी।

क्रुटो—हाँ, कुछ जल्दी तो है।

सुक०—कै बजा होगा?

क्रुटो—बस, पौ फटने ही को है।

सुक०—भला, यह तो बतलाओ, तुम्हें काराध्यक्ष (जेलर) ने आने क्योंकर दिया?

क्रुटो—यहाँ पर कई बार आने जाने के कारण उससे मेरी मुलाकात हो गई है। इसके सिवाय मैंने उसकी कुछ 'सेवा' भी की है।

सुक०—तुम क्या बड़ी देर से यहाँ खड़े हो?

क्रुटो—हाँ, कुछ देर तो हुई ही होगी।

सुक०—तो तुमने मुझे जगाया क्यों नहीं?

क्रुटो—हाय मित्र, सुकरात! मैं अपने दिल की बात क्या कहूँ? मारे दुःख के मेरी आँखों में नींद कहाँ! और मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि तुम कैसे मीठी नींद सो रहे हो। इसलिये मैंने जान बूझकर तुम्हें नहीं जगाया जिससे तुम्हारे सुख में विघ्न न हो। आज के

पहले तो सदा से मैं जानता ही था कि तुम बड़े शांत प्राणी हो। पर आज इतनी भारी आफत को सिर पर आया जानकर भी तुम कैसी सुख की नींद सो रहे थे, यह देखकर मेरे विचार और भी दृढ़ हो रहे हैं।

सुक०—वाह भाई क्रटो! यह भी तुमने खूब कहा। अब इस बुढ़ौती में क्या सदा जीते ही रहेंगे? मरना तो हई है, फिर उसके लिये रोने-धोने से इस बूढ़े को लोग कहेंगे क्या?

क्रटो—अजी, रहने भी दो। मैंने तुम्हारे ऐसे कितने ही बूढ़े देखे हैं, जो प्राणदंड की आज्ञा पा आपे से बाहर हो जाया करते हैं और चाहे कैसे ही वृद्ध क्यों न हों, मृत्यु से सौ सौ कोस भागना चाहते हैं।

सुक०—शायद ऐसा ही होगा, पर यह तो बतलाओ, यहाँ इतने सबेरे तुम्हारे आने का कारण क्या है?

क्रटो—हाय, प्राणप्रिय मित्र! क्या कहूँ, कहते कलेजा फटता है!! तुम्हें क्या? तुम तो सुख दुःख से अतीत हो, पर मेरा और तुम्हारे अन्य मित्रों का जी नहीं मानता; खासकर मारे दुःख के मैं म्रियमाण हो रहा हूँ। मैं तुम्हारे लिये केवल दुखदायी संवाद लेकर आया हूँ।

सुक०—आखिर वह संवाद है कौन सा? क्या देलोस वाला जहाज आ गया, जिसके पहुँचने पर मुझे प्राणदंड दिया जायगा?

क्रटो—नहीं, पहुँचा तो नहीं है; पर शायद आज पहुँच जायगा। यह संवाद मुझे सूनियम से आए हुए कुछ लोगों की

जबानी मालूम हुआ है जिन्होंने उक्त जहाज को वहाँ देखा था। अब इस जहाज को यहाँ पहुँचा ही समझो और फिर कल तुम्हारी जिंदगी—

सुक०—अजी क्रटो, तुम भी बस लगे बालकों की तरह रोने! इससे बढ़कर मेरे लिये अच्छा दिन और कौन सा होगा ? 'यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि'। भगवान् की जो इच्छा। पर मेरी समझ में तो शायद जहाज आज न आवे।

क्रटो—क्यों, ऐसा अनुमान किसलिये है ?

सुक०—ठहरो, बतलाता हूँ। हाँ, तुमने कहा था न कि जहाज आने के दूसरे दिन मैं मारा जाऊँगा।

क्रटो—हाँ, अधिकारी लोग तो ऐसा ही कहते हैं।

सुक०—ठीक है, पर मेरी राय मे जहाज आज तो नहीं आता दीखता। कल आवे तो आवे। रात को मैंने एक सपना देखा है। इसी कारण से ऐसा अनुमान है; अभी सोया सोया मैं वही सपना देख रहा था। तुमने अच्छा किया जो मुझे जगाया नहीं।

क्रटो—क्या सपना देखा, भाई सुकरात ?

सुक०—सपना यह देखा—मानों "एक श्वेत-वस्त्रधारिणी देवी मेरे पास आकर खड़ी हो गई और मुझे जगाकर कहने लगी—'हे सुकरात! आज से तीसरे दिन तुम स्वर्ग पहुँचोगे'।"

क्रटो—स्वप्न अद्भुत ही है।

सुक०—चाहे जो हो, बात तो साफ है। मेरे लिये कोई उलझन नहीं है।

क्रुटो—अर्थ तो स्पष्ट है ही, पर मेरे प्यारे मित्र, एक बार मैं तुमसे फिर बिनती करता हूँ कि मेरी बात मान जाओ और अपनी जान बचा लो। चाहे जो हो, मेरे लिये तो तुम्हारा मरना क्या है मानों गजब का एक बड़ा पहाड़ है, क्योंकि तुम्हारे ऐसा परम प्रिय सज्जन मित्र फिर मुझे कहाँ मिलेगा? त्रिलोक में भी खोजने से तुम्हारे ऐसा बंधु मुझे मिलने का नहीं। इस पर से यदि तुम न बच सके तो लोग यह भी कहेंगे (क्योंकि सब लोग तो हमारे तुम्हारे स्वभाव से परिचित हैं ही नहीं) कि देखो क्रुटो रुपए की लालच कर गया नहीं तो सुकरात को अवश्य बचा लेता। अपने मित्र के आगे रुपए को सर्वस्व समझनेवाले से बढ़कर पापी और कौन है? कोई भी विश्वास नहीं करेगा कि हम लोगों ने तुम्हें बचाने के लिये कोई बात उठा नहीं रखी। तुमने खुद ही भागकर बचना अस्वीकार किया।

सुक०—अजी महाशय क्रुटो जी, तुम्हें आज फिर क्या हो गया? जमाना चाहे जो कहे उसकी परवाह क्यों करना? परवाह तो अच्छे श्रेष्ठ बुद्धिमानों की राय की करनी चाहिए। वे लोग कदापि अन्यथा नहीं कहेगे, वरंच यही कहेंगे कि "हमने बहुत उचित किया"।

कूटो—अजी भाई साहब, आप क्या कहते हैं। जमाने की परवाह भी करनी पड़ती ही है। देखिए, जमाने ही ने आपकी यह दशा कर डाली और आपको इस नौबत को पहुँचा दिया। इन लोगों के कान यदि अन्यथा भर दिए जाते हैं, तो ऐसी कोई भारी से भारी आपत्ति नहीं जो ये उक्त अभियुक्त पर न ला सकें। इसलिये जमाने के लोगों की राय को देखना ही पड़ता है।

सुक०—बड़ा अच्छा होता यदि जनसाधारण किसी को बड़ी भारी हानि पहुँचाने की सामर्थ्य रखते होते। इससे एक बड़ा लाभ यह होता कि वे लोग फिर सबसे अधिक उपकार की शक्ति भी रखनेवाले होते। पर बात तो असल में यह है कि उन्हें किसी बात की भी सामर्थ्य नहो है। किसी मनुष्य को मूर्ख या बुद्धिमान् बनाना उनकी शक्ति के बाहर है। वे लोग तो अँधेरे में ढेला मारते हैं।

कूटो—अच्छा जाने भी दो। शायद ऐसा ही होगा। पर मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ, वह साफ बतला दो। कहीं तुम्हें यह डर तो नहीं है कि "यदि तुम भाग गए तो पता लगानेवाले हम लोगों पर तुम्हे भगाने का इलजाम लगावेंगे, और हम लोग बड़ी आफत मे फँस जायँगे तथा बहुत से द्रव्य की बर्बादी के अतिरिक्त शायद हम लोगों की जायदाद सर्कार से जब्त हो जाय और ऊपर से और भी कोई दंड मिले; इत्यादि"। यदि इस प्रकार की कोई

चिता और भय तुमको हम लोगों के प्रति है, तो उसको फौरन् दूर कर दो, क्योंकि हम लोग तो ठाने बैठे हैं कि तुम्हें बचाने के लिये केवल यह क्यों, यदि इससे बढ़कर और भी कोई जोखिम का काम होगा तो कर डालेंगे। इसलिये पुनः मेरा निवेदन है कि "तुम मेरी बात मान जाओ और भागकर अपनी जान बचाओ।"

सुक०—हाँ, क्रटो, इन बातों की चिता तो मुझे है ही, इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी बातों की चिंता है।

क्रटो—इन बातो की कोई चिंता करो ही मत। मैंने सब ठीक कर रखा है और ऐसे आदमी ठीक कर रखे हैं जो थोड़ा सा द्रव्य पाने पर तुम्हे सहज ही मे कैदखाने से निकल जाने देंगे। इन जासूसों का मुझे कोई भय नहीं है, क्योंकि थोड़ा सा सुवर्ण ही इनका मुँह बंद कर देने के लिये पर्याप्त होगा। मेरी सारी जमा पूँजी तुम्हारे लिये हाजिर है। इसी से सब काम चल जायगा। यदि मेरे द्रव्य से काम निकालने मे तुम्हे कुछ आना-कानी हो तो एथेंस मे और भी कई ऐसे अजनबी पुरुष हैं जिनकी थैली तुम्हारे चरणो मे अर्पण है, जिनमे से थीबीस-निवासी सीमीयस तो जरूरत से ज्यादः द्रव्य लिए बाहर ही खड़ा है। इसके अतिरिक्त शिबि तथा अन्य कई लोग भी तुम्हारे लिये थैली का मुँह खोले बैठे हैं। इसलिये मैं फिर कहता हूँ कि इन बातो का कुछ भी विचार न

करके अपनी जान बचाने से मुँह न मोड़ो। इस बात के विचार करने की कोई जरूरत नहीं कि विदेश जाने में तुम्हारी क्या दशा होगी। जो होगा देखा जायगा। न्यायालय में तुमने विदेश जाने मे जिस जिस अड़चन के सामना होने का जिक्र किया था, उसका ख्याल करके अब भागने से बिलकुल मत रुको, क्योकि मुझे खूब मालूम है कि बहुतेरे ऐसे लोग मौजूद हैं जो तुम्हें हाथों हाथ लेगे। यदि तुम थिसली मे जाना पसंद करो, तो वहाँ मेरे ऐसे कई मित्र हैं जो तुम्हारा हर दम ख्याल रखेंगे और वहाँ के मनुष्यों से तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नही होने देगे।

अब यदि तुम भागकर अपनी जान नहीं बचाते, जब कि ऐसा सुयोग उपस्थित है, तो मेरी समझ मे तो तुम अधर्म करते हो; और केवल अपने शत्रुओं के हाथ के खिलौना बना चाहते हो, ताकि वे जिस तरह चाहे तुम्हें मार डाले। यह सब तो है ही, इसके अतिरिक्त अपने बाल-बच्चों को राह मे बैठा जाने का भी पाप तुम्हारे सिर लगता है। तुम्हारा कर्तव्य तो यह है कि अपने भरसक उन्हें शिक्षित करके 'मनुष्य' बना डालते। सो नही। तुम इन्हें बीच धार मे छोड़कर चले जाते हो। इनकी क्या दशा होगी ? जैसे अनाथ बच्चो की होती है। यदि तुम्हे इन्हे शिक्षित और मनुष्य बनाने का कष्ट सहन करने की सामर्थ्य न थी तो फिर इन्हें पैदा ही किया किसलिये ? अब तो मुझे ऐसा

ही मालूम पड़ता है कि तुम 'सहज पंथा' पसंद कर रहे हो। यह शूरों का काम नहीं है। जन्म भर शूरो की तरह धर्म्म पर डटे रहने का पाठ पढ़ाते हुए इस समय तुम्हें स्व 'सहज पथ' के पथिक होना और धर्म्म छोड़ देना क्या शोभा देता है ? मैं तो तुम्हारी तरफ या अपनी तरफ जब देखता हूँ तब मारे शरम के मरा जाता हूँ। लोग यही कहेंगे कि जो कुछ तुम पर बीती है—तुम्हारा अदालत मे अपना जुर्म सुनने के लिये उपस्थित होना (जब कि वहाँ जाने की तुम्हे कोई जरूरत न थी), जिस तरह से मुक़द्दमा चलाया गया और जो अंत को सबसे बढ़कर यह जो अनहोनी घटना (तुम्हारे प्राणदंड की आज्ञा) हुई है इन सबका कारण तुम्हारी कायरता है—डरपोकपन है। इससे यही प्रगट होगा कि हम लोग कायर वनकर आफत से डर गए, क्योंकि जब मौका मिलने पर भी हम लोग तुम्हें न बचावें और तुम भी आप अपनी रक्षा न करो तो लोग क्या कहेगे ? यही न कहेगे कि हम लोग निरे बोदे और डरपोक हैं। किसी मर्ज की दवा नहीं हैं। भाई सुकरात, खूब सोच समझ लो, कहीं ऐसा न हो कि दुःख के सिवाय इससे नामधराई भी हो जाय। खूब सोच लो, जब तक समय है, सोच-विचार लो। जो कुछ हो आज रात को, अभी निश्चय करना पड़ेगा। देर करने से सब मामला बिगड़ जायगा। सुकरात भैया,

मैं तुमसे फिर बार बार कहता हूँ; हाथ जोड़कर, नाक रगड़कर कहता हूँ, मेरी बात सुनी अनसुनी मत करो।

सुक०—मेरे प्यारे भाई क्रटो, धीरज धरो। उतावले मत हो, क्योंकि तुम जो मेरे बचाव की इतनी चिंता कर रहे हो, वह यदि धर्म्म की बात है तो निश्चय बहुत जरूरी बात है। पर यदि इसके विपरीत यह बात अधर्म्म की हुई तब तो और भी अधिक भयंकर होगी। इसलिये आओ हम लोग दोनों मिलकर इस बात को खूब विचार ले कि तुम जैसा कहते हो वैसा ही कर डाले या नहीं; क्योंकि मैं वही पुराना सुकरात हूँ जो पहले था। सिवाय न्याय विवेक के और कोई युक्ति भी मैं मानूँगा नहीं, क्योंकि आज तक यही युक्ति सबसे सच्ची साबित हुई है। क्या हुआ जो आज मैं इस आफत में फँस गया। मैं अपनी पुरानी तर्कप्रणाली कभी छोड़ने का नहीं। इसी न्याय की तर्कप्रणाली को मैं सचाई तक पहुँचने का सच्चा मार्ग जानता हूँ और अब तक इसकी उतनी ही कदर करता हूँ जितनी पहले करता था और जब तक इससे बढ़कर और कोई चीज मुझे नहीं मिलती, मैं कदापि तुम्हारी बात मानने का नहीं; चाहे लोग मुझे और भी भयानक भयानक विपत्तियों से क्यों न डरावे, जैसे बच्चों को भूतों से डराया जाता है; चाहे मुझे और भी कोई नया दंड, कैदखाना, जुर्माना या प्राणदंड क्यों न दे दें।

अच्छा तो अब किस तरीके से इस बात की जाँच करना मुनासिब होगा ? क्या तुमने जो बात पहले कही है अर्थात् जनसाधारण में से कुछ लोगों की राय के मुताबिक इस बात की जाँच करूँ और कुल लोगों की राय की तरफ बिलकुल ध्यान न दूँ ? देखो जब मुझे प्राणदंड की आज्ञा नहीं मिली थी, उसके पहले क्या हम लोग इसी बुनियाद पर विचार किया करते थे ? क्योंकि अब यदि इस बुनियाद पर (जनसाधारण लोगों की राय को सर्वस्व समझकर) विचार करूँ तो यही साबित होगा कि इसके पहले हम लोग निरी कोरी बकवाद किया करते थे; किसी सिद्धांत को निश्चय करने के लिये नहीं, केवल तर्क वितर्क के शौक से बहस किया करते थे तथा केवल वाहियात मगज खपाकर समय नष्ट करते थे। क्या ऐसी बात थी ! यदि ऐसी थी तो आओ भाई साहब अंत समय इस बात की फिर से नियमपूर्वक जाँच कर डालें। कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस समय की मेरी हालत ने पहले की जाँच की सचाई को झूठा साबित कर दिया ? और हमें सदा का रास्ता छोड़कर आज एक नया मार्ग पकड़ना पड़ेगा। जो लोग जरा गंभीरतापूर्वक विचारनेवाले थे वे उस समय भी कहते थे कि हम लोगों को उन लोगों की राय की कदर करनी चाहिए जो अपनी राय सोच समझकर बड़ी

उत्तमता से कायम करते हैं, राहचलतू लोगों की राय की कुछ-परवाह नहीं करनी चाहिए। अच्छा तो भाई क्रूटो जी, अब मुझे ठीक ठीक बतलाइए, क्योंकि तुम्हें तो कल मरना है ही नहीं कि तुम्हारे फैसले की बात में कुछ पक्षपात होगा। अच्छा तो अब खूब सोच समझ के बतलाओ तो सही कि हम लोगों को क्या संसार के लोगों की सभी राय माननी चाहिए, या उनकी कुछ राय माननी चाहिए, अथवा सभी लोगों की राय न माननी चाहिए, सिर्फ कुछ लोगों की राय माननी चाहिए? लोगों की राय ही कुछ माननी पड़ेगी? क्यों मैं ठीक कहता हूँ कि नहीं?

क्रूटो—बहुत ठीक कहते हो।

सुक०—और यह बात भी निश्चय है कि हमें अच्छी राय की ही कदर करनी चाहिए, निकम्मी राय की नहीं।

क्रूटो—निस्संदेह।

सुक०—अच्छी राय बुद्धिमानों की होती है और निकम्मी मूर्खों की होती है। क्यो ठीक है न?

क्रूटो—बहुत ठीक।

सुक०—अच्छा तो अब यह बतलाओ तो सही कि जब कोई शागिर्द पढ़ता या कोई कसरत सीखता है तब क्या वह अपने उस्ताद या गुरु की सम्मति पर ध्यान देता है या जिसकी तिसकी सबकी राय पर नाचता फिरता है?

क्रिटो—वह केवल अपने गुरु की राय पर ध्यान देता है।

सुक०—तो इससे सिद्ध यह हुआ कि उसे इसी एक आदमी—अपने गुरु की की हुई बदनामी से डरना चाहिए, और उसी की की हुई तारीफ का आसरा भी देखना चाहिए, अन्य लोगों का नहीं।

क्रिटो—बहुत ठीक।

सुक०—इस शागिर्द को अपने गुरु के बतलाए नियम पर ही आहार, विहार, कसरत इत्यादि सब करना चाहिए; क्योंकि वह उसके लिये क्या उपयुक्त है यह खूब समझता है, दूसरों की आज्ञा उसे नहीं माननी चाहिए। क्यों ठीक है कि नहीं?

क्रिटो—ठीक है।

सुक०—अच्छा तो अब यदि यह शागिर्द इस एक आदमी (अपने गुरु) की आज्ञा न माने और अन्य लोगों की राय पर चलने लगे तो हानि उठायगा या नहीं?

क्रिटो—निस्संदेह हानि उठायगा।

सुक०—अच्छा, किस प्रकार की हानि उठायगा? किस तरह से इस हानि की ठोकर लगेगी?

क्रिटो—अपने शरीर ही पर उसे इस हानि की ठोकर लगेगी अर्थात् शरीर बेकाम हो जायगा।

सुक०—तुमने ठीक कहा। अच्छा अब और विस्तार न करके यदि मैं थोड़े मे यह कहूँ कि सब बातों मे यही नियम

लगता है, तो क्या ठीक नहीं ? इसलिये पाप पुण्य, धर्म्म अधर्म्म, ऊँच नीच, भला बुरा, जिन बातों का इस समय हम विचार करने बैठे हैं, इन बातों मे भी हमे क्या सब लोगों की राय माननी चाहिए और उनसे डरना चाहिए या हमें एक आदमी की राय माननी चाहिए जो इन विषयों का पंडित है (यदि ऐसा पंडित मिल जाय) और उससे डरना और शरमाना चाहिए ? क्योंकि यदि हम इस एक आदमी की आज्ञा या राय नहीं मानेंगे तो हमारा वह अंग बेकाम हो जायगा जो धर्म्म से उन्नत होता और अधर्म्म से गिर जाता है। मेरा कहना ठीक है या नहीं ?

क्रिटो – तुम बहुत उचित कहते हो। तुम्हारा कहना ठीक है।

सुक० — अच्छा तो अब यदि नासमझ आदमियों की बात पर ध्यान देकर हम अपने उस अंग को बेकाम कर दें जो तंदुरुस्ती से अच्छा होता और बीमारी से रद्दी हो जाता है, तो क्या फिर हमारा जीवन किसी काम का रह जायगा ? कटे अंग से जीना, मरने ही के तुल्य है।

क्रिटो—बेशक।

सुक०—वैसे ही अपना धर्म्मरूपी अंग कटवाकर क्या जीना अच्छा है ? क्या शरीर से बढ़कर विवेक नहीं है ?

क्रिटो—बेशक बढ़कर है।

सुक०—तब जनसाधारण के बहुत से लोग हमारे बारे में क्या क्या कहेंगे, इसकी परवाह क्यों करें ? हमें तो केवल

उँसी एक आदमी के कहने की परवाह करनी चाहिए जो धर्म्म अधर्म्म को समझता है, और सर्वोपरि तो एक यह बात है कि 'सत्य विवेक' हमारे विषय में क्या कहता है, उसी की हमें परवाह करनी चाहिए। शुरू ही में तुमने गलती की जब इस सिद्धांत पर विचार करने की ठानी कि "आम लोगों की राय के मुताबिक धर्म्माधर्म्म का विवेक करना चाहिए।" पर हाँ इतना तो मैं भी कह सकता हूँ कि "आम लोग चाहें तो हमारी जान जरूर ले सकते हैं।"

क्रटो—सो भी क्या कहना होगा ? वह तो सामने ही है।

सुक०—बहुत ठीक कहा। पर भाई साहब, इन सब बातों का निचोड़ वही निकलेगा जो आज तक निकलता आया है। अच्छा, यह बतलाओ कि हम लोगों की पहली जो राय थी अर्थात् "संसार में जीना तो नेकी से जीना, नहीं तो जीना नहीं" क्या वह राय अब तक वैसी ही है या नहीं ?

क्रटो—वैसी ही है।

सुक०—और नेकी से जीना, प्रतिष्ठा से जीना, धर्म्मपूर्व्वक जीना, सबका अर्थ एक ही है या अलग अलग है ?

क्रटो—एक ही है।

सुक०—अच्छा तो अब इन्हीं सूत्रों से चलकर हमे जाँचना चाहिए कि एथेंसवासियों की आज्ञा बिना जेल से निकल भागना धर्म्म है या नहीं ? यदि हमारी जाँच से यह बात

साबित हो गई कि भाग जाना धर्म्म है, तो भाग चलूँगा। यदि विपरीत साबित हुआ तो यहीं रहूँगा। तुम जो स्त्री पुत्र, नेकनामी खुशनामी, घर गृहस्थी की बात कहते हो, मेरी समझ में यह बात हमारे उन्हीं दोस्तों की कल्पना है (अर्थात् आम लोगों की) जो अदनी सी बात पर किसी के प्राण लेने पर उतारू हो जाते हैं और यदि सामर्थ्य रखते होते तो पुनः जरा सी बात पर बिना सोचे-समझे उसे जिला भी देते। पर भाई साहब, 'न्याय्य विवेक' जो हमारा गुरु है—राह दिखानेवाला है—हमें यही उपदेश देता है, कि हमें सिवाय उस बात के, जिसका जिक्र मैं अभी कर रहा था और किसी बात पर ध्यान देना नहीं चाहिए। वह कौन सी बात है ? वही बात कि यदि भागने मे सहायता देनेवाले आदमी को हम रुपया दें और धन्यवाद दे और खुद भी भागने मे बहादुरी दिखावें, तो क्या यह काम उचित और धर्म्म का कहलावेगा ? या वास्तव में ऐसा करने से हमसे महान् पाप और अधर्म्म हो जायगा ? यदि यह साबित हुआ कि ऐसा करने से पाप और अधर्म्म होगा तब तो मौत क्या इससे भी बढ़कर यदि कोई आफत आती हो तो आवे, हम यहाँ से हटेंगे नहीं और अपने धर्म्म से एक इंच भी डिगेंगे नहीं।

क्रूटो—हाँ भाई सुकरात, तुम्हारा कहना है तो ठीक, पर आखिर किया क्या जाय ?

सुक०—किया क्या जाय, यही सोचने के लिये तो इतना विस्तार फैलाया है। अब यदि तुम मेरी बात काटकर अपनी बात साबित कर दो तो मैं मान जाऊँगा। यदि साबित न कर सके तो अब बार बार, भाई साहब, मुझे यह मत कहना कि एथेंसवासियों की आँख मे धूल झोंककर भाग चलो। मेरी तो बड़ी इच्छा है कि तुम्हारी राय के मुताबिक काम करूँ, क्योंकि मैं यह नहीं चाहता कि तुम मुझे भ्रांत समझ बैठो। खैर, तो अब यह बतलाओ कि शुरू में हमने जो सिद्धांत स्थापन किया है, उसे तुम मानते हो? यदि मानते हो तो उसी के अनुसार मेरे प्रश्नों के जवाब देने का यत्न करो।

क्रिटो—हाँ मानता हूँ, और उसी के मुताबिक जवाब देने की कोशिश भी करूँगा।

सुक०—अच्छा यह बतलाओ कि हमे कभी भी जान बूझकर अधर्म नहीं करना चाहिए—या घुमा फिराकर, इस तरह से नहीं तो उस तरह से अधर्म्म कर लेना चाहिए? या जैसा कि पहले भी कई बार तय हो चुका है, कभी किसी हालत मे भी अधर्म्म करना नेक या प्रतिष्ठा का काम नहीं है? क्या इन्हीं थोड़े से दिनों में हमारे पहले सिद्धांतों पर पानी फिर गया? हमारे बाल पक गए तो क्या हुआ, पहले हम लोग जब बड़े गंभीर बनकर तर्क वितर्क किया करते थे, तो क्या यह साबित नहीं हो जाया करता था

कि हमारी समझ बच्चों से कुछ अधिक बढ़कर नहीं है ? क्या यही बात असल मे सच है या नहीं, चाहे संसार के लोग मानें या न मानें । यदि धर्म्म करते हुए किसी कारण से प्राणदंड की सजा मिल जाय या उससे कोई हलकी ही सजा मिले तो क्या इसी कारण से अधर्म्म कर बैठना चाहिए ? क्या अधर्म्म करना हर हालत मे पाप नहीं है और इससे लज्जा नहीं उठानी पड़ती ?

क्रुटो—निस्संदेह उठानी पड़ती है ।

सुक०—तो फिर तात्पर्य्य यह निकला कि हमें कभी भी किसी हालत मे पाप नहीं करना चाहिए ।

क्रुटो—कभी नहीं

सुक०—अच्छा तो फिर क्या किसी आदमी की बुराई भी करनी चाहिए ?

क्रुटो—नहीं, मेरी समझ में तो नहीं क नी चाहिए

सुक०—अच्छा तो बुराई के बदले किसी से बु'ाई करना क्या उचित है, जैसा कि दुनिया करती है ?

क्रुटो—कदापि उचित नहीं है ।

सुक०—क्योंकि किसी की बुराई करनी और पाप करना एक ही बात है ।

क्रुटो—एक ही बात है ।

सुक०—तो तात्पर्य्य यह निकला कि हमे बुराई के बदले बुराई नही करनी चाहिए, अथवा किसी आदमी का नुकसान

नहीं पहुँचाना चाहिए, चाहे उसने हमारे साथ कैसी ही बुराई क्यों न की हो अथवा कैसा ही नुकसान हमें क्यों न पहुँचाया हो। अच्छा, इस बात में अपनी राय खूब समझ बूझकर दो। बे समझे हाँ, हाँ करने से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि दुनिया में बिरले ही आदमी इस राय को मानेंगे, और जो लोग इस राय के पक्षपाती हैं और जो इसके विरुद्ध हैं, वे दोनों अवश्य ही एक दूसरे की राय से घृणा करेंगे। इसी लिये कहता हूँ कि मेरी राय मे राय मिलाने के पहले, तुमने खूब सोच विचार लिया है कि नहीं? अच्छा तो अब हम क्या इसी सूत्र से आरंभ करें अर्थात् बुराई के बदले बुराई करके किसी से बदला नहीं लेना, और हमें जो नुकसान पहुँचावे उसे नुकसान नहीं पहुँचाना? अथवा तुम मेरा सिद्धांत को नहीं मानते और अपनी अलग राय रखते हो? मैं तो अब तक इसी राय को मानता आया हूँ और अब भी मानता हूँ, पर तुम यदि न मानते हो तो साफ-साफ कह दो। यदि मानते हो तो फिर मेरी दूसरे नंबर की युक्ति सुनो।

क्रुटो—मानता हूँ। तुम कहते चलो।

सुक०—अच्छा तो मेरी दूसरी युक्ति यह है, या यों कहो कि मेरा दूसरा प्रश्न यों है कि किसी आदमी को अपने यथार्थ निश्चित किए हुए सिद्धांत के अनुसार चलना चाहिए या उसके विरुद्ध चलना चाहिए?

क्रुटो—नहीं, विरुद्ध नहीं चलना चाहिए।

सुक०—अच्छा तो अब जरा सोचो। देखो, यदि मैं बिना रियासत की अनुमति के भाग जाऊँ तो क्या मैं उन लोगों को किसी प्रकार की हानि तो नहीं पहुँचा बैठूँगा जिन्हें हानि पहुँचाना मुझे कदापि उचित नही है ? इससे क्या अपने निश्चित किए हुए सिद्धांत के अनुसार काम करने-वाला ठहरूँगा या नहीं ?

क्रुटो—मैं क्या जवाब दूँ। तुम्हारी बात ठीक समझा ही नहीं।

सुक०—अच्छा तो अब दूसरी तरह से समझाता हूँ। मान लो कि देश का कानून और राज्यसंस्था (प्रजा-तंत्र राज्य की संस्था), ठीक उसी समय जब मैं भागने की तैयारी कर रहा हूँ, आकर मुझसे यह प्रश्न पूछे कि "कहो जी सुकरात, तुम्हारे मन में क्या है ? भागने की कोशिश करके तुमने जो हमको (जहाँ तक जो अंश हमारा तुममे है, उस अंश को) नाश करने (कानून को नष्ट करने) की ठानी है, और सारे शहर को बदनाम करने की सोची है, इससे तुम्हारा क्या तात्पर्य्य है ? तुम समझते हो कि क्या ऐसी रियासत टिक सकेगी, और नाश नहीं हो जायगी, जहाँ के कानून का फैसला कोई चीज नहीं समझा जाता, और जो चाहे सो आदमी इसकी कुछ परवाह न कर मनमानी करता है" ? भाई

क्रूटो, यदि कानून आकर मुझसे ऐसा प्रश्न करे तो मैं उसे क्या जवाब दूँगा? कानून के फैसले को सर्वोपरि समझने के पक्ष में कोई अच्छा वकील मुझसे बहुत कुछ कह सकता है। यदि कोई मुझसे इस प्रकार का प्रश्न पूछे तो क्या मैं यह जवाब दूँगा कि "देखो जी, कानून ने—रियासत ने—मुझे नुकसान पहुँचाया है, इसने मेरे मुकद्दमे का फैसला अन्यायपूर्व्वक किया है, इसलिये मैं भी इसे नुकसान पहुँचाऊँगा।" क्यों क्या ऐसा जवाब मैं दूँगा?

क्रूटो—हाँ, यह जवाब देने मे हर्ज ही क्या है?

सुक०—हर्ज है। सुनो। हमारे इस जवाब को सुनकर यदि कानून यह कहे "क्यों भाई, हमारे तुम्हारे बीच क्या यही तय हुआ था? क्या तुम यह नहीं मान चुके थे कि चाहे किसी प्रकार का फैसला मैं तुम्हारे लिये क्यों न करूँ, तुम उसे मानकर चलोगे"? यदि कानून का यह प्रत्युत्तर सुनकर हमे कुछ ताज्जुब हो तो वह फिर कह सकता है "हमारी बात सुनकर ताज्जुब क्या करते हो? अच्छा हम जो पूछते हैं, उसका जवाब तो दो, क्योंकि तुम बहुत लोगों से जवाब सवाल किया करते हो। अच्छा यह बतलाओ कि हमारे या इस नगर के विरुद्ध तुम्हें क्या शिकायत है जो तुमने हम दोनों को नाश करने की ठानी है? हम क्या तुम्हारे माता-पिता की जगह नहीं हैं? हमी में से तुम्हारे पिता ने तुम्हारी माता को ग्रहण कर

तुमको उत्पन्न किया है। क्या विवाह के कानून के बारे में तुम्हें कुछ शिकायत है ?" कानून के इस प्रश्न के उत्तर में मैं कहूँगा कि 'नहीं, कोई शिकायत नहीं है'। तब कानून फिर पूछेगा "अच्छा तो क्या हमारी किसी धारा में कोई दोष है जो बच्चों को लालन-पालन और शिक्षा देने से संबंध रखता है ? हमने क्या तुम्हारे पिता द्वारा तुम्हें जो कसरत और संगीत इत्यादि की शिक्षा दिलाई तो क्या बड़ा बुरा किया ?" मैं यही जवाब दूँगा कि "बुरा नहीं, अच्छा ही किया है"। तब कानून पुनः कहेगा कि "अच्छा जब तुम हमारे द्वारा संसार मे आए, पालपोसकर बड़े किए गए, शिक्षा पाई तो अब शुरू ही में इस बात से क्योंकर इंकार कर सकते हो कि तुम हमारे गुलाम (दास) नहीं हो ? तुम्हीं क्यों तुम्हारे पहले, तुम्हारे बाप, दादा सभी हमारे दास थे। जब यह बात ठहरी तब तुम क्या हमसे बराबरी का दावा कर सकते हो ? हम यदि तुम पर कुछ कर दें तो क्या तुम हमसे इसका बदला लेने खड़े होगे ? यदि तुम्हारे पिता होते अथवा तुम किसी के गुलाम होते तो क्या तुम अपने पिता या अपने मालिक की बराबरी का दावा कर सकते थे ? ये लोग तुम्हे मार देते या गाली गुफ़ा दे बैठते तो क्या इसके बदले तुम भी इन्हें मारते और गाली देते ? या और किसी प्रकार से तुमसे बुरा वर्ताव कर

बैठते तो क्या तुम भी इनसे बुराई करने पर कमर कस लेते और बुराई का बदला बुराई से देते? क्या तुम्हें ऐसा करने का अधिकार है? वैसे ही क्या अपने देश और कानून के विरुद्ध तुम्हें बदला लेने का अधिकार है? हम यदि तुम्हें नष्ट करने की चेष्टा करें (ऐसा करना उचित जानकर) तो क्या तुम भी हम लोगों (अपने देश और कानून) के नाश करने के लिये तत्पर हो जाओगे? और फिर यह दावा करोगे कि तुम उचित काम कर रहे हो, जब कि तुम रात दिन धर्म्म-पूर्व्वक काम करने की इतनी डींग हाँका करते हो! तुम क्या ऐसे अनोखे बुद्धिमान् हो गए हो कि तुम्हें यह नहीं सूझता कि तुम्हारा देश तुम्हारे शरीर की अपेक्षा कहीं बढ़कर श्रेष्ठ और प्रभावशाली तथा पवित्र और पूजनीय है? देवी देवता तथा सारे पंडित लोग इसे ऐसा ही समझते हैं। इसकी समानता तुम्हारे माता-पिता तो क्या तुम्हारे सात पुरखे भी नहीं कर सकते। इसलिये तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम इस देश और कानून के आगे सिर झुकाओ। जैसे जब तुम्हारे पिता नाराज होते हैं और तुम सिर झुकाकर उनके सामने जाते हो उससे भी अधिक नम्र होकर, सिर झुकाकर, इसके सामने आना चाहिए और इसकी आज्ञा को शिरोधार्य्य करना चाहिए। चाहे यह तुम्हें चाबुक खाने की सजा दे या कैदखाने में बंद करे या

लड़ने मरने के लिये रणभूमि में भेज दे, तुम्हें बिलकुल इंकार हो नहीं सकता। यह तो तुम्हारा निश्चित कर्त्तव्य है। तुम्हें ढीले पड़ना, पीछे हटना या अपनी जगह से भाग जाना कदापि उचित नहीं। युद्धक्षेत्र में, न्यायालय के सामने या और कहीं भी, तुम्हें अपने देश और कानून की आज्ञा मानना आवश्यक है। आज्ञा मानो, नहीं तो उन्हें मनवा दो कि "उनकी आज्ञा न्याय-विरुद्ध है।" दूसरा कोई चारा नहीं है। अपने माता-पिता के विरुद्ध हाथ उठाना या बल प्रयोग करना नितांत अनुचित और भगवान् की इच्छा के विरुद्ध है। जब माता पिता के प्रति ऐसा है तो क्या अपने देश और कानून के विरुद्ध, जो इनसे भी बड़े साबित हो चुके हैं, ऐसा अपकर्म करना चाहिए? देखो भाई क्रूटो, यदि कानून मनुष्य बनकर मुझसे यह बात पूछे तो मैं क्या जवाब दूँगा? मुझे क्या यह कहना नहीं पड़ेगा कि 'हे कानून महाशय! आपका कहना अक्षरश: सत्य है'?

क्रूटो—हाँ, यही कहना पड़ेगा।

सुक०—और भी वह मुझसे कह सकता है कि "देखो भागने की कोशिश करके तुम हमें नष्ट करने पर कमर कस रहे हो, जिसका प्रमाण यह है—हमने तुम्हे दुनिया का मुँह दिखाया, पाल-पोसकर बड़ा किया, पढ़ाया लिखाया और अन्य नगरवासियों की तरह हमारे पास जो कुछ न्यामतें

थीं, सभी तुम्हें दीं। सभी का यथायोग्य हिस्सा तुमने पाया है। इसके सिवाय यह भी हम सरे बाजार डंके की चोट कहते हैं, कि जिसका जी चाहे एथेंस छोड़कर गठरी मोटरी बाँधकर अन्यत्र चला जाय। इसमें किसी को मनाही नहीं है, क्योंकि बालिग होने पर हर एक आदमी देश की रीति नीति और कानून से परिचित हो ही जाता है। उस समय उसे यदि यहाँ के कानून न रुचें तो उसे कोई मना करनेवाला नहीं है। अपना माल मता लेकर चाहे जहाँ चला जाय। एथेंस देश के किसी उपनिवेश या किसी अन्य देश में चाहे जहाँ जाय, उसे कोई पूछनेवाला नहीं। क्योंकि यह सब जान-बूझकर जो लोग यहीं रह जाते हैं और इसी देश को सदा के लिये अपना घर बना लेते हैं और यहाँ की अदालत और कानून की कार्रवाइयों के अधीन रहने में कोई अड़चन नहीं समझते, तो इससे हम यह नतीजा जरूर निकालेंगे कि उन लोगों ने हमारे अधीन—हमारी सत्ता और आज्ञा के अधीन—रहना स्वीकार किया है और इनमें से जो कोई हमारी आज्ञा भंग करता है वह एक नहीं, तीनगुने पाप का भागी होता है। एक तो वह हमारी—अपने माता-पिता की—आज्ञा उल्लंघन करता है, दूसरे हमने उसे इतने दिनों तक पाल-पोसकर बडा किया, सो हमारी अवज्ञा करता है, और तीसरे हमारी आज्ञा मानना

स्वीकार करके प्रतिज्ञा-भंग करता है। हमने उसे कुछ जबरदस्ती अपनी आज्ञा नहीं मनवाई थी। उसे इस बात का भी अवसर दे दिया था कि या तो वह हमारी आज्ञा माने या हमें मनवा दे कि हम गलती पर हैं, पर उसने दो में से एक बात भी नहीं की।" देखो भाई क्रटो! यदि तुम्हारी सलाह मान लें तो हम लोगों को इन अपराधों का शिकार होना पड़ेगा। साधारण एथेंस-वासियों की अपेक्षा हम पर इन जुर्मों का बोझ और भी अधिक होगा. यदि हम पूछें कि 'क्यों ऐसा क्यों होगा?' तो कानून महाशय कहेंगे—और उनका यह कहना अनुचित न होगा—कि "इसलिये कि तुम हमारे साथ प्रतिज्ञा-बद्ध हो चुके हो। हमारी इस बात का और भी पुष्ट प्रमाण मौजूद है कि तुम हमसे और इस नगरी से ख़ूब संतुष्ट थे, नहीं तो यहीं घर-बार का पसारा क्यों फैलाते? दूसरे एथेंसवासियों की अपेक्षा तुम अधिक संतुष्ट थे—यह इसी बात से प्रगट हो रहा है कि मेले तमाशे मे, सिवाय एक बार के तुम कभी भी घर से बाहर नहीं गए और सिवाय युद्ध-यात्रा के कभी विदेश-भ्रमण को भी तुम नहीं निकले; दूसरे नाना प्रकार के देश-देशांतर और नए नए आइन कानून के देखने की तुम्हें चाह हुई ही नहीं। तुम तो केवल हमसे और हमारी नगरी से ही राजी रहे। यहाँ तक तुमने हमे अच्छा समझा कि हमारे शासन मे

रहना पसंद किया; यहाँ तक इसे पसंद किया कि इसी शासन के अधीन रहकर संतान तक उत्पन्न की। और भी एक बात है। तुम चाहते तो अपने लिये देश-निकाले की सजा भी माँग सकते थे और उस समय यह काम राज्य की अनुमति से हो जाता जो तुम अब उसके बिना किया चाहते हो। तुमने कहा कि हम देशनिर्वासन से प्राणदंड को अच्छा समझते हैं और मरने का तुमने बड़ा गौरव बखान किया। अब तुम्हे लज्जा नहीं आती जो भरी सभा मे ऐसा कहकर कायरों का सा काम करने पर उतारू हुए हो; और कानून की प्रतिष्ठा कुछ भी ही करते, उलटे उसे नष्ट करने पर उद्यत हुए हो। तुम्हारी दशा इस समय ठीक एक अभागे दास की तरह है जो अपने स्वामी से किए हुए करार और शपथ को भंग कर भागने को तैयार हो। पहले, हमे यह जवाब दो कि हमारा यह कहना यथार्थ है कि नही कि वास्तव मे तुमने हमारे शासन के अधीन रहना स्वीकार किया है—केवल बातों से नहीं—अपने कामो से इस करार को पक्का कर दिया है?"

क्यों भाई क्रूटो, कानून देव के इस प्रश्न का हम क्या उत्तर देंगे? क्या स्वीकार न करें कि हाँ, हमने करार किया है?

क्रूटो—स्वीकार करना ही पड़ेगा।

सुक०—तो क्या फिर कानून नही कहेगा कि "क्या तुम उस करार को—प्रतिज्ञा को—भंग नही कर रहे हो? क्या

तुमसे किसी ने जबरदस्ती या फुसलाकर यह करार कर-वाया था ? क्या हड़बड़ी में तुमने यह प्रतिज्ञा कर डाली थी ? तुम्हें तो सत्तर बरस का दीर्घ अवकाश मिला था, इस बीच में तुम्हें यदि यह करारनामा अनुचित मालूम पड़ता या तुम हमसे असंतुष्ट होते तो चाहे जहाँ जी चाहता चले जाते, पर तुम्हें कोई देश भी अच्छा न लगा। लेसीडीमन, या क्रीट कहीं भी तुम नहीं गए, यद्यपि तुम्हें कहने की सनक थी कि इन देशों की शासन-प्रणाली बड़ी अच्छी है। तुम न किसी और रियासत में गए, हेलेन या बारबेरी तुम्हें कोई भी अच्छा न लगा। अंधे, लँगड़े, लूले और अपाहिजों से भी कम तुम एथेंस के बाहर गए होगे, जिससे साफ प्रगट हो रहा है कि औरों की अपेक्षा तुम हमसे कहीं अधिक संतुष्ट थे, हमसे—इसी नगरी और यहाँ के कानून से—क्योंकि बिना कानून की नगरी से कौन संतुष्ट हो सकता है ? यदि तुम हमारी बात मानोगे और तुम क्यों न मानोगे—तो एथेंस से भाग-कर जगत् में अपनी हँसी मत कराओ, क्योंकि जरा सोच देखो। इस करारनामे को भंग करके तुम अपने या अपने हितू बांधवों की क्या भलाई कर लोगे ? तुम्हारे भागने से, तुम्हारे बांधवों को भी देश-निर्वासन इत्यादि दंड के जोखिम मे सिर देना पड़ेगा। उनकी जायदाद की जब्ती भी हो सकती है और वे कैदखाने की

हवा भी खा सकते हैं। तुम तो आस-पास के किसी नगर में—थीबीस या मीगार मे—चले जाओगे; क्योंकि तुम उनकी शासन-प्रणाली को अच्छा समझते हो; पर देखो सुकरात, इन प्रजातंत्र रियासतों मे तुम्हारा जाना एक बला के समान होगा, क्योंकि जिन्हें कुछ भी अपने नगर की परवाह होगी वे तुम्हारी तरफ भौचक्के से होकर देखेंगे और तुम्हें कानून का तोडनेवाला समझेंगे। फिर तो यहाँ के जजों की राय और भी पुष्ट हो जायगी और साफ प्रगट हो जायगा कि उनका फैसला गलत न था, क्योंकि जो कानून को तोडने मे न हिचके उसे नादान युवकों को बिगाड़ते क्या देर लगती है? इस हालत मे तुम क्या करोगे? क्या सारी अच्छी शासन-प्रणाली-वाली नगरी और सुसभ्य आदमियों का संग छोड़ दोगे? क्यों ऐसी जिदगी क्या काबिल जीने के होगी? अथवा सुसभ्य आदमियों से मिलकर बातचीत करोगे? किस विषय पर बातचीत—उन्हीं विषयों पर जिन पर यहाँ करते थे। वही धर्म्म अधर्म्म, न्याय अन्याय, नियम अनियम इन्हीं सब उपयोगी बातों पर तर्क वितर्क करोगे। पर कौन सा मुँह लेकर इन बातों को जबान से निकालोगे? क्या लज्जा नहीं आवेगी? शायद यहाँ से पुन: भाग-कर तुम्हें क्रटो के मित्रों के पास थेसली जाना पड़ा, जहाँ के राज्य की कोई व्यवस्था नही है, जहाँ खूब अंधेर चलता

है, और वहाँ के निवासी भी तुम्हारे भागने की कहानी को हँसी दिल्लगी करते हुए सुनेंगे। शायद किसी किसान का वेष बदलकर और चेहरे पर कालिख पोतकर तुम निकल भागोगे, और अपनी आत्म-कहानी उन्हें सुनाओगे। इस कहानी को सुनकर शायद कोई यह भी कह बैठे 'क्यों जी सुकरात ! तुम तो बूढ़े हुए, सत्तर बरस के करीब उमर हो गई, तुम्हे जीने की बडी हवस मालूम पड़ती है, जो इतने भारी कानून को तोड़ करके यहाँ भाग आए ! शायद कोई यह भी आव जा कसे तो क्या होगा ? उस समय क्या चुल्लू भर पानी मे डूब मरने का समय नहीं आ जायगा ? तुम्हारी जिंदगी सब लोगों की खुशामद और मुसाहिबी मे बीत जायगी। थीसली मे पड़े-पड़े केवल हलुवा पूड़ी उड़ाना, मानों सैल सपाटा करने वहाँ गए हो, पर भाई साहब ! वह' धर्म्म अधर्म्म, न्याय अन्याय की लंबा लंबी डींगें जो तुम यहाँ मारा करते थे, उनका क्या होगा ? शायद अपने बच्चो की शिक्षा के लिये तुम अपनी जिंदगी बचना मुनासिब समझते हो; तो क्या अपने बच्चों को थीसली ले जाओगे और वहीं उन्हे लिखाओ पढ़ाओगे ? क्या उनसे उनका देश छुड़ा दोगे ? मान लो कि यदि तुमने उनसे एथेंस न भी छुड़ाया तो क्या तुम्हारे जीते रहने से उनकी शिक्षा और अच्छी हो सकेगी ? हाँ। क्यों नहीं। तुम्हारे दोस्त

सब इनकी खबरदारी करेंगे ? अच्छा तो क्या थोसलो की यात्रा करोगे तभी तुम्हारे दोस्त इन बच्चों की खबरदारी करेंगे और स्वर्ग की यात्रा करोगे तो खबरदारी नहीं करेंगे ? यदि वे तुम्हारे सच्चे दोस्त हैं तो तब भी तुम्हारे बच्चो की खबरदारी करेंगे। फिर क्यों ऐसा करते हो ? नहीं, यह सब किसी काम की बात नहीं है। हमारा कहना मानो। हमने तुम्हे बच्चे से पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, हमारी सलाह मान जाओ। न्याय और धर्म्म के आगे, बाल-बच्चे, घर-गृहस्थी, अपनी जान तक की परवाह मत करो; क्योंकि तुम्हे परलोक में भी एक अदालत के सामने जाना पड़ेगा। फिर वहाँ क्या मुँह लेकर अपनी सफाई का बयान दोगे ? यह तो बात साफ जाहिर है कि तुम्हारे इस काम करने से न तो तुम्हारा धर्म्म या पुण्य बढ़ेगा, न तुम्हारे मित्रो को और न मरने के बाद तुम्हें शांति मिलेगी। इस समय तो केवल इतना ही है कि तुम पर अत्याचार हुआ है—कानून द्वारा नहीं—मनुष्यों द्वारा अत्याचार हुआ है। अब यदि तुम इसके बदले हम पर—कानून पर—अत्याचार कर बैठो और इस तरह बेहया बनकर बुराई के बदले बुराई करने पर कमर कस लो और उन्हे अर्थात् स्वयं अपने मित्रों, अपने स्वदेश और कानून को हानि पहुँचा दो और भाग जाओ तो जब तक तुम जीओगे, हम तुमसे

चिढ़े रहेंगे और मरने के बाद हमारे दूसरे भाई साहब—परलोक के कानून—भी तुम्हें दुतकारते ही रहेंगे क्योंकि उन्हें मालूम तो रहेहीगा कि तुमने मर्त्यलोक में उनके भाई—सांसारिक कानून—को नष्ट करने में कोई कसर उठा नहीं रखी थी। इसलिये पुनः कहते हैं कि "हमारा कहना मान जाओ और क्रुटो के बहकाने मे मत आओ।" सुना भाई क्रुटो! कानून का व्याख्यान!! मुझे कानून देव का यह व्याख्यान स्पष्ट सुनाई दे रहा है—सरस्वती देवी की वीणा की तरह यह झंकार मेरे कानों मे गूँज रही है और इस झंकार के आगे और कोई शब्द सुनाई ही नहीं देता। इस झंकार से मेरे रोम रोम में न्याय और धर्म्म पर दृढ़ रहने का उत्साह समा रहा है और इस महाशब्द के सामने तुम्हारी बातें नक्कारखाने में तूती की आवाज हैं। कुछ फल निकलने का नहीं। चाहे और भी चेष्टा कर देखो।

क्रुटो—मुझमे तो अब और कुछ कहने की शक्ति नहीं है।

सुक०—तब चुप रहो। जो होता है होने दो। भगवान् की इच्छा यों ही है।

छठा अध्याय

सुकरात की स्वर्ग-यात्रा

सुकरात की मृत्यु के बाद उसके शिष्य और मित्रगण जब एक जगह इकट्ठे हुए तब उनमे इस प्रकार की बातचीत हुई थी। इन शिष्यों में फीडो, इशीक्रूटस, शिवी, शिमी, अपोलोडोरस, क्रूटो इत्यादि मुख्य थे।

इशीक्रूटस—क्यों भाई फीडो! तुम क्या उस दिन, जब सुकरात ने विषपान किया था, खुद बंदी-गृह मे उपस्थित थे या और किसी से उनके अंत समय की कहानी सुनी है?

फीडो—मैं खुद वहाँ मौजूद था।

इशीक्रूटस—तब तो तुमने उस समय के गुरुजी के वाक्यों को कानों से सुना और उनके अंत समय का कृत्य आँखों से देखा होगा। क्या अच्छा हो, यदि तुम वे सब बातें आद्योपांत वर्णन कर दो; क्योंकि इन दिनों हम लोगों से एथेंस को तो कोई बहुत आता जाता है हो नहीं, दूसरे बहुत दिनों से कोई परदेशी भी यहाँ नहीं आया जिसकी जबानी इन सब बातों का ब्योरेवार हाल मालूम होता। हमे केवल इतना ही पता लगा है कि उन्होंने विषपान कर प्राण त्याग किया। इसके सिवाय और कुछ हाल मालूम नही हुआ।

फीडो—तो क्या मुकद्दमे वगैरः का कुछ हाल भी तुम लोगों ने नही सुना ?

इशी०—हाँ, उसकी खबर तो सुनी थी, पर इस बात का हम लोगों को बड़ा ताज्जुब है कि मुकद्दमा हो जाने के बाद गुरुजी इतने दिनों तक जीते क्योंकर रहे ?

फीडो—एक घटना के कारण। वह यह थी कि "एथेंसवासी हर साल देलोस को जो जहाज भेजा करते हैं, उसकी प्रतिष्ठा (पूजा) मुकद्दमे के पहले दिन हुई थी।

इशी०—यह कैसा जहाज होता है ?

फीडो—तुम नहीं जानते ? इसकी कथा एथेंसवासी यों कहते हैं कि इसी जहाज में थीसीयस सात कुमारो और सात कुमारियों को क्रीट देश मे ले गया था और यों उसने अपनी और उनकी प्राण-रक्षा की थी। उसी दिन से एथेंसवासियों ने यह मनौती मानी थी कि 'यदि ये लोग बच जायँगे तो प्रति वर्ष देलोस की देवी को पूजा भेजी जायगी'। तब से आज तक हर साल इस जहाज की प्रतिष्ठा इत्यादि करके देवी के अर्थ पूजा भेजी जाती है। जब तक यह जहाज देवी का प्रसाद लेकर लौट नहीं आता तब तक कोई जघन्य कार्य्य का अनुष्ठान नगर में नहीं होने पाता और इसी अर्थ यदि इस बीच मे किसी को प्राण-दंड की आज्ञा हो जाती है तो जहाज के वापस आने तक उस अपराधी की हत्या नहीं की जाती। कभी कभी तो

वायु के विमुख हो जाने से ज़हाज के वापस आने में बहुत देर लग जाती है। जिस दिन से जहाज को सेहरा पहनाया जाता है, उसी दिन से उत्सव के दिन का प्रारंभ समझा जाता है। अब की बार गुरुजी के मुकद्दमे के एक दिन पहले ही जहाज को सेहरा पहनाया गया था। इसी लिये इतने दिनों तक उन्हें बंदीगृह मे रहना पड़ा।

इशी०—तो तुम हम लोगों को केवल उनकी मृत्यु-कहानी सुना दो। मरते समय उन्होंने क्या क्या कहा और कौन कौन से कृत्य किए? उस समय उनके पास कौन कौन था? अफसरों ने उनके पास किसी को जाने दिया या नहीं? मरते समय वे अकेले थे, या उनके पास कोई था? यह सब सविस्तर बतलाओ।

फीडो—नही जी, उस समय उनके पास कई आदमी थे।

इशी०—देखो भाई, इस समय यदि तुम्हे और कुछ काम न हो तो आदि से अंत तक सारी बात का वर्णन कर डालो। हम लोगों को सुनने की बड़ी उत्कंठा है।

फीडो—काम और क्या है? मुझसे जहाँ तक बन पड़ेगा, तुम लोगो को सब सुनाऊँगा। मुझे तो खुद इसमें बड़ा आनंद आता है। सुकरात की बाते' करते हुए मैं आनंद-सागर में उतराने लगता हूँ। उनकी बाते' याद आते ही मुझे रोमांच होने लगता है।

इशी०—हम लोगों को भी ऐसा ही श्रद्धालु श्रोता समझो। पर भाई साहब, आपको ब्योरेवार सब हाल ज्यों का त्यों सुनाना पड़ेगा।

फीडो—क्या कहूँ, उस दिन की मेरे दिल की हालत। दिल की एक अजीब हालत हो गई थी। मुझे यह भान ही नहीं होता था कि आज मेरे एक परम मित्र के देहांत का दिन है; करुणा ने मुझे अभिभूत नहीं किया, क्योंकि जब तब मैं सुकरात की तरफ देखता तो उन्हें शात और प्रसन्न-वदन पाता। भय का लवलेश भी न था। ऐसी निर्भयता और ऐसी शांति से तो मैंने आज तक किसी को मरते देखा ही नहीं। उनकी इस स्थिति को देखकर मुझे पूरा निश्चय हो गया कि स्वर्ग का द्वार उनके लिये खुला है और देवताओं की सभा में वे आसन पाने योग्य हैं। इसलिये उस मौके पर करुणा के बदले हम लोग प्रतिष्ठा और विस्मय की दृष्टि से गुरुजी को देख रहे थे, और खूबी यह थी कि यद्यपि दर्शन विज्ञान की चर्चा हो रही थी, पर सदा की तरह इस मौके पर इस चर्चा से हम लोगो का मन प्रफुल्लित नहीं होता था। जब कुछ दर्शन और ज्ञान की बातो का रस आने लगता तब तुरंत ही गुरुजी की आसन्न मृत्यु की याद आ जाती और वह आनंद दुःख मे बदल जाता था। दिल की एक अजीब हालत थी। हम लोग एक आँख से हँसते और दूसरी से रो

देते थे. विशेषकर हममें से एक महाशय अपोलोदोरस ने तो बारी बारी से रोकर और हँसकर अजीब ही कैफियत दिखलाई। वह जरा भी अपने को वश में नहीं रख सका था, और बार बार बालकों की तरह रुदन करने लगता था। हम लोगों का कलेजा भी टूक टूक हो रहा था, पर ज्यों त्यों कर अपने को सँभाले जाते थे।

इशी०—वहाँ कौन कौन था ?

फीडो—एथेसवासियों में से तो अपोलोदोरस, क्रटो वेलस, उसका बाप क्रटो, हरमोजीनिस, इपीगीनस, अश्वनी और अंतस्थानी थे और परदेशियों में शतसख्या, और मीनाचोनी थे तथा और भी कई एथेसवासी लोग थे। प्लेटो शायद बीमार होने के कारण नहीं आ सका था।

इशी०—परदेशियों मे और भी कोई था ?

फीडो—हाँ, थीबी नगरी का शीमी, शिवी और फइडोनडा और मिगारा नगरी का युकलेदिस और तर्पसन भी मौजूद था।

इशी०—क्यों अरस्तीपस और क्लियो ब्रोटस में से कोई नही था ?

फीडो—नहीं, इनमें से तो कोई नही था, सुना है कि वे लोग अगीना में हैं।

इशी०—और भी कोई था ?

फीडो—नहीं, और कोई नहीं था।

इशी०—अच्छा अब क्या बातचीत हुई सो सुनाओ।

फीडो—निस्संदेह। मैं आदि से अंत तक सारी कथा सुनाए देता हूँ। मुकद्दमेवाले दिन तो गुरुजी से अदालत मे भेंट हुई थी। बंदीगृह भी इसके पास ही था। सो जब वे बंदीगृह मे भेज दिए गए, तो हम लोग भी उनसे मिलने भीतर गए थे। प्रातःकाल बंदीगृह का द्वार खुलने के पहले ही हम लोग वहाँ पहुँच जाया करते थे, और जब तक फाटक नहीं खुलता था, बाहर खड़े खड़े बातचीत किया करते थे। फाटक खुलने पर हम लोग उनके पास जाते और दिन भर उन्हीं के पास रहते थे। पर जिस दिन उन्होंने महाप्रयाण किया उस रोज हम लोग जरा तड़के ही वहाँ जा पहुँचे थे, क्योंकि हम लोगों को पता लग चुका था कि दिलोस देवीवाला जहाज आ चुका है। इसलिये जहाँ तक हो सका, उस रोज खूब तड़के ही बंदीगृह मे पहुँच गए। रोज तो द्वारपाल हम लोगो को फौरन भीतर ले लेता था, पर इस दिन उसने स्वयं बाहर आकर हम लोगो को थोड़ी देर तक ठहरा रखा और कहा कि 'जब तक हम न बुलावे, आपमेसे कोई भीतर न आवे; क्योंकि इस समय राज्यकर्मचारी सुकरात की हथकड़ी-बेड़ियाँ खोल रहे हैं और उसके प्राणदंड की तैयारी का आदेश दे

रहे हैं।' थोड़ी ही देर में द्वारपाल महाशय ने हम लोगों को भीतर बुला लिया। तुरंत ही गुरुजी की हथकड़ी-बेड़ियाँ खोली गई थीं और जनथीपी उनकी स्त्री अपने बच्चे को गोद में लिए उनके पास बैठी थी। जनथीपी हम लोगों को देखते ही चिल्ला-कर रो उठी, और जैसा कि औरतों का दस्तूर है, बिलाप कर कहने लगी "लो, स्वामीजी, अपने दोस्तो से आखिरी मुलाकात कर लो।" गुरुजी ने क्रुटो की ओर देखकर कहा—'क्रुटो! इसे घर पहुँचा आओ।" अस्तु, क्रुटो के कुछ सेवक उसे घर ले गए। वह रास्ते भर रोती और छाती पीटती गई, पर गुरुजी उसी प्रकार से शांतमूर्ति बैठे हुए, पैर मोड़कर पैर पर हाथ फेर रहे थे। टाँगों पर हाथ फेरते हुए वे कहने लगे "दुनिया में सुख भी क्या ही विचित्र वस्तु है। इसका अपने विरोधी दुःख से भी देखो कैसा घनिष्ठ संबंध है। यद्यपि दोनो एक संग नहीं आते, पर जो आदमी एक का पीछा करके उसे प्राप्त करता है तो दूसरा भी उसके साथ ही साथ खिँचा चला आता है, मानों दोनों को किसी ने एक डोरे मे जोड़ दिया हो। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि यदि हितोपदेश (ईसाप) के रचनेवाले ने यह बात लक्ष्य की होती तो इस आशय का अवश्य एक किस्सा बना डाला होता कि 'एक समय इन दोनों (दुःख और सुख)

को आपस में झगड़ते देखकर, परमात्मा ने दोनों में मेल कराना चाहा, पर इन दोनों ने भगवान् की बात नहीं मानी तो भगवान् ने उन दोनो की दुम एक साथ बाँध दी कि जहाँ एक जाय वहाँ दूसरा भी घसिटता हुआ चला आवे। क्योंकि जब एक आता है तब दूसरा अवश्य ही उसके पीछे आ मौजूद होता है।' इस समय मेरी भी वही हालत हुई है। जंजीरों से जकड़े रहने के कारण पैर में दर्द हो रहा था, और दर्द के बाद आराम (सुख मालूम) पड़ रहा है।"

इस मौके पर शिवी ने गुरुजी को रोककर कहा—"अच्छा, हितोपदेश की बात आपने खूब याद दिलाई। अभी उसी दिन कई लोग मुझसे पूछ रहे थे—आपकी कविता के बारे मे—जो आपने हितोपदेश पर छंदोबद्ध की है और यहाँ पर जो दो चार भजन बनाए हैं, उन्हीं के बारे मे—अभी कल इमीनस मुझसे पूछ रहा था कि 'सुकरात ने जन्म भर तो कभी कोई कविता की ही नहीं। अब मौत के किनारे आकर क्या सूझी जो कविता रचने लगे।' सो तुम यदि इसका जवाब देना उचित समझो तो बतला दो, मैं भी उसे वैसा ही समझा दूँगा।"

सुक०—ऐसी बात है! तब तुम उसे सच ही सच कह देना कि मैंने ये कविताएँ कुछ उससे बाजी मारने के लिये नहीं बनाई हैं। बात असल मे यह है कि मैं अपने मन का

एक बोझा हलका कर रहा था, क्योंकि स्वप्न में मुझे कई बार ऐसा आदेश हुआ कि 'संगीत रचो'। मैंने इसका यह अर्थ समझा कि शायद दैववाणी मुझे अपने कर्तव्य-कर्म्म मे उत्साह देने के लिये यह बढ़ावा दे रही है, जैसे कि पहलवानों को लोग बढ़ावा दिया करते हैं। सो मैंने भी इससे यही अर्थ निकाला कि इस उत्साह वचन से उसी संगीत का तात्पर्य है जिनकी रचना मैं नित्य कर रहा हूँ। क्योंकि दर्शनशास्त्र से बढ़कर और कोई मनमोहनी संगीत-विद्या मेरी समझ मे है ही नहीं और मेरी सारी आयु इसी विज्ञान में बीती है। पर मुकद्दमे के बाद जब दिलोस देवी के महोत्सव के कारण मेरी मृत्यु में कुछ देर दिखाई दी तब मैंने सोचा कि शायद यह दैववाणी मुझे साधारण संगीतपदावली रचने की आज्ञा देती हो और यदि मैंने ऐसा न किया तो मन में एक खटका रह जायगा। इसलिये यही उचित समझा कि चलो जी, चलते चलाते यह खटका मिटाते चलें। इसलिये पहले मैंने दिलोस देवी की स्तुति मे एक भजन बनाया, फिर इसके बाद हितोपदेश का जो किस्सा ध्यान में आया, उसे मैं छंदोबद्ध करने लगा। जो पहले याद आया उसी को कविता मे कर डाला, क्योंकि कवि लोग कुछ वास्तविक घटना के बल पर तो कविता रचते हैं ही नहीं, इसमे तो उनकी कल्पना की दौड़ काम करती है और मेरे पास कल्पना की दौड़ है

ही नहीं, फिर क्या करता ? इसी पर संतोष किया। अस्तु, इमीनस से मेरे आखिरी सलाम के बाद यह भी कहना कि "यदि उसे कुछ समझ है तो शीघ्र ही मेरे पीछे चला आवे। एथेंसवासियों के इच्छानुसार, मैं तो आज ही महाप्रस्थान करूँगा।"

गुरुजी की यह बात सुनकर शिमी बोला--वाह सुकरात महाशय ! क्या मजेदार सलाह इमीनस को दे रहे हो। खूब जान लो, वह तुम्हारी इस सलाह पर कान देनेवाला नहीं। मैं उससे खूब परिचित हूँ। उसका बस चले तो कभी मौत को पास फटकने ही न दे।

सुक०—क्यों ? क्या इमीनस ज्ञानी नहीं है ?

शिमी—मेरी समझ मे तो ज्ञानी है।

सुक०—तब तो उसे अवश्य मरने की इच्छा रखनी चाहिए और अध्यात्म-शास्त्र का जिसने जरा भी अध्ययन किया होगा वह अवश्य मरने की इच्छा करेगा। पर मैं यह नहीं कहता कि वह आत्महत्या कर ले। आत्महत्या पाप है। यह कहकर गुरुजी ने शय्या से उतारकर पैर भूमि पर रखा और बाकी का सारा समय इसी तरह बैठे हुए बात करने मे बिता दिया।

इसके बाद शिवी ने पूछा--क्यों भाई सुकरात, जब ज्ञानी आदमी को मरते हुए का अनुगमन करना ही चाहिए तब फिर तुम आत्महत्या को पाप क्यों बतलाते हो ?

सुक०—वाह ! भाई शिवी ! तुम और शिमी दोनों फिलोला के पास रह चुके हो और तुमने उससे इसकी मीमांसा कभी नहीं सुनी ?

शिवी—नहीं भाई, इस बात की पूरी सफाई कभी भी नहीं हुई। मुझे भी इस विषय की पूरी युक्ति मालूम नहीं है, पर हाँ जो बड़े लोगों से सुना है वह कहूँगा। जब परलोक को चला-चली की तैयारी है तब फिर इस समय परलोक ही की बात करना भी अच्छा है। आखिर संध्या तक की बातचीत के लिये कुछ मसाला तो चाहिए ही, सो इससे उत्तम और कौन सा विषय है जिस पर बातचीत करना इस समय उचित मालूम पड़े ? अच्छा तो भाई सुकरात, वे लोग अपने पक्ष में कौन सी युक्ति देते हैं कि आत्महत्या पाप है ? थीबी नगरी में रहते समय फिलोला से मैंने सुना था सही कि आत्महत्या पाप है तथा और भी कई आदमियों की जबानी सुना है, पर किसी ने युक्तिपूर्वक समझाया नहीं।

सुक०—खैर तो अब सही। तुम अब खुश हो जाओ। आज इस विषय की कोई न कोई युक्ति सुनने में आवेगी, पर मुझे यह कहते सुनकर कुछ विस्मित न होना कि यह विषय नियम, सब नियमों से निराला और स्वतः प्रमाण्य है। इसका व्याघात कभी नहीं होता और क्या यह भी बात सच नहीं कि किसी किसी मौके पर किसी किसी

मनुष्य को जान से मरना अच्छा लगता है और वह इसे चाहता है; पर तुम यह सुनकर कुछ विस्मित मत हो यदि मैं कहूँ कि ऐसे लोगों को आप ही अपना काम समाप्त नहीं कर डालना चाहिए वरन् ऐसे एक बाहरी उपकारी की बाट जोहनी चाहिए जो उन पर यह उपकार कर दे।

"वाह! यह भी खूब कही"•शिवी हँसता हुआ अपनी देशी जबान में बोल उठा।

"खूब क्यों नहीं"। गुरुजी कहने लगे, "इस तरह से कहने से तो तुम्हे यह बात आश्चर्य की मालूम पड़ी होगी, अब इसकी युक्ति भी सुनाए देता हूँ। यह युक्ति उसी गुप्त विद्या से संबंध रखती है (शायद योगविद्या) जो बताती है कि "मनुष्य एक प्रकार के कैदखाने मे है जहाँ से उसे स्वयं छुटकारा लेना, या भाग जाना उचित नहीं है।" इस युक्ति का मर्म बड़ा गंभीर है और सहज में उद्घाटन होने का नहीं। पर इतना तो मैं भी सोचता हूँ कि 'परमात्मा हमारे रक्षक हैं—बड़े हैं—और हम मनुष्य उनकी संपत्ति हैं।' क्यों तुम क्या समझते हो?"

शिवी—यही मैं भी समझता हूँ।

सुक०—ठीक, तब यदि तुम्हारी कोई संपत्ति अपने आप अपना नाश कर ले (तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध) तो क्या तुम नाराज नही होगे? यदि दंड देना संभव हो तो क्या तुम उसे दंड नही दोगे?

शिवी—अवश्य देंगे।

सुक०—सो इस विषय में भी ऐसा ही समझो, कि जब तक परमात्मा की आज्ञा न हो (जैसी कि मुझको हो गई है) तब तक किसी आदमी को अधिकार नहीं है कि अपना जीवन नष्ट कर दे।

शिवी—हाँ, बात तो ठीक मालूम पड़ती है; पर अभी जो आप कह रहे थे कि ज्ञानी दार्शनिक लोग मरने की इच्छा रखते हैं, इसका तात्पर्य्य क्या है? यह तो एक गोरखधंधे की बात है। क्योंकि अभी जो आपने कहा कि परमात्मा की हम जायदाद—प्रजा—हैं, यदि यह बात सच हो तो मरने की इच्छा क्यों रखना? क्योंकि मालिक की जायदाद जहाँ तक रक्षित रह सके वैसा करने की चिंता करना सेवक का धर्म्म है। ऐसे अच्छे स्वामी की सेवा छोड़कर चले जाना ज्ञानी आदमी क्यों अच्छा समझेगा? क्योंकि परमात्मा से बढ़कर वह आप अपनी रक्षा तो कर सकता नहीं। यदि कोई ऐसा समझकर उस परमात्मा की रक्षा से छूटना चाहे—मरना चाहे—तो उसे हम मूर्ख से और अधिक क्या कह सकते हैं। ज्ञानी और मूर्ख, पर्य्यायवाची शब्द नहीं हैं वरन् ठीक उल्टे हैं। फिर तुम्हारा यह कहना कि ज्ञानी मृत्यु की इच्छा रखे, क्योंकर ठीक हो सकता है?

शिवी की इन युक्तिपूर्ण बातो को सुनकर गुरुजी कुछ प्रसन्न मालूम पड़े और हम लोगों की ओर देखकर बोले--शिवी बड़ा पक्का तार्किक है। वह उन लोगों सा नहीं है जो ऐरों गैरों की बात सुनते ही उसे पल्ले में बॉध लेते हैं।

शिमी—हॉ महाशयजी, मैं भी यही समझता हूँ कि शिवी का कहना कुछ वजन रखता है। ज्ञानी आदमी क्यों अपने सत्स्वामी की सेवा छोड़ेगा? और भी एक बात है, शिवी का यह ताना आपकी तरफ भी है, क्योंकि आप हम लोगों को और अपने देवी-देवताओं को छोड़कर चले जा रहे हैं। ये देव-देवी सब हमसे उत्तमतर हैं और हमारी रक्षा कर सकते हैं, यह आप अभी स्वीकार कर चुके हैं।

सुक०—बहुत ठीक! शायद तुम्हारा मतलब यह है कि तुम मुझ पर यह इलजाम लगाते हो और अदालत की तरह इस जुर्म से मुझे अपना बचाव करना पड़ेगा।

शिमी—हॉ, यही मतलब है।

सुक०—अच्छा तो फिर अपने बचाव की कोशिश शुरू करता हूँ। शायद पहले अदालती जुर्म की अपेक्षा इस बार कुछ अच्छा बचाव कर सकूँ।

मेरे भाई शिवी और शिमी, बात असल मे यह है कि यदि मैं यह समझे होता कि मरने के बाद मुझे किसी

बुरी जगह जाना है ते। जरूर कुछ दुःख करता, पर मैं ते। यह समझता हूँ कि मरने के बाद मैं धर्म्मात्मा जनों के बीच जाकर रहूँगा। यद्यपि इसका मुझे पूरा निश्चय नहीं है, पर ऐसा अनुमान ते। अवश्य करता हूँ कि देवी-देवताओं का सहवास ते। मुझे अवश्य ही प्राप्त होगा, जो कि हमारे स्वामी हैं—और अच्छे स्वामी हैं। इसी लिये मरने का मुझे कुछ ऐसा दुःख नहीं है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि मरने के बाद भी एक प्रकार का जीवन मिलता है और यह जीवन सत्पुरुषों के लिये सुखदाई है और पापियों के लिये दुःखदाई है।

शिमी—अच्छा सुकरात, यह विश्वास तुम अपने ही तक रखोगे कि हम लोगों को भी अपना साथी बनाओगे? क्या हम लोगों को अपने जीवन-मरण और पाप-पुण्य की परवाह नहीं है! इसमे दोनों की भलाई होगी। एक ते। तुम अपना बचाव भी कर लोगे, दूसरे हम लोगों को भी एक सिद्धांत पर निश्चय विश्वास हो जायगा।

सुक॰—अच्छा मैं कोशिश करता हूँ। पर हाँ, क्रीटो कुछ कहना चाहता है, ऐसा मालूम पड़ता है। पहले उसकी बातें सुन लूँ।

क्रीटो—और ते। कुछ नहीं, केवल जो आदमी तुम्हें विषपान कराने के लिये मुकर्रर किया गया है, अभी कह रहा था

कि "सुकरात को चिता दो कि अधिक बकवाद न करे; क्योंकि इससे लोगों को गरमी चढ़ जाती है और फिर गरमी विष को जलदी चढ़ने नहीं देती, जिसका परिणाम यह होता है कि दो दो तीन तीन बार जहर पीना पड़ता है।"

सुक०—जो होगा होने दो, उससे कह दो कि अपना काम देखे और दो तीन बार विष पिलाने का सामान तैयार रखे।

क्रुटो—मैं तो पहले ही से जानता था कि तुम यही जवाब दोगे, पर जब वह आदमी बार बार जिद करने लगा तब मुझे तुमसे कहना ही पड़ा।

सुक०—उसे बक बक करने दो। तुम बैठो, हमारी बातें सुनो। हाँ, अब आप लोगों के सामने, जो इस समय मेरे न्यायकर्ता जजों के स्वरूप मे बैठे हैं, मुझे अपना बचाव करना है और यह बतलाना है कि किसलिये उस आदमी को जिसने अपनी सारी आयु ज्ञान विज्ञान की चर्चा मे बिताई है, मरने के समय आनंद मनाना चाहिए और उसकी यह आशा व्यर्थ नहीं है कि परलोक मे उसे सर्व्वोत्तम गति प्राप्त होगी। मेरे भाई शिवी और शिमी, अब मैं इसी का खुलासा तुम्हारे सामने उपस्थित करने की कोशिश करता हूँ।

बात यह है कि ज्ञानी लोग जो ज्ञान-चर्चा करते हैं वह और कुछ नहीं है केवल जीवन-मरण ही के प्रश्नों

पर विचार करना है। इस बात पर शायद संसारी लोग लक्ष्य नहीं करते। और यदि यही बात सच है तो फिर यह भी क्या विचित्र बात नहीं होगी कि जो जन्म भर इसी मृत्यु के प्रश्न पर विचार कर रहा हो, वही मृत्यु जब सामने आवे तो घबरा जाय और बगलें झाँकने लगे ?

सुकरात की इस बात पर शिमी हँस पड़ा और बोला—तुम्हारी बात सुनकर मुझे हँसी आ गई, यद्यपि यह मौका हँसने का नहीं। यदि मामूली लोग तुम्हारा यह कथन सुन लेते तो वे मान लेते कि ज्ञानियों के विषय मे जो तुम कहते हो वह ठीक है। वे यह भी मान लेते कि ज्ञानी मरने के लिये उत्सुक हैं और इस पर हमारे देशवासी शायद यह भी निश्चय कर लें कि 'इन्हीं ज्ञानियों को मार डालना ही उचित भी है'।

सुक०—उनकी समझ गलत नहीं, पर हाँ एक बात मे गलती हो सकती है। वह यह है कि वे इस मामले को ठीक नहीं समझते। उन्हे इस बात का पता नहीं है कि 'ज्ञानी की मृत्यु का तात्पर्य क्या है और उसके लायक कौन सी मृत्यु है और किस कारण से उस प्रकार की मृत्यु के वह उपयुक्त है।' अच्छा इन लोगों की बात छोड़ दो। आओ हम आपस मे जैसा समझें बात करे। अच्छा, यह बतलाओ 'तुम मृत्यु को कोई चीज समझते हो' ?

शिमी—हाँ, समझते हैं।

सुक०—यही न समझते हो कि शरीर से आत्मा का अलग हो जाना मृत्यु है ? शरीर अलग और आत्मा अलग हो जाती है। दोनों स्वतंत्र हो जाते हैं। इसी का नाम मृत्यु है या कुछ और है ?

शिमी—यही है।

सुक०—खैर, इस विषय पर तो हममे कोई मतभेद नहीं है; तो अब हम जो पूछें उसका ठीक ठीक जवाब देकर इस विषय के सुलझाने मे हमारी सहायता करो। अच्छा, यह बतलाओ 'तुम क्या समझते हो कि विषयों की ओर ज्ञानियों की अधिक प्रीति रहती है—अर्थात् आहार, निद्रा, मैथुन, भोग-विलास इत्यादि की ओर' ?

शिमी—कदापि नही।

सुक०—तो क्या शरीर की उनको बड़ी ममता रहती है और अच्छे अच्छे सुगंधित पुष्टिकर भोजन और सुंदर भड़कीले रेशमी वस्त्र या इत्र चंदन पुष्प और आभूषणों से वे अपना श्रृंगार करना पसंद करते हैं या इन सब चीजों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, यों ही जब बरबस इनसे वास्ता पड़ गया तो इन्हे काम में लाते हैं, नही तो इन्हे वे छूते तक नहीं ? क्यों तुम्हारी क्या राय है ?

शिमी—मैं तो समझता हूँ कि जो असली ज्ञानी होगा वह इन चीजों को अवश्य घृणा की दृष्टि से देखेगा।

सुक०—तात्पर्य्य यह कि इस बात को तुम समझ गए कि एक दार्शनिक ज्ञानी के अध्ययन का विषय यह जड़ शरीर नहीं है। वह जहाँ तक संभव होता है इससे अलग रहकर, आत्मा ही की ओर अपना लक्ष्य रखता है।

शिमी—बहुत ठीक।

सुक०—तो इससे तात्पर्य्य यह निकला कि और आदमियों की अपेक्षा एक ज्ञानी आदमी, जहाँ तक संभव होता है, इस जड़ शरीर को आत्मा से अलग रखता हुआ चलता है।

शिमी—निस्संदेह।

सुक०—अच्छा तो अब दुनियादारी की तरफ जाइए। दुनियादार लोग जब किसी ऐसे आदमी को देखते हैं जो इन शारीरिक विषयों से अलग रहता है, तो क्या वे नहीं कहते कि इस आदमी का जीना न जीना दोनों बराबर है? क्योंकि जिसे शरीर ही की कुछ परवाह नहीं तो वह मानों जीता हुआ मुर्दा ही है।

शिमी—हाँ, ऐसा कहते तो हैं।

सुक०—अच्छा तो अब ज्ञानप्राप्ति की बात लीजिए। यदि ज्ञानप्राप्ति करने के लिये शरीर के यत्न का अड़ंगा भी संग लगा रहे तो इससे ज्ञानप्राप्ति में विघ्न होता है या नहीं? खुलासा यह है कि श्रवण और दर्शन, ये दो जो आँख और कान के विषय हैं, इनसे क्या मनुष्य को

कोई सत्य सिद्धांत का अनुभव होता है ? क्या रात दिन कवियों के मुँह से नहीं सुना जाता कि आँख और कान हमेशा ठीक ठीक ज्ञान का अनुभव नहीं कराते ? जब इन दो प्रधान इंद्रियों का यह हाल है तब अन्य इंद्रियों की बात ही क्या, जो कि इनके ऐसी पूर्णता को प्राप्त नहीं हैं ! क्यों क्या दर्शन और श्रवणेंद्रिय की तरह और इन्द्रियों में भी वैसी ही कारीगरी है ?

शिमी—नहीं, उतनी नहीं है ।

सुक०—तब फिर आत्मा 'सत्य का अनुभव' कब करती है? यह तो स्पष्ट ही है कि जब शरीर को साथ लेकर मनुष्य सचाई को खोजना चाहता है, इंद्रियाँ उसको भ्रांत कर देती हैं ।

शिमी—बेशक ।

सुक०—एक मात्र 'न्याययुक्ति' ही ऐसी चीज है, जिससे सत्य का अनुभव होता है ।

शिमी—ठीक ।

सुक०—और भी एक बात है, आत्मा उसी समय खूब अच्छी तरह से न्याय और युक्तिपूर्व्वक तर्क करने में समर्थ होती है, जिस समय उसे इंद्रियों के कोई विषय (अर्थात् देखना सुनना) न सता रहे हों । तात्पर्य यह कि जब तक आत्मा शरीर का बिलकुल ध्यान छोड़कर अपने आप मे स्थित हो "सत्य के अनुसंधान" मे तत्पर नहीं होती, तब तक उसकी मनोकामना सिद्ध नहीं होती।

शिमी—ठीक है।

सुक०—तात्पर्य्य यह निकला कि उस समय ज्ञानी की आत्मा शरीर को तुच्छ जानकर अपने आप में लीन रहने की चेष्टा करती है।

शिमी—बहुत ठीक।

सुक०—अच्छा तो अब दूसरे विषय को लीजिए। तुम क्या यह मानते हो कि 'न्याय की स्वतंत्र सत्ता' कोई चीज है?

शिमी—मानता हूँ।

सुक०—वैसे ही सौंदर्य्य और नेकी भी अपनी अपनी स्वतंत्र सत्ता हैं?

शिमी—है।

सुक०—क्या इन सत्ताओं को तुमने कभी आँखों से देखा है?

शिमी—नहीं, देखा तो कभी नहीं।

सुक०—तो क्या किसी शारीरिक इंद्रियों द्वारा इनका अनुभव किया है? यहाँ मेरा मतलब सारी सत्ताओं से है, जैसे कि परिमाण, स्वास्थ्य या शक्ति इत्यादि। खुलासा यह कि स्वतंत्र सत्ता से मतलब सारी चीजों के असली सार या निचोड़ से है। अब मैं यह पूछना चाहता हूँ कि प्रत्येक वस्तु की असलियत क्या शरीर के द्वारा जानी जाती है? क्या यह बात सच नहीं कि किसी चीज की असलियत की परखनेवाली 'बुद्धि' है, शरीर नहीं। बुद्धि द्वारा ही चीजों की ठीक ठीक जाँच हो सकती है।

शिमी—निस्संदेह ।

सुक०—तब तो यह सिद्ध हुआ कि जो आदमी शरीर, और इंद्रियों का बोझा एक ओर रखकर केवल 'मन' को साथ लेकर किसी वस्तु की जॉच करेगा वही उस पदार्थ के विषय में साफ साफ जान सकेगा। (मन से मतलब यहाँ शुद्ध बुद्धि से है) अस्तु, किसी शुद्ध सत्ता को जानने के लिये शुद्ध बुद्धि की आवश्यकता है। ज्ञानी को इसके अर्थ अपने को चक्षु और कर्णादिक इंद्रियों से अलग रखना पड़ेगा। तात्पर्य यह है कि सारे शरीर या शरीर संबंधी जड़ पदार्थों का ध्यान छोड़ देना पड़ेगा, क्योंकि येही सारे देखने और सुने जानेवाले जड़ पदार्थ आत्मा को मोह में डालकर उस पर अज्ञान का परदा डाल देते हैं जिससे उसे यथार्थ सत्ता और ज्ञान का बोध नहीं होने पाता। सो यदि किसी को ज्ञान प्राप्त करने की अपेक्षा हो तो वह केवल आत्मस्थ होकर ही उसे प्राप्त कर सकता है, अन्यथा नहीं। क्यों मेरा कहना ठीक है कि नहीं ?

शिमी—बहुत ठीक है। आपने बहुत ही उत्तम युक्ति द्वारा इस विषय को समझाया है।

सुक०—और इन्हीं सब कारणों से क्या सच्चे ज्ञानी लोग सोच विचारकर आपस में नहीं कहते कि "न्याय, युक्ति और तर्क के पीछे चलकर सुखपूर्वक हम अपने जिस

पड़ाव पर पहुँचेंगे, उस पड़ाव का मार्ग बड़ा सूक्ष्म है" ? इसलिये जब तक यह स्थूल शरीर अपना अड़ंगा लगाए रहेगा, तब तक हम अपने असली पड़ाव अर्थात् 'सत्य ज्ञान' (अनंत ब्रह्म) के पास कभी नहीं पहुँच सकेंगे। इससे एक कारण यह भी है कि इस शरीर के यत्न मे हमारा बहुत सा समय खर्च हो जाता है, क्योकि स्थूल शरीर की रक्षा के लिये वह आवश्यक है। फिर यदि शरीर को कोई पीड़ा हुई या रोग हुआ तो वह भी ज्ञान-प्राप्ति का विघ्न स्वरूप आ खड़ा होता है। इसके सिवाय नाना प्रकार के दुःख, आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक शरीर के पीछे लगे हैं और हमें रात दिन रोग, शोक, परिताप, बंधन, व्यसन मे डालकर इच्छा और वासना रूपी तरंगो की थपेड़ से व्याकुल किए रहते हैं। नाना प्रकार के भय और संशय से हम मूढ़वत् हुए रहते हैं, सो इतने बखेड़ो को संग लेकर 'सत्य ज्ञान' का अनुभव क्या खाक हो सकता है ? सत्यज्ञान तो दूर रहा, इन्ही बखेड़ों के कारण लड़ाई-झगड़े, मार-काट, खून-खराबी, युद्ध सभी कुछ हो जाते हैं। युद्ध झगड़े इत्यादि का कारण है पैसा और पैसे बिना पेट भरता नही, शरीर का पालन होता नहीं, इसलिये शरीर ही की गुलामी करते करते सारी आयु व्यतीत हो जाती है और ज्ञानचर्चा का अवकाश मिलता ही नहीं। यदि संयोगवश मन को

खींच खाँचकर ठिकाने लाए और कुछ देर तक के लिये 'सत्य ज्ञान' की चर्चा और आलोचना मे बैठे भी, तो पग पग पर यही स्थूल शरीर एक न एक विघ्न खड़ा कर देता है और सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। सो यह सबक सहज ही सीख लेना चाहिए कि जब तक शरीर का ध्यान छोड़ेंगे नहीं, तब तक 'शुद्ध ज्ञान' का घर हमसे कोसों दूर है। आत्मा को अपने आप मे रहकर, 'आत्मस्थ' होकर, पदार्थों की जाँच करना जरूरी है। मृत्यु के समय आत्मा शरीर से अलग होकर स्वभावतः ही आत्मस्थ हो जाती है और तभी हम उस 'सत्य ज्ञान' के अधिकारी हो सकेंगे जिसके लिये इस जीवन मे हमें तीव्र लालसा रहती हो, क्योंकि तब शरीर का अड़ंगा तो संग रहेगा ही नहीं जो इस मार्ग का इतना भारी विघ्न था। यह बात ऊपर दिखाई हुई युक्तियों से साबित ही है, क्योंकि यदि इस शरीर के साथ रहकर सत्य ज्ञान का अनुभव संभव नहीं तब तो दो बातें ही सकती हैं। या तो सत्य ज्ञान का अनुभव कभी संभव ही नहीं या मृत्यु के बाद शरीर छोड़ने पर सभव है; क्योंकि वही एक ऐसा अवसर हाथ आवेगा जब आत्मा अपनी सत्ता मे आप ही लीन रहेगी। जीते हुए तो हम तभी उस ज्ञान को छू सकेंगे जब इस शरीर का कुछ ध्यान नहीं रखेंगे (सिवाय पोषणार्थ साधारण निर्व्वाह के) और जहाँ

तक हो सके, वासनाओं के दाग से बेदाग रहेंगे। हमें यही चाहिए कि इन वासनाओं से दूर दूर भागते रहें और अपनी आत्मा को शुद्ध निष्कलंक रखने की चेष्टा करते हुए अपनी आयु बिता दें, जब तक कि अंत समय स्वयं परमात्मा हमे इस शरीर के बंधन से छुड़ाकर 'आत्मस्थ' न कर दें। फिर जब इस प्रकार से अपनी शुद्ध आत्मा को लेकर हम परलोक प्रयाण करेंगे तब संभव है कि हम उसी लोक में जायँगे जहाँ हमारी ही तरह शुद्ध आत्माओं का निवास है और हम सभों को परम शुद्ध तत्त्व का ज्ञान भी प्राप्त हो सकेगा और शायद वही तत्त्व 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' हो। क्योंकि अपवित्र तत्त्व कभी पवित्र या शुद्ध तत्त्व के पास नहीं फटक सकता। सो मेरे भाई शिबी और शिमी, मेरी सम्मति मे तो ज्ञान के सच्चे प्रेमियों की परिभाषा और आकांक्षा ऐसी ही होनी चाहिए। क्यों तुम क्या कहते हो?

शिमी—बहुत ठीक।

सुक०—अच्छा तो अब यदि यह बात सच है तो हमारी यह आशा दुराशा नहीं कि जिस महायात्रा के लिये मैं तैयार हुआ हूँ उसका अंतिम पड़ाव मेरे लिये बड़े सुख का स्थान होगा और जिन जिन चीजो की मैं यहाँ आकांक्षा करता रहा, वे सब मुझे वहाँ अनायास ही प्राप्त होंगी। यदि परिपूर्ण ज्ञान के प्राप्त करने की लालसा रही है, तो वही

पूर्ण शुद्ध ज्ञान उस लोक मे मुझे प्राप्त होगा। सो इसी लिये वड़े आनंद से आज मैं उस महाप्रस्थान के लिये तैयार वैठा हूँ और हरएक आदमी, जिसका मन शुद्ध हो गया है, अवश्य ही सहर्ष मृत्यु को आलिंगन करने के लिये तैयार रहेगा।

शिमी—निस्संदेह।

सुक०—मन या चित्त की शुद्धि किसे कहते हैं, यह तो तुम समझ ही गए होगे? चित्त की शुद्धि कोई विलक्षण पदार्थ नहीं है। ' इस जीवन में, जहाँ तक हो सके, जड़ शरीर से आत्मा को अलग समझते हुए और सदा ऐसी ही भावना करते हुए आयु बिताना; तात्पर्य यह कि आत्मस्थ रहने का अभ्यास करते रहना, '' इसी का नाम चित्त-शुद्धि है और इसी शुद्धि से आत्मा इस लोक और परलोक में बंधन से मुक्त हो सकती है।

शिमी—ठीक है।

सुक०—और मृत्यु भी कोई दूसरी चीज नहीं है। आत्मा का जड़ शरीर से छूट जाने (मुक्त हो जाने) ही का नाम मृत्यु है।

शिमी—वेशक ऐसा ही है।

सुक०—और सच्चे ज्ञानी लोग हमेशा आत्मा को शरीर से मुक्त करने की इच्छा रखते हैं। उनका सारा पढ़ना, लिखना, अध्ययन, अध्यापन सब इसी आत्मा को शरीर से

छुड़ाने, मुक्त करने, ही के लिये हुआ करता है। यह बात तुम मानते हो या नहीं ?

शिमी—मानता हूँ।

सुक०—जब जन्म भर मृत्यु की इच्छा रखते हुए सारी आयु मुर्दों की सी दशा में बीत गई, तो फिर जब सचमुच ही मृत्यु आन उपस्थित हुई, तब क्या उससे जी चुराना एक अनोखी बात नहीं है? क्यों क्या ऐसी बात हो सकती है?

शिमी—न होना ही संभव है।

सुक०—तो भाई मेरे, बात असल मे यह है कि सच्चे ज्ञानी सदा ही मृत्यु की आलोचना किया करते हैं, और सारे आदमियों की अपेक्षा मृत्यु से बहुत ही कम डरते हैं। अच्छा, एक दूसरे तरीके से भी इस विषय को विचार देखो। देखो ज्ञानी आदमी शरीर से शत्रुता रखते हैं और आत्मा ही को जी जान से चाहते हैं। तो फिर उनके लिये क्या यह बात निरे सिड़ीपन की नहीं होगी, कि जब इस शत्रु से पीछा छूटने का समय आवे तब प्रसन्न होने के बदले वे रोने बैठ जायँ ? एक तो शत्रु से छुटकारा मिला, दूसरे जिस ज्ञान की प्राप्ति के लिये जन्म भर प्रबल आकाक्षा थी, जब ऐसी जगह जा रहे हैं जहाँ वह अभिलाषा पूर्ण होने की संभावना है, तब वह समय आनंद मानने का है कि शोक का ? देखो कई लोग स्त्री पुत्र या अपने किसी प्रेमी की विरहयंत्रणा न

सह सकने के कारण इस शरीर के मोह को तोड़कर (इस इच्छा से कि परलोक में उन स्नेहियों से भेंट होगी) इसका नाश कर देते हैं, फिर जिसे ज्ञान-प्राप्ति की प्रबल आकांक्षा हो और परलोक में उसे पाने का निश्चय हो, तो क्या वह मरते समय शोक करेगा ? कदापि नहीं। उलटे खुशी से फूला न समायगा। इसी लिये मैंने कहा था, यदि इमीनस सच्चा ज्ञानी है तो वह कदापि मरने से दूर भागना नहीं चाहेगा; क्योंकि उसे पूरा निश्चय होगा कि केवल परलोक ही में जाकर उसे शुद्ध ज्ञान प्राप्त हो सकता है। फिर ऐसे आदमी के लिये मौत से डरना क्या संभव है ?

शिमी—नहीं।

सुक०—इससे क्या साफ प्रकट नहीं होता कि जिन्हें तुम मरते समय रोते-धोते और माथा पीटते देखते हो, वे कदापि सच्चे ज्ञान की आकांक्षा रखनेवाले नहीं हैं ? वे केवल जड़ पिंड के मोह में फँसे हुए हैं या धन दौलत और मान प्रतिष्ठा की चाहना रखनेवाले हैं।

शिमी—तुम्हारा कहना ठीक है।

सुक०—तो फिर यह भी सिद्ध हुआ कि सच्चा साहस ज्ञानियों ही मे होता है ?

शिमी—बेशक।

सुक०—ठीक है अच्छा अब संयम के बारे में क्या कहते हो ? 'संयम' किसे कहते हैं, यह तुम समझ ही गए होगे।

वही जिससे कुवासनाओं को दमन करके नियम के भीतर रखा जाता है। इस संयम का पालन भी क्या वे ही लोग ठीक ठीक नहीं करते हैं, जिन्हें शरीर की कुछ परवाह नहीं होती और जो ज्ञानचर्चा में मग्न रहते हैं ?

शिमी—बेशक, वे ही लोग यथार्थ संयमी हो सकते हैं।

सुक०—क्योंकि अन्य लोगो के साहस और संयम की ओर जब निगाह उठाओगे तो अजीब ही कैफियत नजर आयगी।

शिमी—सो कैसे ?

सुक०—वह भी बतलाता हूँ, कैसे। यह तो तुम जानते ही हो कि अन्य सारे मनुष्य मौत को अपने ऊपर आनेवाली सारी आफतों से सबसे भारी आफत समझते हैं।

शिमी—समझते ही हैं।

सुक०—और जब इनमे का कोई बहादुर आदमी मृत्यु को आलिंगन करता है तब क्या दूसरी और कोई भारी आफत से बचने के लिये ही करता है कि नहीं ?

शिमी—इसी लिये करता है।

सुक०—तब यह साबित हुआ कि और कोई नहीं, केवल ज्ञानी लोग ही डर के मारे, सच्चे साहसी होते हैं, क्योंकि उन्हें भय रहता है। तुम शायद मन में कह रहे होगे कि क्या ही विचित्र बात है, भला कोई आदमी भय या डर के मारे या कापुरुष होकर बहादुर क्योंकर कहला सकता है ?

शिमी—इस संदेह का होना उपयुक्त ही है।

सुक०—तो क्या मामूली संयमी लोगो की भी यही दशा नहीं है? इनके संयम का कारण क्या अन्य प्रकार का असंयम नहीं है? तुम कहोगे कि इस प्रकार की परस्पर विरुद्ध बातें नहीं हो सकतीं; पर विचारकर देखो तो यही साबित होगा कि इन लोगों के मूढ़तापूर्ण संयम की यही दशा है। ये लोग किसी प्रकार के सुख की लालसा रखते हैं। और यह मजा चला न जाय, इसलिये अन्य प्रकार के सुखो से संयम रखते हैं, क्योंकि एक मजे का भूत उन पर सवार रहता है*। असंयम को हम मजे (इंद्रिय-चरितार्थता) का दूसरा रूप कह सकते हैं। इसलिये वे किसी एक प्रकार के मजे को इसलिये वश मे रखना चाहते हैं कि वे दूसरे प्रकार के मजे के वश में हैं—उसके गुलाम हैं। खुलासा यह कि दूसरी इंद्रियों की गुलामी करने के लिये एक इंद्रिय को वश में रखते या उसका संयम करते हैं, पर असल मे वह संयम संयम तो है नहीं, असंयम ही है। इसी लिये मैंने कहा था कि 'असंयम द्वारा वे लोग संयमी बने बैठे हैं'।

शिमी—शायद ऐसा ही है।

---

* जैसे कि कोई ऐशो-इशरत करने के लिये सूमपना कर करके दौलत जोड़े या भोग विलास करने के लिये शरीर को पुष्ट करता रहे।

सुक०—पर भाई साहब, 'धर्म्म' कोई बाजारू सौदा नहीं है, जो इस तरह बेचा खरीदा जा सके। मजा देकर मजा लेना, पीड़ा देकर पीड़ा खरीदना या भय देकर भय लेना अथवा सिक्कों की तरह थोड़ा सा देकर बहुत लेना, "धर्म्म" इस प्रकार की खरीद बिक्री की चीज नहीं। धर्म्म खरीदने का तो बस एक ही सर्कारी सिक्का है और वह सिक्का 'ज्ञान' है। केवल ज्ञान ही द्वारा खरीदा गया साहस, संयम या न्याय असली माल है और फिर इसमे कोई हर्ज नही समझना चाहिए, यदि खुशी (मजा) या भय या अन्य ऐसी मनोवृत्तियाँ मौजूद रहें या न रहें; क्योंकि मेरा ऐसा ख्याल है कि जो 'धर्म्म' खुशी (मजा या भय) द्वारा खरीदा गया (अर्थात् किसी को खुश करने या भय से किया गया) है वह 'असली धर्म्म' नहीं हो सकता। जिस धर्म्म का ज्ञान से संबंध नहीं वह असली धर्म्म नहीं, धर्म्म की विडंबना मात्र है, क्योंकि ऐसे धर्म मे न तो स्वतंत्रता है, न तन्दुरुस्ती है और न सचाई है। सच्चा धर्म्म तो इन सब चीजों का शुद्ध स्वरूप है और संयम, न्याय, विवेक, साहस और सर्व्वोपरि ज्ञान ही इसे शुद्ध करनेवाले हैं। इसलिये बड़े लोग जो पौराणिक कथा कह गए हैं उसका कुछ न कुछ असली अर्थ जरूर है; उनकी पहेलियों का भावार्थ यही था कि जो कोई बिना ज्ञान के साधना का मार्ग

पहचानें या अपवित्र होकर परलोक को जायँगे, वे लहू पीब भरे नरक में गोते खायँगे और जो ज्ञान का पंथा पहचानकर शुद्ध-आत्मा होकर जायँगे वे स्वर्ग मे देव-ताओं के संग विहार करेंगे; क्योंकि यों आँख बंद करके माला गटकनेवाले हैं बहुतेरे, पर सच्चे भक्त दुर्लभ हैं। सच्चे भक्त ज्ञानी ही हो सकते हैं और मैंने अपने जीवन भर ऐसा होने के लिये कोई बात उठा नहीं रखी। मेरा यह परिश्रम ठीक मार्ग पर हुआ है या नहीं और मुझे इस पुरुषार्थ में कहाँ तक सफलता हुई है, इस का पता तो परमात्मा की मर्जी हुई तो मुझे थोड़ी ही देर मे लग जायगा, जब कि मैं परलोक का प्रयाण कर जाऊँगा।

मेरे भाई शिवी और शिमी, अपने बचाव के लिये मुझे जो कुछ कहना था कह चुका, और जहाँ तक बन पड़ा तुम्हें समझा दिया कि यहाँ अपने स्वामियों को छोड़कर जाने और मृत्यु से न घबराने का कारण क्या है, और मुझे विश्वास भी है कि यहाँ की अपेक्षा परलोक में मुझे और भी अच्छे स्वामी और दोस्त मिलेंगे, चाहे लोगों को इस बात पर विश्वास न हो। खैर, तो एथेंसवासियों के सामने मैंने जो सफाई का बयान दिया था उससे यदि इस दफे का बयान अधिक सफलतापूर्वक हुआ हो तो मेरे अहोभाग्य हैं।

जब गुरुजी यों कह चुके तब शिवी बोला—"हाँ, सुकरात महाशय तुम्हारा कहना बहुत अंशों में ठीक है, पर आत्मा के बारे में तुमने जो कुछ कहा है, उसमें लोगों को बहुत कुछ संदेह है। लोगों को ऐसा खटका है कि ज्योंही आत्मा ने शरीर को छोड़ा, सब समाप्त हो जायगा। शरीर के साथ ही साथ उसी घड़ी आत्मा का भी नाश हो जायगा, कहाँ धूएँ की तरह अथवा वायु की तरह वह आकाश मे मिल जायगी कुछ पता नहीं रहेगा। पाँचों भूत सब अपने आप में मिल जायँगे। हवा रूपी प्राण या आत्मा भी हवा में मिल जायगी फिर कौन स्वर्ग भोगेगा और किसे नरक मे जाना पड़ेगा? यह सब भय या आशा तो तब सच मानें यदि मरने के बाद आत्मा के रहने का कोई प्रमाण हो। अब यह सिद्ध करना भी जरा टेढ़ो खीर है कि मरने के बाद स्वतंत्र आत्मा का अस्तित्व रहता है—और वह अपने स्वाभाविक ज्ञान और बल के साथ रहती है।

सुक०—अच्छा भाई शिवी! तो अब तुम्हारा क्या इरादा है? क्या इस दूसरे विषय पर भी बातचीत करने की इच्छा है?

शिवी—और की तो मैं नही चलाता, पर हाँ यदि आप कहना मुनासिब समझें तो मैं तो इस विषय में आपकी राय सुनने के लिये खुशी से तैयार हूँ।

सुक०—मुनासिब क्यों न समझूँगा ? क्या इतनी बातें जो हो गईं, कोरी बकवाद थीं ! कोई भाड़ भड़ुआ भले ही ऐसा कह सकता है। समझदार तो कभी ऐसा कहेगा नहीं। अच्छा, जो तुम्हारी मरजी है तब लो इस विषय को भी आरंभ कर दो।

परलोक मे मृत्यु के बाद मनुष्यों की आत्मा का अस्तित्व रहता है या नहीं, इस विषय का आओ यों विचारे। यह तो तुम्हें भी मालूम है कि सदा से ऐसा एक विश्वास चला आता है कि इस संसार को छोड़कर आत्मा परलोक में चली जाती है और फिर वही आत्मा पुनर्जन्म धारण करती है अर्थात् एक से निकलकर दूसरे शरीर मे प्रवेश करती है। तात्पर्य्य यह कि मुर्दें से जिदा पैदा होते हैं क्योंकि यदि कोई मुर्दा न हो- न मरे—तो फिर कोई जिंदा भी क्योंकर पैदा हो ? यदि यह बात सच है, कि जिदे मुर्दे से पैदा होते हैं, तो परलोक मे अवश्य हमारी आत्मा का अस्तित्व रहता है; नहीं तो वहाँ से आकर पुनः शरीर धारण क्योंकर और कौन करता ? यदि हम यह साबित कर सकें कि जिंदे मुर्दे से पैदा होते हैं या जीवन मरण से पैदा होता है तो आत्मा के परलोक मे अस्तित्व होने का साफ प्रमाण मौजूद है। यदि उक्त बात को साबित न कर सकें तो फिर परलोक मे आत्मा के अस्तित्व के बारे में दूसरे प्रमाणों की खोज करेगे।

शिवी—हाँ, यह है तो ठीक।

सुक०—अच्छा तो अब इस प्रश्न को सुलझाने का सबसे सहज उपाय यह है, कि इस बात को हम केवल मनुष्यों ही पर नहीं, वरन् पशु, पक्षी, कृमि, पतंग, पेड़, पल्लव, घास, तृण सभी पर घटाकर देखें। जो कोई चीज भी उत्पन्न होती और नाश होती है सभी पर इस प्रश्न को लगा देने से मामला और भी साफ हो जायगा। अच्छा तो क्या यह बात ठीक है कि हर एक पदार्थ अपने उलटे गुणवाले पदार्थों से उत्पन्न होता है? उलटे गुणवाले कैसे, सो कहता हूँ सुनो। जैसे कि श्रेष्ठ और निकृष्ट, न्याय अन्याय, अच्छा बुरा, ये सब परस्पर एक दूसरे के विरोधी गुण-वाले हैं कि नहीं?

शिवी—हैं।

सुक०—अच्छा तो अब हमें यही सोचना है कि कोई पदार्थ, जिसका कि ठीक दूसरा विरोधी गुण भी है, स्वयं उसी विरोधी गुण से उत्पन्न होता है या नहीं? जैसे कि जब कोई चीज बड़ी हो जाती है तब वह छोटे ही से न बड़ी होती है? पहले छोटी थी, फिर बड़ी हो गई।

शिवी—ठीक।

सुक०—वैसे ही कोई चीज जब छोटी होती है तब वह पहले बड़ी थी, फिर छोटी हो गई।

शिवी—बहुत ठीक।

सुक०—वैसे ही निर्बल से सबल होता है, सबल से निर्बल होता है, सुस्त से तेज और तेज से सुस्त होता है। क्यों होता है कि नहीं ?

शिवी—निःसंदेह होता है।

सुक०—वैसे ही श्रेष्ठ से निकृष्ट और न्याय से अन्याय होता है ?

शिवी—होता है।

सुक०—तो इन बातों से क्या साफ साबित नहीं हो रहा है कि हर एक चीज अपने विरोधी गुणवाले पदार्थ ही से जन्मती है ? अथवा उसका अंकुर अपने विरोधी गुणवाले में ही रहता है। भले से बुरा और बुरे से भला, क्या ऐसा हम होते नहीं देखते ? बड़े से छोटा, छोटे से बड़ा। जब एक घटता है और बिलकुल घट जाता है तब दूसरा उसका विरोधी बढ़ने लगता है। जब वह विरोधी गुण-वाला फिर घटा तब पहलेवाला बढ़ने लगता है। क्यों, यही चक्र चल रहा है या नहीं ?

शिवी—चल ही रहा है।

सुक०—चीजें मिलती हैं, फिर अलग होती हैं, गरम होती हैं फिर ठंढी होती हैं। सर्दी से गर्मी और गर्मी से सर्दी; क्या रात दिन हम यही संसारचक्र की लीला नहीं देखते हैं और तब भी क्या कहने में हिचक सकते हैं कि पदार्थ अपनी उलटी तरफ ही से बारबार जन्मते हैं ? अर्थात् अपने

विरुद्ध गुण से ही पुनः अपना पहला गुण प्रगट करने लगते हैं। क्या यह अनंत चक्र सदा से नहीं चल रहा है?

शिवी—हाँ, चला तो आता है।

सुक०—अच्छा तो जैसे जागने का विरोधी सोना है वैसे ही जीवन का विरोधी भी कोई पदार्थ है?

शिवी—है ही।

सुक०—वह क्या है?

शिवी—यही मृत्यु।

सुक०—ठीक, तब यदि जीवन और मरण दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं तो दोनों एक दूसरे से पैदा होते हैं। जीवन, मरण ये दो पदार्थ हैं और इन दोनों के बीच दो उत्पत्तियाँ मौजूद हैं। जीना, मरना और फिर जन्मना और मरना। अथवा मरना और जन्मना और फिर मरना और जन्मना। क्यों है कि नहीं?

शिवी—है ही।

सुक०—ठीक, पर इस विषय को और भी साफ करने की जरूरत है। निद्रा, जागरण का उलटा है। है कि नहीं?

शिवी—है।

सुक०—निद्रा ही से जागरण उत्पन्न होता है या नहीं और जागरण से निद्रा आती है या नहीं? इनके पहले जन्म में तो निद्रा से जागरण उत्पन्न हुआ, फिर दूसरे जन्म में जागरण से निद्रा जन्मती है। क्यों स्पष्ट है या नहीं?

शिवी—स्पष्ट है।

सुक०—अच्छा तो अब जीवन और मरण के बारे में बतलाते हैं कि वे क्या हैं। मृत्यु क्या जीवन का उलटा नहीं है?

शिवी—है।

सुक०—और ये आपस में एक दूसरे से पैदा होते हैं।

शिवी—निस्संदेह।

सुक०—तब जिंदे से क्या पैदा होता है? (जिंदे का परिणाम क्या है?)

शिवी—मुर्दा।

सुक०—और मुर्दे से? (मुर्दे का परिणाम?) *

शिवी—जिंदा।

सुक०—तब यह बात सिद्ध हुई कि तमाम जिंदा चीजें और जिंदे आदमी मुर्दे से जन्मे हैं।

शिवी—निस्संदेह।

सुक०—तो अब इसमें क्या कोई संदेह रह गया कि हमारी आत्मा का अस्तित्व परलोक मे था?

शिवी—अभी मेरा बिलकुल संतोष नहीं हुआ है।

सुक०—अच्छा, और भी स्पष्ट किए देता हूँ। अच्छा मौत से जिंदगी न हो, मुर्दे से जिंदा पैदा न होते हों, इसमे यदि कुछ संदेह हो भी तो क्या इसमे भी कोई संदेह है

---

* मुर्दे मे कीड़े पड़ते तो सबो ने देखे होंगे। फिर मुर्दे से जिंदा पैदा होने का प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद है या नहीं?

कि जो पैदा हुआ वह मरेगा अवश्य ? क्यों इसमे कोई संदेह है ?

शिवी—कदापि नहीं ।

सुक०—अच्छा तो जब सब चीजों का एक न एक उलटा गुण है, सब ही अवस्थाएँ अपनी एक विरोधी अवस्था को रखती हैं तो मृत्यु के विषय मे इस बात का अपवाद क्यों ? क्या मृत्यु की विरोधी कोई अवस्था आती ही नहीं ? इसी के संबंध मे प्रकृति के ब्रह्मांडव्यापी नियम में अपवाद होने का कारण क्या ?

शिवी—कोई नहीं ।

सुक०—क्या मृत्यु से पैदा होनेवाला कोई विरोधी फल नहीं है ?

शिवी—होना तो अवश्य चाहिए ।

सुक०—क्या होना चाहिए ?

शिवी—यदि कुछ होना चाहिए तो वह 'पुनर्जन्म' ही है ।

सुक०—यदि पुनर्जन्म हुआ तो क्या यही नहीं कहा जा सकता कि वही मरा हुआ फिर जन्मा है ?

शिवी—पुनर्जन्म का अर्थ ही यह है ।

सुक०—तब हम लोगो में कोई मतभेद नहीं रहा । जिंदे मुर्दे से पैदा होते हैं और मुर्दे जिंदे से, यह बात निर्विवाद सिद्ध है । अच्छा तो अब हम यह बात भी स्वीकार कर चुके हैं कि यदि हमारी पहली बात सिद्ध हुई तो यही इस बात का भी यथेष्ट प्रमाण है कि मृत पुरुषों की आत्मा पहले कहीं अवश्य थी, जहाँ से आकर वह जन्म लेती है ।

शिवी—हाँ, यह तो अवश्य ही सिद्ध है।

सुक०—ठीक, खैर तो अब इस निश्चय में कोई मीन-मेख तो नहीं ?

शिवी—नहीं।

सुक०—और भी एक बात सुनो। वह यह है कि एक विरोधी अवस्था अपनी दूसरी विरोधी अवस्था से पैदा न होती और ब्रह्मांड-चक्र यों ही घूमता न रहकर सीधा एक ही लाईन में चला जाता, उलट फेर न चलता होता, तो हर एक चीज अंत को एक ही अवस्था को प्राप्त हो जाती और फिर सृष्टि का चलना असंभव हो जाता।

शिवी—सो कैसे ?

सुक०—अच्छा, उदाहरण लो। यदि एक विरोधी अवस्था निद्रा को प्राप्त हो और उसकी दूसरी विरोधी अवस्था जागरण का कहीं अस्तित्व न हो तो परिणाम क्या होगा? एक बार ही सदा सर्वदा के लिये, अनंत काल के लिये, निद्रा ही निद्रा हो जायगी या नहीं? और हर एक चीज एक दफे मिलकर फिर कभी अलग न हो तो फिर आपस में मिलनेवाली दो चीजें सृष्टि में बाकी काहे को रहने लगीं? एक न एक दिन मिलने और अलग होने के नियम का अंत हो जायगा। वैसे ही हर एक जिंदा चीज केवल मरती ही चली जाय (अनंत काल से) और कभी पैदा न हो तो क्या एक समय ऐसा नहीं आवेगा

जब सृष्टि मे जन्म असंभव हो जायगा ? सब महाश्मशान में परिणत होकर कब का समाप्त हो गया होता ! तुम यदि यह कहो कि जिंदे मुर्दे से पैदा न होकर और कहीं से पैदा हुए हैं और मरते रहेंगे, तब भी उस अवश्यं-भावी परिणाम से छुटकारा नहीं। अर्थात् कुछ दिनों में मृत्यु सबको ग्रास कर जायगी।

शिवी—हाँ, आपका कहना यथार्थ मालूम होता है।

सुक०—निस्संदेह, ऐसा ही है। इस समय जो सिद्धांत ठहराया गया है वह गलत नहीं है। आदमी मरकर पुनः अवश्य जन्म ग्रहण करता है और उसी मुर्दे से जीवन का संबंध है और मृत व्यक्ति की आत्मा अमर है; इसके सिवाय भले आदमी की आत्मा सुखी और बुरों की आत्मा दुखी रहती है।

शिवी—ठीक है, और भी मुझे एक बात मालूम पड़ती है। वह यह है कि आप जो इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया करते हैं कि हमारे यावत् ज्ञान पूर्वजन्म से सिलसिलेवार चले आते हैं तो इस समय हमें जो बातें शीघ्र ही ध्यान में आ जाती हैं, उन्हें अवश्य हमने किसी पूर्वजन्म मे सीखा होगा। और यदि आत्माएँ पूर्वजन्म मे न रहती होंगी तो इस ज्ञान को फिर स्मरण ही कौन कर सकता ? अस्तु, इस बात का यह दूसरा प्रमाण है कि आत्मा अमर है।

"आत्मा अमर है, तुमने कह तो दिया" बीच ही में शिमी ने रोका "पर इसका तुम्हारे पास कुछ प्रमाण भी है? क्या क्या प्रमाण हैं, फिर से साफ साफ कह जाओ। मैंने अभी तक ठीक ठीक समझा नहीं।"

शिवी—किसी मनुष्य से यदि सीधी तरह से प्रश्न करोगे तो जवाब भी सही सही पाओगे। इस युक्ति को तो कोई काट सकता ही नहीं। पर एक बात है, यदि उत्तर-दाता यथार्थ ज्ञानी और युक्ति का जाननेवाला न हुआ तो वह समझा नही सकेगा। हाँ, एक बात और है। प्रश्न-कर्ता यदि यों न समझे तो रेखागणित के रेखांकन* द्वारा उसका संतोष किया जा सकता है।

सुक०—अच्छा जाने दो। इस तरह से तुम्हारा संतोष न होता हो, तो लो दूसरे उपाय से इसे समझाने की कोशिश करता हूँ। मैंने जहाँ तक समझा है, तुम्हें इस बात मे संदेह है कि 'ज्ञान' पूर्वजन्म की स्मृति क्योंकर हो सकता है?

शिमी—नहीं, संदेह तो कुछ ऐसा नहीं है, पर मैं एक बार दुबारा इस विषय की युक्तियाँ ध्यान पर चढ़ा लेना चाहता हूँ। शिवी ने जो दो चार बातें कहीं उन्हीं से मुझे

* सुकरात ने एक बार एक अपढ़ ग़ुलाम को रेखागणित की रेखाएँ खींच खींचकर पुनर्जन्म और आत्मा के अमरत्व का विषय समझाया था, उसी का हवाला यहाँ शिवी देता है।

आपकी कही हुई पुरानी बातें ध्यान में आ गई हैं और संतोष भी हो गया है। पर आपके मुँह से इसकी युक्ति सुनने की बड़ी लालसा है।

सुक०—अच्छा तो अब आरंभ कर दो। अच्छा इस बात में तो कोई संदेह है ही नहीं कि हमे जो कुछ ज्ञान याद आता है, वह याद आने से पहले हमने कभी सीखा जरूर था। जब किसी बात को देख या सुनकर या और किसी इंद्रिय से अनुभव कर आदमी कहता है कि "हाँ यह अमुक वस्तु है" तब इससे मतलब यही निकला कि उस चीज को उसने पहले कभी देखा या सुना था और उसे देखने सुनने की छाप या स्मृति उसके मन में रहती है, उसे ही पुनः देखने पर वह छाप याद आ जाती है और तब वह सहसा कह उठता है "हाँ यह तो अमुक वस्तु है"। इसके सिवाय किसी अन्य वस्तु को देखकर भी अन्य वस्तुएँ याद आ जाया करती हैं।

शिमी—सो कैसे? यह आखिरी बात मैं नहीं समझा।

सुक०—देखो, मैं खुलासा किए देता हूँ। अच्छा, एक मनुष्य के संबंध का ज्ञान और वीणा बजाने के संबंध का ज्ञान दोनों अलग अलग दो चीजें हैं न?

शिमी—निस्संदेह।

सुक०—अच्छा अब यदि किसी वीणा बजानेवाले उस्ताद के हाथ की वीणा उसके शागिर्द देख लें तो कहते हैं कि

"यह उस्ताद की वीणा है"। वीणा को देखकर उन्हें अपने उस्ताद की याद आ जाती है। इसी का नाम 'पूर्वस्मृति' है। जैसे कि तुम दोनों शिमी और शिवी हमेशा एक संग रहते हो, सो यदि तुममे से एक को कोई कहीं अकेला देखेगा तो जरूर पूछेगा कि दूसरा कहाँ है। एक को देखकर दूसरे की याद आई या नहीं? इस प्रकार की स्मृति के सैकड़ों दृष्टांत दिए जा सकते हैं।

शिमी—हाँ, सो तो ठीक है।

सुक०—यही 'पूर्वस्मृति' है। यदि समय पाकर कोई आदमी किसी आदमी को भूल जाता है तो उसकी कोई चीज या प्रतिकृति देखकर उसे उसकी याद आ जाती है।

शिमी—किस तरह?

सुक०—यदि तुम्हारे घोड़े की तस्वीर देखकर कुछ दिनों बाद तुम्हारी याद आ जाय, या तुम्हारी तस्वीर देखकर शिवी की याद आवे, तो कोई आश्चर्य की बात तो है नहीं; और यह संभव भी है।

शिमी—बेशक।

सुक०—तो मतलब यह निकला कि 'पूर्वस्मृति' सदृश्य और विसदृश्य दोनों प्रकार की चीजों से होती है।

शिमी—होती है।

सुक०—अच्छा, जब सदृश पदार्थ को देखकर किसी को वैसी ही चीज की याद आती है, तब साथ ही क्या यह भी

विचार उत्पन्न नहीं होता कि "यह चीज उसी के ऐसी है या उससे कुछ भिन्न है," ठीक ठीक वैसी ही है या नहीं? इस प्रकार का संदेह भी कभी कभी होता है या नहीं ?

शिमी—होता है।

सुक०—अच्छा, तो अब यदि यह बात ठीक है, तो देखो हम लोग 'समानता की स्थिति' को भी मानते हैं या नही ? समान चीज से तात्पर्य्य लकड़ी के टुकड़े या पत्थर के ढोको से नहीं है, समानता से मतलब समानता की सत्ता अर्थात् उसके अमूर्त भाव से है। क्यों, सारी सत्ताओं की तरह समानता की सत्ता या 'बराबर की सत्ता' भी कोई पदार्थ है या नही ?

शिमी—बेशक है।

सुक०—अच्छा तो तुम इस 'समानता की सत्ता' के अस्तित्व मे विश्वास करते हो या नहीं ?

शिमी—अवश्य करता हूँ।

सुक०—यह विश्वास या इसका ज्ञान तुमने कहाँ से सीखा ? समान चीजों ही को देखकर सीखा है या नहीं ? लकड़ी, पत्थर तथा अन्य वस्तुओं ही को देखकर न तुमने 'बराबरी की सत्ता' का ज्ञान प्राप्त किया है या और किसी तरह से ?

शिमी—इसी प्रकार से।

सुक०—अच्छा तो इसी से 'बराबरी की सत्ता' का ज्ञान हमें प्राप्त हुआ और यह 'बराबरी की सत्ता' उन बराबरवाली चीजों से एक अलग पदार्थ है या नहीं ?

शिमी—मैं ठीक समझा नहीं।

सुक०—अच्छा और खुलासा किए देता हूँ। कभी कभी किसी कारण से समान नापवाले पदार्थ (लकड़ी पत्थर इत्यादि) कभी छोटे या कभी बड़े दिखाई देने लगते हैं या नहीं, पर रहते हैं वे सदा वैसे ही *।

शिमी—निस्संदेह।

सुक०—पर 'बराबर की सत्ता' जो पदार्थ है वह क्या कभी छोटा या बड़ा, समान या असमान दिखाई देता है या समझ मे आता है ?

शिमी—नहीं, कभी नहीं।

सुक०—तो इससे क्या यह साबित नहीं हुआ कि 'समान चीजें' और 'समान सत्ता' दोनो एक चीज नहीं हैं, भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं ?

शिमी—ठीक साबित हुआ।

सुक०—पर मजा यह है कि तुम्हे इस 'समान सत्ता' का ज्ञान 'समान या बराबरीवाली चीजों ही' को देखकर हुआ है और फिर भी वह 'समान सत्ता' इन चीजों से एक अलग पदार्थ है।

शिमी—बहुत ठीक।

---

* जैसे कि परछाहीं मे एक छड़ी लंबी या सिकुड़ी हुई दिखाई देती है, पर रहती है वैसी ही जैसी वास्तव मे थी।

सुक०—और यह भी चीजों ही के नाप जोख को देखकर हुआ है कि ये चीजें आपस मे समान हैं या असमान।

शिमी—निस्संदेह।

सुक०—खैर तो इसका कुछ ऐसा भेद नहीं है। जब तक एक चीज को देखकर दूसरी चोज याद आती रहे हमें पूर्वस्मृति मानना पड़ेगा, चाहे वे दोनों चीजें एक सी हों या न हों।

शिमी—ठीक।

सुक०—अच्छा तो जिन समान या बराबरवाली चीजों का हम अभी जिक्र कर रहे थे वे क्या 'बराबरी की सत्ता' का भाव रखती हैं? क्यों 'बराबर की सत्ता' और 'बराबर की चीजें' दोनों मे बढकर कौन है?

शिमी—'बराबर की सत्ता', क्योंकि वह एक ऐसा अपूर्व भाव है, जो चीजो की तरह बराबर रहकर भी कभो अस्त-व्यस्त नहीं दिखाई देता।

सुक०—अच्छा तो इस विषय में हमारे तुम्हारे कोई मतभेद नहीं रहा। एक आदमी किसी चीज को देखते ही सोचने लगता है 'हाँ, यह चीज जो मैं देख रहा हूँ, करीब करीब उस चीज की तरह है, पर ठीक वैसी नही है। उससे कुछ घटकर है, वह चीज यह नहीं हो सकती उससे हेय है, घटिया है।' जब एक आदमी यह कहता है तब इससे यही तात्पर्य निकला कि जिस चोज से वह उक्त

चीज को घटिया ठहरा रहा है उस बढ़िया चीज को उसने पहले कभी जरूर देखा होगा जिससे मिलान करके वह कहता है कि 'हाँ, यह चीज है तो उसी के ऐसी पर यह वह चीज नहीं हो सकती, उससे घटिया है'।

शिमी—ठीक।

सुक०—अच्छा तो 'समान चीज' और 'समान सत्ता' के विषय मे भी क्या हमारे चित्त में वैसे ही भाव नहीं उठते?

शिमी—उठते हैं।

सुक०—तो तात्पर्य यह निकला कि 'समान' चीजों को देखने के पहले हमे 'समान सत्ता' का ज्ञान अवश्य था, पर समान चीजों को देखकर हमें यह भी अनुभव हुआ कि ये समान चीजें 'समानता' या 'समान सत्ता' जो पदार्थ है उसके ऐसी होने की चेष्टा करती हैं पर उस (सत्ता) की बराबरी नहीं कर सकतीं।

शिमी—निस्संदेह।

सुक०—अच्छा तो हम यह भी बात मानते हैं कि समानता का ज्ञान हमे इंद्रियों ही द्वारा हुआ है, और किसी प्रकार से नहीं।

शिमी—हाँ, इस समय के तर्क के लिये ऐसा मानना ही पड़ेगा।

सुक०—चाहे जो हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि सारी चीजें, जिनका हमे ज्ञान होता है, 'समान सत्ता' के ऐसी होना चाहती हैं पर हो नहीं सकती, क्योंकि उससे उतरकर हैं, घटिया हैं।

शिमी—निस्संदेह ।

सुक०—तो इससे यह साफ प्रगट हो रहा है कि इंद्रियों से ज्ञान प्राप्त होने के पहले, हमें 'समानता' या 'समान सत्ता' का ज्ञान जरूर था, नहीं तो हम फिर दो समान चीजो को देखते ही कैसे समझ जाते हैं कि ये दोनों चीजें समान हैं और 'समान सत्ता' के निकट पहुँचने की चेष्टा करती हुई भी उससे नीचे हैं, उतर कर हैं।

शिमी—ठीक ।

सुक०—अच्छा तो इंद्रियाँ हमे जन्म ग्रहण करते ही साथ ही साथ प्राप्त होती हैं।

शिमी—निस्संदेह ।

सुक०—और इस 'समान सत्ता' का ज्ञान हमें इन इंद्रियों के प्राप्त होने के पहले से है, यह मानना पड़ेगा ।

शिमी—अब तो मानना ही पड़ा।

सुक०—तो अब स्पष्ट हो गया कि जन्म ग्रहण करने के पहले से हमें यह ज्ञान है।

शिमी—निस्संदेह ।

सुक०—अच्छा तो अब यदि यह ज्ञान हमे जन्म ग्रहण करने के पहले प्राप्त हुआ था और इस ज्ञान को लिए हुए हम जन्मे तो जन्मते समय और इससे पहले भी हमें समान असमान, बड़े छोटे, इन सारी सत्ताओं का ज्ञान अवश्य था। हम केवल समानता ही के विषय में नहीं कहते।

क्या 'समानता की सत्ता', क्या 'सौंदर्य्य की सत्ता', क्या 'श्रेष्ठता की सत्ता', क्या 'न्याय या पवित्रता की सत्ता', सब के विषय में यही बात कही जा सकती है। तात्पर्य यह कि हमने अब तक जितनी चीजों का वर्णन किया है सब की 'वास्तविक सत्ता' इसी कोटि में आ जाती है। थोड़े में यह कह सकते हैं कि इन सारी 'वास्तविक सत्ताओं' का ज्ञान हमें जन्म ग्रहण करने से पहले प्राप्त था।

शिमी—ठीक!

सुक०—तब परिणाम यह निकला कि हम सदा इस पूर्व-स्मृति को संग लिए हुए जन्मते हैं और यदि स्मृति की छाप के मिलते ही उसे भूल नहीं जाते तो यह भी स्पष्ट है कि जन्म भर यह स्मृति हमें याद रहती है, क्योंकि स्मृति का अर्थ यही है कि मिले हुए ज्ञान को याद रखना—भूल न जाना—भूल जाने से तात्पर्य तो ज्ञान नष्ट होने ही से है या और कुछ?

शिमी—नहीं, ज्ञान नष्ट हो जाने ही को भूल जाना कहते हैं।

सुक०—अच्छा, यदि यह बात मान भी ली जाय कि जन्म ग्रहण करने पर हमे पहले का ज्ञान भूल जाता है और जन्म ग्रहण करके फिर इंद्रियों को काम मे लाकर हमें वह ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो इससे भी तात्पर्य यही निकला कि हम पहले ही के सीखे हुए पाठ को पुनः स्मरण करते हैं। हम जो विद्या प्राप्त करते हैं वह हमारी

पूर्वजन्मार्जित है, अथवा यों कहो कि हमको अपनी ही पुरानी विद्या याद आ गई है।

शिमी—निस्संदेह !

सुक०—क्योंकि हम देख चुके हैं कि देखकर या सुनकर या और किसी इंद्रियद्वारा जब हमें किसी भूली हुई ऐसी चीज की याद आ जाती है जिसका कुछ संबंध दिखनेवाली चीज से होता है तब हम दो में एक बात तो जरूर सच मानेंगे—या तो हम इस ज्ञान को लिए हुए जन्म ग्रहण करते हैं और जन्म भर यह ज्ञान हमें बना रहता है, या जन्म ग्रहण करने के बाद हम जिसे विद्या सीखना कहते हैं वह केवल पूर्वस्मृति अर्थात् पहले सबक को याद करना है।

शिमी—आपका कहना बहुत ठीक है।

सुक०—अच्छा तो दोनों मे तुम किसे ठीक समझते हो? हम पूर्वस्मृति को संग लिए हुए जन्म ग्रहण करते हैं या यहाँ आकर पूर्वजन्म की भूली हुई बात हमे पुनः याद आती है, और इसी का नाम विद्या प्राप्त करना है? कौन सी बात तुम्हें ठीक जँचती है?

शिमी—इस समय तो मैं ठीक ठीक नही कह सकता।

सुक०—अच्छा जाने दो। इस दूसरी बात पर अपनी राय दो। अच्छा जिस बात को आदमी जानता है, उसका पूरा पूरा सटीक वर्णन कर सकता है या नहीं? क्यों, इस बारे में क्या कहते हो?

शिमी—बेशक, वर्णन कर सकता है।

सुक०—अच्छा तो जिन विषयों पर हम बातचीत कर रहे हैं, उन विषयों को क्या चाहे जो कोई यथातथा ठीक ठीक वर्णन कर सकता है?

शिमी—क्या कहें भाई साहब! परमात्मा करे हम ऐसे होते, पर बात असल में यह है कि कल इस समय तक कोई भी एक ऐसा प्राणी ज़िंदा नहीं मिलेगा जो यथातथा जैसा चाहिए इन बातों का वर्णन कर सके *।

सुक०—तो तुम्हारी राय में हरएक आदमी इन बातों को नहीं जानता?

शिमी—निस्संदेह।

सुक०—तो वे लोग केवल पहले सीखी हुई विद्या ही को याद करके उसे कह सकते हैं।

शिमी—बेशक।

सुक०—तो फिर उनकी आत्मा को उक्त ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ? जन्म ग्रहण करने के बाद हुआ, ऐसा तो कह नहीं सकते।

शिमी—नहीं।

सुक०—तो जन्म ग्रहण करने के पहले हुआ था।

शिमी—हाँ!

* तात्पर्य सुकरात से है।

सुक०—तो हम लोगों की आत्मा पहले थी और शरीर से पृथक् थी और मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट होने से पहले ज्ञानसंपन्न भी थी।

शिमी—हाँ बात तो ठीक है। यदि जन्म ग्रहण करने के बाद हम ज्ञान नहीं सीखते तो वह पहले का ज्ञान अब भी बना हुआ होगा।

सुक०—बना हुआ है ही। जाता कब है? अभी तय पा चुका है कि हमें जन्म ग्रहण करते ही यह ज्ञान याद आ जाता है। तो क्या एक ही समय में याद भी आता है और भूल भी जाता है? या कुछ समय का हेर फेर बतलाना चाहते हो?

शिमी—नहीं भाई मुझे अपनी नादानी आप मालूम हो गई, मेरा इस तरह की बात करना ही गलत है।

सुक०—खैर, तो हर प्रकार की सत्ता या असलियत के भाव हमारे मन में बने रहते हैं और इंद्रियों के सामने आने से वे भाव व्यक्त होते हैं। इससे यह सहज ही में माना जा सकता है कि आत्मा पर इन भावों की छाप शरीर धारण करने से पहले भी थी, क्योंकि इन सारी सत्ताओं की छाप या भाव हमारी आत्मा में न होता तो जन्म लेने पर वह प्रगट भी नहीं हो सकता था, यह बात पहले कही जा चुकी है। फिर तो हम यह भी कह सकते हैं कि यदि इन बातों की छाप या भाव जन्म लेने के पहले

आत्मा में विद्यमान नही मानोगे तो फिर आत्मा भी नहीं थी ऐसा मानना पड़ेगा। क्योंकि आत्मा के बिना यह भाव या छाप रहती ही कहाँ? पर यह भाव या सत्ता सदा से रहती है यह भी सिद्ध है। बिना आत्मा के किसके आधार पर रहती है?—यह प्रश्न खड़ा हो सकता है। या तो इन सत्ताओ की कल्पना रहती ही नही या रहती है तो आत्मा ही के आधार पर रहती है। दोनों को एक दूसरे का आसरा है। जब इन सत्ताओं की कल्पना नित्य है तब आत्मा भी नित्य सिद्ध हुई।

शिमी—वाह भाई सुकरात! क्या खूबी से तुमने आत्मा की नित्यता सिद्ध की है। सत्ताओं की नित्यता से आत्मा की नित्यता और आत्मा की नित्यता से सत्ताओ की नित्यता* कैसी खूबी से सिद्ध हुई है। यह बात मेरे दिल मे खूब जम गई है। पाप पुण्य, सुंदर निकृष्ट, भला बुरा इन सारी सत्ताओं का अस्तित्व नित्य है और ये सदा विद्यमान रहते हैं और आत्मा ही मे रहते हैं। इसलिये आत्मा नित्य अवश्य है। मेरा पूरा संतोष हो गया, मुझे और कोई प्रमाण नहीं चाहिए।

सुक०—खैर, तो अब शिवी क्या कहता है? उसका भी समाधान हुआ है या नहीं?

---

* सत्ताओ की नित्यता से तात्पर्य सत्ताओ के भाव, विचार या ज्ञान से है, जैसे धर्म्म की सत्ता का ज्ञान, पाप की सत्ता का ज्ञान, इत्यादि।

शिष्मी—मैं तो समझता हूँ कि उसको भी संतोष हो गया है। चाहे वह कैसा ही शक्की हो, पर तो भी आपके प्रमाण बहुत स्पष्ट, सरल और पुष्ट हैं और अब उसे भी अवश्य विश्वास हो गया होगा कि इस जन्म से पहले भी हमारी आत्मा विद्यमान थी।

शिवी—नहीं भाई मेरा ठीक संतोष नहीं हुआ है। माना कि तुमने यह सिद्ध कर दिया कि जन्म के पहले यह आत्मा विद्यमान थी, पर यह सिद्ध नहीं हुआ कि मरने के बाद भी इसका अस्तित्व रहेगा। आम लोगों को यही तो बड़ा भारी खटका है कि मरने के बाद आत्मा या प्राण-वायु वायु मे मिल जायगी और फिर कुछ रह नहीं जायगा। यदि थोड़ी देर के लिये यह भी मान ले कि अन्य तत्त्वों से आत्मा उत्पन्न हुई और उन तत्त्वों मे विद्यमान थी और शरीर में प्रविष्ट हुई; पर यह भी तो दिखता है कि शरीर के साथ ही बाहर निकलते ही उसका भी नाश हो जाता है। यह तो आधा प्रमाण दिया गया है कि जन्म लेने के पहले हमारी आत्मा मौजूद थी। अब यह प्रमाण पूरा तो तब हो जब यह भी सिद्ध कर दिया जाय कि मरने के बाद भी आत्मा रहेगी।

सुक०—अरे भाई शिवी, तुम इतनी जल्दी भूल गए। इसका प्रमाण भी दे चुका हूँ। पहले जो तय हो चुका है उसका और इस तर्क का जो तुम अभी कह रहे हो, मिलान

करो और "सारे प्राणधारी मृत्यु ही से पुनः जन्मते हैं" उस युक्ति को याद करो तो इसका साफ प्रमाण मिल जायगा। यदि आत्मा पहले किसी अवस्था मे थी और वह पुनः शरीर धारण करती और प्रगट होती है, तो इसके पहले वह एक प्रकार की मृत्यु की अवस्था मे थी और मृत्यु ही से फिर जीवन की अवस्था में आई तो क्या फिर मृत्यु के बाद किसी अवस्था मे नहीं रहेगी? न रहेगी तो पुनः जन्मेगी कहाँ से? सो ये बातें तो पहले कही जा चुकी हैं। पर मैं समझता हूँ कि शायद बच्चों की तरह तुम्हें इस बात का बड़ा डर है कि शरीर से आत्मा निकलते ही वायु से उड़कर न जाने कहाँ की कहाँ चली जायगी। शायद प्राण छोड़ते समय खूब जोर से आँधी चलती हो, तब तो फौरन ही आत्मा आँधी से उड़कर छिन्न भिन्न हो जायगी? शायद बंद हवा मे मरने से कहीं ठिकाना भी लगता। क्यों?

इस पर शिबी हँसता हुआ कहने लगा—अच्छा भाई सुकरात, थोड़ी देर के लिये यही मान लो कि हम डरते हैं तो हमारे भय को दूर कर दो। शायद हम लोग खुद नहीं डरते, हमारे अंदर एक डरपोक बच्चा है जो इसे हौवा समझकर डर रहा है, सो अब हमें यही चेष्टा करनी चाहिए जिसमें यह समझ बूझकर मौत से डरना छोड़ दे।

सुक०—हाँ, ठीक है। इस हौवे को भगाने का मंत्र नित्य पढ़ना होगा, जब तक कि यह भागकर लोप न हो जाय।

शिवी—क्या कहें, भाई सुकरात ! तुम तो अब हम लोगो से नाता तोड़कर चले जा रहे हो, सो तुम्हारे ऐसा इस मंत्र को पढ़ानेवाला दूसरा और कौन मिलेगा ?

सुक०—सो क्या ? क्या इस संसार मे नेक आदमी नापैद हैं? 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' खोजो, लाखों मूर्खों मे कोई एक ऐसा बुद्धिमान् भी मिल ही जायगा। जब द्रव्य खरचने और मेहनत करने पर कटिबद्ध हो जाओगे तब एक मंत्रोपदेशक का मिल जाना भी कोई आश्चर्य नहीं, पर भाई वास्तव में बात तो यह है कि वह मंत्रोपदेष्टा भी तुम्हारे ही अंदर है। खोजोगे तो उसे अपने अंदर ही पाओगे। "दिल के आयने मे है तस्वीर यार, यों जरा गरदन झुकाओ देख लो"।

शिवी—खैर, वह तो देखा जायगा। हमने अपनी बहस का सिलसिला जहाँ से छोड़ा है, वहीं से हमें अब फिर शुरू करना चाहिए।

सुक०—हाँ, मैं तैयार हूँ।

शिवी—और मैं भी।

सुक०—अच्छा तो हमने अंत में यह कहा था कि "आत्मा के छिन्न भिन्न होने, टूक टूक होकर वायु में उड़ जाने का भय है" तो अब यह देखना है कि ऐसी कौन कौन सी

चीजें संसार मे हैं जो छिन्न भिन्न हो सकती हैं। अब यदि आत्मा भी इन चीजों की श्रेणी में आ जाय तो वह भी छिन्न भिन्न होनेवाली मानी जायगी, यदि नहीं आई तो नहीं मानी जायगी।

शिवी—ठीक।

सुक०—अच्छा तो अब जरा विचार करो। देखो जो चीजे पहले मिली हुई होती हैं या कई पदार्थों से मिलकर बनती हैं उन्हीं के, समय पाकर, छिन्न भिन्न होने की आशंका या संभावना है और जिस क्रम से मिल मिलकर बनती हैं उसी क्रम से अलग अलग होकर लय को प्राप्त हो जाती हैं। जो चोजें बहुत सी चीजो से मिलकर नहीं बनतीं वे इस प्रकार से छिन्न भिन्न होकर लय भी नहीं हो सकतीं। क्यो यह बात ठीक है, या नहीं?

शिवी—बहुत ठीक।

सुक०—और भी देखो। जो चीजें किसी चीज से मिलकर नहीं बनी, उनकी पहिचान यही है कि वे सदा एकरस रहती हैं; अदलती बदलती नहीं। और जो चीजें बदलती रहती हैं, सदा एकसाँ नहीं रहतीं, उन्हे हम कह सकते हैं कि ये कई चीजों से मिलकर बनी हैं।

शिवी—हाँ, बात तो ऐसी ही है।

सुक०—अच्छा तो अब पहले की बात याद करो। अपनी बहस मे हमने जिस पदार्थ को 'स्वयं सत्ता' के नाम से

संबोधन किया था वह सदा एकरस रहती है या अदलती बदलती रहती है? 'समान सत्ता', 'सौंदर्य्य सत्ता' या अन्य भी सारी तरह की 'सत्ताएँ' क्या कभी बदलती हैं? या हर हालत में एकरस ज्यों की त्यों बनी रहती हैं?

शिवी—नहीं सदा एकरस बनी रहती हैं, यह तो पहले ही तय पा चुका है।

सुक०—अच्छा, अब जो ये सारे दृश्यमान पदार्थ, मनुष्य, हाथी, घोड़े, बाग, बगीचे, सुंदर स्त्रियाँ, सुगंधित पुष्प, भड़कीले वस्त्र, जिनसे एक न एक सत्ता का भाव प्रगट होता है, ये सब चीजें भी एकसाँ एकरस रहती हैं या अदल बदल हो जाती हैं? देखो, सुंदर स्त्री नहीं रहेगी पर "सौंदर्य्य" जो पदार्थ है उसका नाश तो कभी नहीं होगा। 'सौंदर्य्य की सत्ता' नित्य है। इससे यह साफ प्रगट हो रहा है कि ये दृश्यमान सारे जड़ पदार्थ कभी एकरस नहीं रहते। स्वयं भी नहीं रहते और इनका आपस का संबंध भी एकसाँ नहीं रहता।

शिवी—ठीक, बहुत ठीक।

सुक०—इन दृश्यमान चीजों को तुम हाथ से छू सकते हो, नाक से सूँघ सकते हो, आँख से देख सकते हो, तात्पर्य यह कि इंद्रियों द्वारा इनका ज्ञान प्राप्त कर सकते हो; पर नित्य वस्तु का क्या इन इंद्रियों द्वारा अनुभव कर सकते

हो ? जो वस्तु सदा एक सी रहती है, उसका ज्ञान क्या इंद्रियों द्वारा हो सकता है ?

शिवी—नहीं।

सुक०—किसलिये ?

शिवी—इसलिये कि एकरस रहनेवाली सत्ता का ज्ञान केवल बुद्धि में रहता है। वह दिखनेवाली चीज नहीं है जो इंद्रियों द्वारा उसका बोध हो सके। इंद्रियों द्वारा बोध तो साकार पदार्थों ही का होता है।

सुक०—बहुत ठीक समझे। अच्छा अब थोड़ी देर के लिये यह मान लो कि दो तरह की अवस्थाएँ हैं, एक साकार या दिखनेवाली और एक निराकार या अदृश्य।

शिवी—ठीक।

सुक०—साकार बदलती रहती है और निराकार एकरस रहती है, कभी बदलती नहीं।

शिवी—निस्संदेह।

सुक०—अच्छा तो हम मनुष्य, आत्मा और शरीर, दो वस्तुओं से बने हैं या नहीं ?

शिवी—बेशक, दोनों से बने हैं।

सुक०—अच्छा तो अब इनमें से शरीर किस प्रकार की अवस्था या पदार्थ से सादृश्य रखता है ?

शिवी—यह तो स्पष्ट है। शरीर साकार अर्थात् अदल बदल होनेवाली ही चीज के ऐसा है।

सुक०—और आत्मा ? यह दृश्य है या अदृश्य ?

शिवी—अदृश्य है। मनुष्यों की आँखों से अदृश्य है।

सुक०—दृश्य और अदृश्य से तो हमारा मतलब यही है न कि मनुष्यों की आँखों से जो दिखे या न दिखे, कि और कुछ ?

शिवी—नहीं, यही मतलब है।

सुक०—अच्छा तो अब फिर बतलाओ कि आत्मा दृश्य है या अदृश्य ?

शिवी—अदृश्य है।

सुक०—अच्छा तो शरीर साकार अर्थात् दृश्य और आत्मा निराकार अर्थात् अदृश्य ठहरी।

शिवी—बेशक।

सुक०—अच्छा अब याद करो। एक जगह कहा जा चुका है कि जब आत्मा शरीर के साथ मिलकर सत्य के अनुसंधान में तत्पर होती है अर्थात् जब आँख, नाक, कान, या अन्य किसी इंद्रिय द्वारा 'सत्य ज्ञान' की खोज करना चाहती है तब वह उन्हीं अनित्य वस्तुओं के प्रति खिँचकर चली जाती है अर्थात् उसकी बुद्धि इन्हीं नाशमान, सदा बदलनेवाली चीजों मे भ्रमण करने लगती है और एक मतवाले अंधे मनुष्य की तरह वह अँधेरे में मारी मारी फिरती है। उसका विवेक भ्रष्ट हो जाता है, क्योंकि

अनित्य वस्तुओं के संसर्ग का यही फल है* । पर जब वह स्वयं अपनी सत्ता में रहकर (आत्मस्थ होकर) इस खोज मे लगती है तब परिणाम में वह खिंचकर वैसे ही शुद्ध, निर्म्मल, नित्य और अविनाशी पदार्थ के पास जा पहुँचती है जिसके ऐसी उसकी शुद्ध-सत्ता (आत्मा) है, और तब वह अनंत काल के भ्रमण से छूटकर इसी शुद्ध-सत्ता की अवस्था में निवास करने लगती है, क्योंकि उसने अविनाशी का पीछा किया था और यह अवस्था—आत्मा की यही अवस्था—सत्य ज्ञान की अवस्था कही जा सकती है† ।

शिवी—निस्संदेह भाई सुकरात, तुम्हारा कहना बहुत ठीक है ।

सुक०—अच्छा तो तुमने पहले की और अब की बार की सारी युक्तियाँ तो सुनी हैं, अब यह तो बतलाओ कि 'आत्मा किस प्रकार की वस्तु से अधिक सादृश्य रखती है ?'

---

* इस सिद्धात को गीता में कृष्ण भगवान् ने खूब स्पष्ट कहा है । यथा—

" ध्यायतो विषयान् पुस. संगस्तेषूजायते ।
संगात्संजायते काम· कामात् क्रोधोभिजायते—॥
क्रोधात् भवति संमोह· संमोहात् स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥"

विषयों (इंद्रियों के अनित्य भोग्य पदार्थों) के ध्यान का परिणाम दिखाया है, बाकी का अर्थ स्पष्ट ही है ।

† "निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्"—गीता ।

शिवी—यह भी क्या अब खुलासा करना है ? इतने सिर खपाने के बाद तो एक निरा मूर्ख भी कह सकता है कि 'आत्मा नित्य और अविनाशी पदार्थों ही से सादृश्य रखती है, विनाशी और अनित्य से नहीं'।

सुक०—अच्छा, और शरीर ?

शिवी—शरीर विनाशी और अनित्य है।

सुक०—अब और एक तरह से समझाता हूँ। देखो, जब शरीर और आत्मा, दोनों का योग होता है तब वह इस प्रकार होता है कि प्रकृति माता एक को आज्ञाकारी दास और दूसरे को आज्ञा मे चलानेवाला स्वामी बनाकर प्रगट करती है। अच्छा, तो तुम क्या यह बात मानते हो कि दैवी या शुद्ध सत्ता स्वभाव ही से आज्ञा मे चलानेवाली और पार्थिव वस्तु निर्बल और आज्ञा में चलनेवाली या दास तुल्य रहती है ?

शिवी—हाँ मानता हूँ।

सुक०—अच्छा तो अब आत्मा कैसे पदार्थ से सादृश्य रखती है ?

शिवी—यह तो स्पष्ट ही है। आत्मा दैवी या शुद्ध सत्ता और शरीर पार्थिव अर्थात् अशुद्ध पदार्थ है।

सुक०—अच्छा तो अब सारे वाक्यांतर का तात्पर्य यह निकला कि आत्मा शुद्ध, दैवी*, नित्य, पूर्ण, अविनाशी,

* दिव्य गुण संपन्न (Divine)

अच्छिन्न, अमिश्रित और एकरस सनातन है, तथा शरीर विनाशी, अपूर्ण, मिश्रित और नित्य बदलनेवाला है। अब इसकी पुष्टि में क्या और भी किसी प्रमाण की आवश्यकता है ?

शिवी—नहीं।

सुक०—तो क्या इससे यह साफ सिद्ध नहीं हो रहा है कि शीघ्र छिन्न भिन्न होकर नाश हो जाना शरीर ही का स्वभाव है, आत्मा का कदापि नहीं ?

शिवी—निस्संदेह।

सुक०—अच्छा, एक बात और सुनो। जब कोई आदमी मर जाता है तब उसका दृश्यमान भाग अर्थात् शरीर जो दृश्य जगत् में पड़ा रहता है, और जिसे हम 'लाश' कहते हैं, जो गलने सड़नेवाली चीज है, वह एक बार ही एकाएक गल सड़ नहीं जाता। कुछ देर तक वह ज्यों का त्यों रहता है और यदि कोई आदमी भरपूर जवानी मे और नीरोग अवस्था मे एकाएक मर जाता है तो बहुत देर तक शरीर बिगड़ता नहीं। यदि प्राचीन मिश्र देश की रीति के अनुसार मसाला भरकर रखा जाय तो वह बहुत दिनों तक ताजा बना रहता है और यदि कभी गल सड़ जाता है तो उसका कुछ भाग तो, जैसे अस्थि इत्यादि, लगभग अविनाशी कहला सकता है। क्यों ठीक है कि नहीं ?

शिवी—ठीक।

सुक०—अच्छा जब नाशमान शरीर के कुछ भाग इतने दिनों तक बने रहते हैं तब क्या वह आत्मा जो अदृश्य है, जो अपने ऐसे शुद्ध, निर्मल, अदृश्य, आनंदधाम को प्रयाण करती है, जो परम पवित्र अनंत ज्ञानी परमात्मा के समीप जाती है जहाँ यदि भगवान् की मरजी हुई तो मेरी आत्मा भी शीघ्र ही जायगी—वह आत्मा जो स्वभाव ही से शुद्ध और निर्म्मल ज्योति से पूर्ण है, वह हवा के उड़ाए उड़ जायगी और शरीर को छोड़ते ही छिन्न भिन्न होकर नष्ट हो जायगी, यह बात क्या मानी जा सकती है? लोगों के इस कहने पर क्या तुम्हें विश्वास होता है? नहीं भाई शिवी और शिमी, ऐसा कदापि होने का नहीं। सुनो, मैं बतलाता हूँ उस आत्मा की (जो शरीर छोड़ते समय शुद्ध निर्म्मल बनी रहती है) क्या अवस्था होती है। जो आत्मा अपने जीवन-काल मे शरीर संबंधी भोगों में लिप्त नहीं होती, उसमे मरते समय शरीर के मल का तनिक दाग भी नहीं रहता, क्योंकि वह इन मलपूर्ण पदार्थों से जन्म भर घृणा करती आई है और सदा अपने आप में रहने के सबक को रटती रही है, अर्थात् उसने ज्ञान—सत्य ज्ञान—से ही प्रीति जोड़ी थी और वह हमेशा मरने की तैयारी मे लगी रही थी। क्यों, इस प्रकार का जीवन बिताना क्या मरने की तैयारी करते रहना नहीं है?

शिवी—बेशक है।

सुक०—तो फिर क्या वह आत्मा, जो सदा से उक्त शुद्ध अवस्था में रहती आई है, उस अदृश्य परम पवित्र अवस्था को नहीं प्राप्त होती? बेशक होती है, और सारी वासना, भय, मूर्खता, चिंता, उद्वेग आदि से छूटकर (जो कि मनुष्य-जीवन के पीछे सदा लगे ही रहते हैं) वह आनंदित हो जाती है। तात्पर्य यह कि वह स्वर्ग में देवताओं के संग (या ब्रह्मऋषियों के संग) रहकर निर्मल आनंद का उपभोग करती है। उपदेश पाए हुए (ईश्वराभिमुखी प्रतिभा-वाले) सारे जीव भी इसी पदवी को प्राप्त होते हैं।

शिवी—निस्संदेह !

सुक०—अब यदि सदा शरीर पर ममता रखने और शरीर ही की सेवा में लगे रहने के कारण शरीर छोड़ते समय शुद्ध न रहनेवाली और इंद्रियों की वासना और चरितार्थता ही को सार सर्वस्व और शरीर ही को एकमात्र उपासनीय समझनेवाली, तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और आहार, निद्रा, मैथुन में हमेशा लगी हुई—अदृश्य आत्मसत्ता और केवल ज्ञान और बुद्धि द्वारा समझ में आनेवाले ब्रह्मज्ञान से सौ सौ हाथ दूर भागनेवाली—क्या ऐसी आत्मा कभी शरीर छोड़ते समय शुद्ध और निर्मल रह सकती है ?

शिवी—नहीं, कदापि नहीं। दृश्यमान जड़ता की उस पर छाप पड़ जाती है, निरंतर इस जड़ शरीर की ही उपासना करते करते जड़ता उसका स्वभाव हो जाती है।

सुक०—बहुत ठीक समझे। और भी एक बात है। जड़ता का यह गुण है कि वह बोझीली, भारी, पार्थिव और आँखों से दिखनेवाली हो, और इसी बोझे के कारण आत्मा दबकर पुनः इस दृश्यमान जगत् में खिंचकर चली आती है (ऊपर उठने नहीं पाती)—क्योंकि अदृश्य जगत् से उसे भय लगता है—और वह श्मशान या कब्रस्तानों मे भटकती फिरती है, जहाँ इसकी छाया को कभी कभी कोई देख भी लेता है। ये उन्ही आत्माओं की छाया या भूत होते हैं जो शरीर त्यागते समय अशुद्ध थी और अब तक जड़ता के संग लगी लगी डोलती हैं और यही कारण है कि वे कभी कभी दिखाई भी दे जाती हैं।

शिवी—हाँ, ऐसा होना संभव है।

सुक०—केवल संभव नही, निश्चय है। ये सब पापियों की आत्माएँ होती हैं, पुण्यात्माओं की नहीं, और इसी कारण अपने पापो के बोझ से लदे लदे इन्हे यत्र तत्र भ्रमने में लाचार होना पड़ता है, और यों ही कुछ दिनों तक भटक भटककर अंत को उसी अपनी जड़ता के वासनानुसार उन्हे फिर जड़ शरीर मे कैद होना पड़ता है। और जो अपनी जिदगी मे पशुवत् आचरण रखते हैं, उन्हे पशु के शरीर मे कैद होना पड़ता है।

शिवी—इसका क्या अर्थ है ?

सुक०—अर्थ यह है कि जो लोग इस जिंदगी में बे रोक-टोक जी खोल मतवालों की तरह निर्लज्ज होकर व्यभिचार, खुराफात और मदपान करते हैं वे संभवतः गधे या ऐसी ही कोई नीच योनि में जन्म ग्रहण करते हैं।

शिवी—हाँ, ऐसा होना कोई आश्चर्य नहीं।

सुक०—जो लोग अन्याय, अत्याचार, लूट पाट, खून खराबी किया करते हैं उन्हें चील, बाज या भेड़िए का शरीर मिलता है।

शिवी—निस्संदेह, वे लोग ऐसी ही योनि को प्राप्त होते होंगे।

सुक०—तात्पर्य्य यह कि उन पापियों की आत्माएँ चाहे कहीं जायँ उन्हे अपने स्वभावानुसार शरीर धारण करना पड़ता है।

शिवी—बेशक!

सुक०—और इन आत्माओं में सब से अधिक सुखी वे ही होती हैं, जो अच्छे श्रेष्ठ स्थानों मे जा जन्म ग्रहण करती हैं, जिन्होंने इस जन्म में सर्वजनप्रिय सामाजिक नियमों को पालन करते हुए संयम और न्याय-विवेक से जिंदगी बिताई है, जिन बातों की आदत उन्हें निरंतर अभ्यास और स्वभाव से हो जाती है और जिसमे ज्ञान और विवेक का कुछ विशेष लगाव नहीं रहता।

शिवी—ये प्राणी सबसे अधिक सुखी क्यों माने गये?

सुक०—क्योंकि अधिक संभव है कि ये लोग अपने शांत और समाजप्रिय स्वभाव के अनुकूल शरीर को पाते हैं

जैसे कि मधुमक्खी, तितली या चींटी, या योग्य सज्जन नगरवासी के शरीर मे भी जन्म ग्रहण कर सकते हैं।

शिवी—अधिक संभव है।

सुक०—पर देवताओ का शरीर केवल उसी को मिलता है जो ज्ञान का प्रेमी होता है और मरते समय जिसकी आत्मा शुद्ध, निर्मल रहती है। इसलिये सच्चे ज्ञानी संयमी होते हैं और शारीरिक सुखभोग में नहीं फँसते। ये लोग सूम (कृपण) मनुष्यों की तरह दरिद्रता से डरकर संयमी नहीं रहते हैं, जैसे कि बहुत से धनी व्यक्ति रहते हैं अथवा दुष्टता या अनाचार की बेइज्जती के भय से संयमी नहीं रहते हैं जैसे कि सम्मान और प्रभुता की लालसा रखने-वाले रहते हैं। इन बातो का भय उन्हें संयमी नहीं बनाता है; केवल शुद्ध ज्ञान के अर्थ, आत्मा को अंत समय तक शुद्ध निर्मल रखने के कारण वे संयम का पालन करते हैं।

शिवी—बेशक, इन्ही सांसारिक बातो के लिये ही केवल संयमी होना ज्ञानी व्यक्तियों को शोभा थोड़े ही देता है।

सुक०—ठीक है और इसी लिये जो लोग अपनी आत्मा की कुछ भी परवाह करते हैं और शरीर के बनाव-शृंगार में अपनी आयु नहीं गँवाते, वे ऐसे (दुष्टात्मा) आदमियों को दूर ही से हाथ जोड़ देते हैं। न तो उनका संग करते हैं और न उनकी राह पर चलते हैं। वे खूब

जानते हैं कि "ये लोग आँखें मूँदे किधर जा रहे हैं, मानों कुछ जानते हो नहीं"। ऐसे शुद्धात्मा जन केवल 'सत्य ज्ञान' को अपना नेता, राह दिखानेवाला मानकर उसी के पीछे चलते हैं और यह उन्हें चाहे जहाँ ले जाय, बेखटके चले जाते हैं। उन्हें निश्चय रहता है कि ज्ञान के बतलाए हुए मार्ग से डिगने में वे अपने गंतव्य स्थान, शुद्धि और मोक्ष को कभी प्राप्त नहीं हो सकते।

शिवी—सो कैसे ?

सुक०—सुनते चलो। विद्या के प्रेमी जानते हैं कि जब ज्ञान के मार्ग पर आत्मा पैर बढ़ाती है, उस समय वह जड़ शरीर के मोह से जकड़ी रहती है। अपने आप वह ध्यान धारण करने मे नितांत असमर्थ रहती है। सिवाय अपने कैदखाने के जँगले के भीतर से (शरीर से) झाँकने के उसे और सहारा नहीं रहता और अज्ञान के अंधकार मे वह टटोलती चलती है। इस अवस्था में जब वह आत्मज्ञान का पल्ला पकड़ पाती है, तो उसके ज्ञानरूपी नेत्र खुलते हैं और कुछ कुछ रोशनी कैदखाने के भीतर आने लगती है, जिससे उसे सुझाई देने लगता है कि इस कैदखाने की सबसे भयानक चीज "विषय वासना" है। यह आत्मा स्वयं अपने आप बँधी हुई है। अपने हाथ से अपने पैरों मे बेड़ी डाले हुई है। विद्या के प्रेमी खूब जानते हैं कि जिस समय ज्ञान और आत्मा की पहली

मुलाकात होती है उस समय आत्मा की यही हालत रहती है। अब ज्ञान उस बँधी हुई आत्मा को धीरे धीरे पुचकारता और साहस दिलाता हुआ उसे कैदखाने से छुड़ाने की चेष्टा करता है। वह, उसे दिखाता है कि आंख, कान, तथा अन्य इन्द्रियों के विषय सब धोखे की टट्टी हैं और कान मे धीरे से समझाता रहता है कि इन विषयों से अलग रहो। ऐसे ही जब कभी इनसे काम लेने मे विवश हो तभी इनका संग करो, पर उस समय भी इनका तनिक विश्वास न करो। केवल अपने आप में स्थित रहने की आदत डालो। अपने आप ही का विश्वास रखो। अपने आप ही के भीतर जो जीवन का स्रोत है उसी पर लक्ष्य रखो और यह खूब निश्चय समझो कि जितनी चीजें अदल बदल होनेवाली हैं और जिनका बोध अन्य वृत्तियों द्वारा प्राप्त होता है वे सब निःसार हैं। ये चीजें दृश्यमान और इंद्रियों द्वारा बोधगम्य होती हैं। यही इनकी पहचान है पर तुम अपने आप अदृश्य और बोधगम्य हो। सच्चे ज्ञानी की आत्मा समझती है कि इस मोक्ष अर्थात् कैदखाने से छूटने के मार्ग से हटना नहीं चाहिए और इसलिये ज्ञान के उपदेशानुसार यथासंभव, राग, द्वेष, इच्छा, भय इन सबों से दूर रहती है; क्योंकि उसे इस बात का पता लग जाता है कि जब कोई मनुष्य तीव्र आनंद और तीव्र वासना या भय अथवा

पीड़ा के वश हो जाता है, तो उसे इस तीव्रता से अवश्य पैदा होनेवाली बुराइयों से दुःख उठाना पड़ता है, जैसे कि रोग, शोक अथवा वासनाओं को बेलगाम छोड़ देने से जो जो हानियाँ होती हैं उन्हें भोगना पड़ता है। यही नहीं, इससे बढ़कर और भी कहीं अधिक दुःख का पहाड़ उसके सिर पर आ टूटता है जिसकी उसको कुछ खबर ही नहीं होती।

शिवी—वह दुःख का पहाड़ कैसा ? मैं तो कुछ समझा नहीं।

सुक०—सुनो, बतलाता हूँ। जिस समय किसी मनुष्य की आत्मा तीव्र वासना या रागद्वेष के वशीभूत हो जाती है, उस समय उस वस्तु को वह सबसे बढ़कर सत्य और असली समझने लगती है, जो कि वास्तव में वैसी नहीं होती। इस प्रकार की चीजें सब दृश्यमान अर्थात् आखों से दिखाई देनेवाली होती हैं। क्यो होती हैं या नहीं ?

शिवी—निस्संदेह दृश्यमान होती हैं।

सुक०—अच्छा तो इसी अवस्था में आत्मा शरीर के बंधन से बिलकुल जकड़ी रहती है।

शिवी—सो कैसे ?

सुक०—जकड़े रहने का कारण यह है कि हर प्रकार के विषय और इंद्रियजनित आनंद एक प्रकार के काँटे हैं। ये ही काँटे आत्मा को शरीर में ठोंककर जड़ देते हैं, जिससे आत्मा अपने को शरीर समझने लगती है। वह शरीर

के कहने को सत्य मानने लगती है और इसी कारण से शरीर की तरह अपने को दुखी सुखी मानकर, और शरीर की कल्पना को अपनी कल्पना मानकर, उसे शरीर की नित्य सहचरी बन जाना पड़ता है। शरीर के स्वभाव उसमे आ जाते हैं, इसलिये जब कभी वह शरीर छोड़ती है, शरीर से अपवित्र हो जाने के कारण, परलोक में वह शुद्ध होकर नहीं पहुँचने पाती। इसलिये पुनः उसे दूसरे शरीर मे आकर गिरना पड़ता है और बोए हुए बीज की तरह उस शरीर मे उसका अंकुर जमने लगता है। परिणाम यह होता है कि नित्य, पूर्ण, शुद्ध-निर्म्मल ईश्वरीय अंश से उसका सारा संबंध टूट जाता है।

शिवी—आपका कहना बहुत ठीक है।

सुक०—इसी लिये, 'सत्य ज्ञानी', संयमी और शूर होते हैं। अब समझे सच्चे ज्ञानियों का संयम से क्या तात्पर्य है?

शिवी—हाँ, मैं ठीक समझ गया।

सुक०—और भी सुनो। ज्ञानी की आत्मा जानती है कि उसे मोक्ष दिलाना ही ज्ञान का निर्दिष्ट (बँधा हुआ) कर्त्तव्य है और इस बात से भी वह चौकन्नो रहती है कि कहीं फिर से वह रागद्वेष के बंधन में न जा पड़े, जिस बंधन से कि ज्ञान ने उसे छुड़ाया है। क्योंकि यदि वह इस बात से होशियार न रहे तो पुन. बंधन मे पड़ जाय, और यों ही अनंतकाल का चक्र कभी मिटे हो नहीं। इस

बंधन से छूटने पर उसे शांति प्राप्त होती है और जब इस शांति का रस वह एक बार चख चुकती है तब वह फिर ज्ञान को दृढ़ता से थाम लेती है और उसी के बतलाए हुए मार्ग पर चलने लगती है। उसे सत्य, वास्तविक परम पवित्र ज्ञान-सत्ता से परम प्रीति हो जाती है। इसलिये वह उक्त प्रकार का पवित्र जीवन व्यतीत करती हुई संसार में जीने में भी कोई हर्ज नहीं समझती। उसे इस बात का पक्का निश्चय रहता है कि मरने के बाद उसे अपने स्वभाव के अनुसार लोक की प्राप्ति होगी और मनुष्य-शरीर के सारे दुःखों से उसका छुटकारा हो जायगा। अब देखिए भाई साहब! जो आत्मा इस प्रकार की अवस्था में पाली पोसी गई और शिक्षित की गई हो उसे क्या कभी इस बात का भय हो सकता है कि शरीर छोड़ते ही उसकी धज्जियाँ उड़ जायँगी अथवा राख की तरह वह वायु में उड़ जायगी अथवा उसका अस्तित्व कहीं रहेगा नहीं?

शिवी—नहीं, आप ही का कहना यथार्थ है।

इसके बाद बहुत देर तक सन्नाटा रहा। स्वयं गुरुजी अपनी ही बतलाई हुई युक्तियों के ध्यान में ऐसे लवलीन हो गए कि हम सब लोगों के मुँह से थोड़ी देर के लिये एक शब्द भी नहीं निकला। इसके बाद शिवी और शिमी धीरे धीरे आपस मे कुछ गुनगुनाने लगे। जब

गुरुजी ने उन लोगों की गुनगुनाहट पर लक्ष्य किया तो वे तुरंत ही बोल उठे "क्यों क्या अब भी कुछ बाकी रह गया ? हो सकता है। स्वयं मुझे ही भान हो रहा है कि इसमे अभी कई शक की जगहें हैं और खंडन मंडन की जगह भी बाकी है, इसकी और भी खूब छान-बीन हो सकती है। यदि इसके सिवाय तुम लोग और किसी विषय की चर्चा कर रहे हो तो दूसरी बात है। पर यदि इस बात के बारे मे कोई अड़चन आई हो तो बेखटके मन का संदेह कह डालो और यदि तुम्हारे ध्यान में इस बात के सुलझाने की और कोई बढ़िया युक्ति है तो वह भी वर्णन कर दो। यदि यह समझते हो कि मेरे साथ रहने से विशेष सुबीता होगा तो मुझे इस चर्चा मे शामिल कर लो।

शिमी—भाई सुकरात, बात असल में यह है कि हम दोनों ही को एक एक अड़चन आ पड़ी है और दोनों मे से कोई भी आपसे पूछने की हिम्मत न करके पूछने का भार एक दूसरे पर टाल रहे हैं। उस कठिनाई के बारे में आपकी राय जानने की मन में उत्कंठा तो है पर अब इस समय आपको और कष्ट देने को जी नहीं चाहता। शायद आप भी अब ऊब गए होंगे ?

शिमी की इस बात को सुनकर गुरुजी मुसकराकर कहने लगे—

"क्या कहूँ भाई शिमी, मैं खुद बड़ी अड़चन में पड़ा हूँ। जब मैं तुम्हीं लोगों को अब तक यह निश्चय न करा सका कि मैं इस होनहार को अपना दुर्भाग्य नहीं समझता तब भला अन्य लोगों को क्या खाक समझा सकूँगा? इतने कहने पर भी तुम लोगों को अब तक खटका ही लगा हुआ है कि मैं मौत के डर से अधमरा हो रहा हूँ और बातचीत करने के योग्य नहीं हूँ। तुम क्या मुझको उन हंस पक्षियों से भी गया गुजरा समझते हो जो अपनी मृत्यु को निकट आई जान बड़े आनंद से चिल्ला चिल्लाकर चहकने लगते हैं? उनका यह चहकना बड़े आनंद का होता है क्योंकि उन्हे मालूम हो जाता है कि उनके परम प्रभु स्वामी के निकट जाने का समय आ गया है। मनुष्य बेचारे इन हंस पक्षियों के चहकने का मर्म न समझकर, स्वयं मृत्यु से भयभीत होने के कारण, झूठ ही मूठ कहते हैं कि ये पक्षी मृत्यु के डर से रो रहे हैं और पीड़ा के मारे जोर जोर से चहक रहे हैं। उन बेचारों को यह पता नहीं कि कोई पक्षी भी क्षुधा, तृष्णा या पीड़ा से कातर हुए बिना कभी चहकता या गाता नहीं। औरों की तो क्या, बुलबुल-हजारदास्तॉं, पपीहा, चातक नित्य चहकने और गानेवाले पक्षी भी कभी पीड़ा के समय चहकते या गायन नहीं करते बरन् सुस्त पड़े रहते हैं। अस्तु, मेरी समझ में न तो ये पक्षी और

न हंस पची कोई भी पीड़ा के समय गाते या चहकते हैं और मुझे निश्चय है कि इन पच्चियों को अपनी भावी मालूम हो जाती है और परलोक मे उनको सद्गति प्राप्त होगी इसका उन्हें ज्ञान हो जाता है, क्योंकि हंस ब्रह्मा के वाहन हैं और इसलिये अपनी मृत्यु के दिन ये लोग ऐसे आनंद से चहकने और गाने लगते हैं जैसा कि इन्होंने कभी जन्म भर गाया नहीं होता। इसी तरह मैं भी अपने को परमात्मा के हंस दासों की तरह दास समझता हूँ और परमात्मा की सेवा से अपने को अर्पित मानता हूँ। इसलिये इन पच्चियों से बढ़कर मुझे अपनी भावी मालूम हो रही है और यही कारण है कि उनकी तरह मैं भी इस होनहार के कारण शोकातुर नहीं हूँ। ऊब जाने की बात तो एक ओर रही, मेरी प्रसन्नता तो इसी मे है कि जब तक जल्लाद विष का प्याला आज्ञा मेरे हाथ में न दे और तुम लोगों को बाहर जाने की न हो जाय तब तक तुम लोग मुझसे प्रश्न पर प्रश्न करते चलो।

शिमी—अच्छा तो अब पहले मैं अपने मन का संदेह आपसे निवेदन करता हूँ और फिर शिवी भी अपने असंतोष का कारण बतलावेगा। बात यह है कि मैं जहाँ तक समझता हूँ और शायद तुम्हारी भी यही राय होगी कि इन बातों का पक्का पक्का स्पष्ट ज्ञान इस जिंदगी में होना कठिन

क्या बरन् असंभव है। पर हाँ, इतना मैं जरूर मानता हूँ कि वह आदमी निरा निस्सार है जिसने यहाँ आकर इन बातों को हर एक पहलू से नहीं जाँचा और जब तक सब ओर से सब युक्तियों को ठोंक-बजा नहीं लिया (जहाँ तक संभव हो) तब तक एक राय को छोड़कर दूसरी राय कायम नहीं की।

दो में से एक बात करना हमारा कर्त्तव्य है। या तो सीखें या इन बातों की सचाई को स्वयं खोज निकालें। यदि दोनों बातें असंभव हों, तो मनुष्यों में प्रचलित सबसे श्रेष्ठ युक्तिपूर्ण विश्वास की किश्ती पर सवार होकर, भवसागर मे अपने जीवन की किश्ती को छोड़ दें, जब तक कि कोई भारी जहाज (अवलंबन)—परमात्मा का स्पष्ट आदेश—न प्राप्त हो जिस पर सवार होकर हम बेखटके अपनी यात्रा (जीवन-यात्रा) को समाप्त कर सकें। जब आपने हम लोगों का खटका मिटा दिया है तब अब और कोई प्रश्न करते मेरा जी नहीं हिचकता, और यदि ऐसा नहीं करूँगा और इस समय के अपने विचार आप पर प्रगट नहीं करता, तो फिर मुझे पछताना पड़ेगा। शिवी और मैं, हम दोनों ही आपकी युक्तियों को तौल रहे थे, और मेरी समझ में ये युक्तियाँ काफी नहीं हैं।

सुक०—हो सकता है। पर अब यह भी बतलाओ कि किस किस जगह की युक्तियों में कसर रह गई है ?

शिमी—कसर इस बात की है कि मेरी समझ में यह युक्ति एक सारंगी, उसकी ताँत (डोरी) और उसके स्वर (आवाज) के विषय मे भी कही जा सकती है। हम कह सकते हैं कि एक स्वर मिलाई हुई सारंगी का सम स्वर एक अदृश्य वस्तु है, अशरीरी है और एक शुद्ध-निर्म्मल, सुंदर पदार्थ है और सारंगी और उसकी ताँत ये दोनों शरीरी हैं और ठीक शरीर की तरह मिश्रित और पार्थिव तथा नाशमान पदार्थों से बनी हैं। अब देखिए जब सारंगी टूट जाती है या उसकी ताँत उखड़ जाती या कट जाती है, तो यदि कोई आदमी वही युक्ति यहाँ भी लगाकर कहे (जो कि आपने इसके पहले लगाई है) कि सारंगी के टूटने से स्वर का नाश नहीं हुआ और वह वर्त्तमान है, तो यह क्योंकर ठीक होगा ? क्योंकि सारंगी और उसकी ताँत ये दोनों नाशमान पदार्थ ठहरे। इसलिये टूट फूट जाने पर सारंगी का अस्तित्व नहीं रह सकता, पर अपने नाश से पहले वह उस सम स्वर को, जिसे शुद्ध निर्म्मल और अविनाशी कहा गया है, नाश कर जाती है। अर्थात् दृश्यमान सारंगी के नाश होने के पहले ही, अदृश्य 'स्वर' का नाश हो जाता है। चाहे कोई भले ही कहे कि स्वयं स्वर तो कहीं न कहीं रहेगा ही और इसे कुछ हानि पहुँचने के पहले सारंगी की लकड़ी और ताँत सड़ गल जायगी। पर भाई सुकरात,

तुम्हें यह भी मालूम हो है कि हममें से बहुत लोग ऐसा मानते हैं कि आत्मा, तत्त्वों (पंच महाभूत) की मिलावट से पैदा होती है और सारंगी की तांत की तरह अपने उपयुक्त बंधन अर्थात् शीत, उष्ण से बँधी है और जैसे सारंगी की तांतों को उपयुक्त रूप से खींच खांच-कर ठीक किया जाता है, तब सम स्वर निकलता है उसी प्रकार से तत्त्वों की यथोपयुक्त मिलावट से आत्मरूपी सम स्वर की उत्पत्ति जानो। अच्छा, अब यदि आत्मा तत्त्वो की उपयुक्त मिलावट का एक सम 'स्वर' ठहरा, तो यह बात स्पष्ट है कि जब शरीर को उचित से अधिक परिश्रम पड़ता है या रोग इत्यादि के कारण वह बहुत अधिक ढीला या निर्बल हो जाता है, तो आत्मा शुद्ध निर्म्मल, अदृश्य इत्यादि होने पर भी फौरन् नाश को प्राप्त हो जाती है, जैसे कि सारंगी के टूटते ही स्वर का तत्काल नाश हो जाता है। चाहे सारंगी की लकड़ी और तांत को गलते-सड़ते कुछ दिन भी लगें पर सम स्वर को नाश होते देर नहीं लगती। वैसे ही क्षय हुए शरीर के अस्थि मांस को तो गलते सड़ते कुछ देरी भी लगे पर आत्मा तो उसके पहले ही नाश हो जाती है। अब यदि कोई आदमी यही दावा पेश करे और कहे कि "तत्त्वों की उपयुक्त मिलावट से जब यह शरीर बना है तब जब इस मिलावट में गड़बड़ हुई या कोई तत्त्व घटा

बढ़ा तब बस, आत्मा का फौरन् नाश हो जाता है।" तो उसे हम क्या जवाब देंगे ?

शिमी की इस बात को सुनकर गुरुजी कुछ देर तक, हम लोगों की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर मुस्कराते हुए बोले—शिमी की शंका बेशक ठीक है। अब यदि तुममे से इस तर्क का जवाब देने के लिये कोई तैयार है तो दे, नहीं तो मैं दूँगा। क्योंकि शिमी मुझे ऐरे गैरे लोगों की तरह मामूली तार्किक नहीं दिखता। उसके तर्क की प्रणाली पुष्ट है। अच्छा तो अब उसका उत्तर देने के पहले मैं शिवी की शंका भी सुन लेना चाहता हूँ जिससे जवाब सोचने के लिये कुछ अवसर मिल जाय। अब यदि दोनों की बात सुनकर हमे दोनों की शंका और युक्ति ठीक मालूम हुई तो हम इनकी बात मान लेंगे, यदि गलत मालूम हुई तो अपनी युक्तियों के पक्ष का समर्थन करेंगे। अच्छा भाई शिवी, अब तुम भी अपनी शंकाएँ कह जाओ।

शिवी—हाँ, कहता हूँ, सुनिए। मेरी समझ में आपकी सारी युक्तियों को मान लेने पर भी मेरी पहली शंका ज्यों की त्यों बनी हुई है। इसमें संदेह नहीं कि आपने, मनुष्य के शरीर मे प्रविष्ट होने से पहले आत्मा विद्यमान थी, इस सिद्धांत के सिद्ध करने मे अपने भरसक अच्छी बुद्धि लड़ाई है। यदि दंभ की बात न हो तो यह भी कहा जा सकता है कि आपने इस सिद्धांत को सदा के लिये

सिद्ध कर दिया है। मैं भी पहले की मानी हुई बात को अब अस्वीकार नहीं करता हूँ, पर बड़ी भारी शंका यह रही जाती है कि मुझे इस बात का निश्चय नहीं हुआ है कि मरने के बाद भी आत्मा रहेगी। मैं शिमी की शंका से सहमत नहीं हूँ, जो कि कहता है कि आत्मा शरीर से अधिक बलवान् और स्थितिवाली नहीं है। मेरी राय में तो इन बातों में आत्मा शरीर से कहीं अधिक बढ़-चढ़-कर है। मेरे इस कहने पर आप कह सकते हैं कि जब मरने के बाद मनुष्य का कमजोर हिस्सा—शरीर—कुछ दिनों तक बना रहता है तो उसके श्रेष्ठ और बलवान् भाग आत्मा के हमेशा बने रहने मे तुम्हें संदेह क्यों हुआ? सो मैं एक पार्थिव दृष्टांत देकर समझाना चाहता हूँ। फिर आप अच्छी तरह समझ जाइएगा कि मेरी शंका का स्वरूप कैसा है। ठीक शिमी की तरह मैं भी अपनी शका को एक रूप देकर यों वर्णन करना चाहता हूँ। देखो एक जुलाहा बूढ़ा होकर मर जाता है, पर उसका सर्वथैव नाश नहीं हो जाता। वह कहीं न कहीं दूसरे स्वरूप में मौजूद रहता है। किस स्वरूप मे रहता है सो सुनिए। उसी वस्त्र के स्वरूप में जो उसने बुना था। क्योंकि यद्यपि जुलाहा मर चुका है, पर जो वस्त्र वह बुन-कर स्वयं पहनता था, वह वर्त्तमान है। देखिए, यदि कोई पूछे कि "आदमी की मियाद ज्यादः है या वस्त्र की?

कौन ज्याद: दिन टिकता है, आदमी या वस्त्र ?" उससे यदि कहा जाय कि आदमी ज्याद: दिन टिकता है तो यह सच हो सकता है, पर यह कहकर यदि कोई यह मान ले कि जब वस्त्र जुलाहे के मरने के बाद मौजूद है तो उससे ज्यादा दिन टिकनेवाला जुलाहा तो कभी मरेगा ही नहीं, तो क्या यह मूर्खता की बात न होगी ? देखो भाई शिमी ! तुम भी मेरी बात ध्यान देकर सुनो, क्योंकि मेरी शंका की तुम्हे जॉच पड़ताल करनी पड़ेगी। वस्त्र मौजूद है अर्थात् जुलाहे से कम दिन टिकनेवाली चीज मौजूद है तो ज्याद: दिन टिकनेवाला जुलाहा अमर है, यह तो कोई युक्ति नही। क्योंकि जुलाहा अपनी जिंदगी मे कोड़ियों वस्त्र पहन-पहनकर फाड़ चुका है, केवल उसी एक अंतिम वस्त्र से पहले ही वह मर गया है। इसलिये एक अंतिम वस्त्र जुलाहे के मरने के बाद भी मौजूद है, इस कारण से वस्त्र की महिमा जुलाहे से कदापि बढ़ नही सकती और न इस कारण से मनुष्य या जुलाहा वस्त्र से कमजोर या कम दिन टिकनेवाला कहला सकता है। नाशमान दोनों ही हैं। पर जब तक कई वस्त्र नाश हो जाते हैं, तब तक एक ही मनुष्य बना रहता और अंत को एक अंतिम वस्त्र छोड़कर आप भी नाश हो जाता है। वही युक्ति मैं आत्मा पर घटाना चाहता हूँ। आत्मा और शरीर का संबंध मैं इसी तरह

का देख रहा हूँ। यह मानते हुए भी कि आत्मा शरीर से श्रेष्ठ और अधिक दिन तक टिकनेवाली है, हम कह सकते हैं कि आत्मा अविनाशी नहीं, अंत को नाश हो ही जायगी। वह अनेकों शरीरों को धारण करती रहती है, और एक शरीर के नाश होने पर दूसरे में प्रवेश करती है, जैसे एक कपड़ा फटने पर दूसरा कपड़ा पहिना जाता है। इसी तरह बहुत से शरीरों मे प्रवेश करते करते और निर्बल, क्षयी, रोगग्रसित शरीरों को सुधारने में अपनी शक्ति खर्च करते करते अंत को आत्मा की शक्ति क्षय हो जाती है और एक अंतिम शरीर को छोड़कर, उस जड़ शरीर के गलने सड़ने के पहले ही आत्मा का नाश हो जाता है। अब शरीर भी आत्मा से छूटने पर कुछ दिनों मे गल सड़कर ठिकाने लग जाता है। सो केवल एक इसी युक्ति के भरोसे—'आत्मा शरीर से अधिक शुद्ध, श्रेष्ठ, निर्म्मल और अधिक टिकनेवाली है' हम नहीं कह सकते कि मरने के बाद आत्मा बनी रहेगी ही। अच्छा यदि यह भी मान ले कि जन्म ग्रहण करने के पहले हमारी आत्मा विद्यमान थी और मरने के बाद भी कुछ आत्माएँ विद्यमान रहेगी और दूसरे शरीर में प्रवेश करेंगी और उस शरीर के छूटने पर तीसरे और फिर चौथे शरीर मे भी जायँगी, क्योंकि शरीर से आत्मा अधिक सामर्थ्य-वाली और कष्टसहिष्णु है; यह भी मान लेते हैं कि बार

बार शरीर धारण करने और छोड़ने से आत्मा का कुछ क्षय नहीं होता या दो चार शरीर के बाद उसका नाश नहीं होता; पर यह कौन कह सकता है कि इन दो चार, दस पाँच, या सौ दो सौ शरीरों में से निकलने पैठने पर उसका नाश नहीं हुआ, यह तो कभी होगा ही नहीं। क्या जाने, क्षय होते होते हमारा यही अंतिम शरीर हो, जिसके नाश के पहले आत्मा भी छिन्न भिन्न होकर लय हो जायगी! क्योंकि इसका किसको पता है कि अंतिम आत्मा-विनाश का शरीर यही है या आगे आवेगा। इसलिये आत्मा के नाश हो जाने का भय और खटका स्वाभाविक ही है। जब तक यह साबित न हो जाय कि आत्मा एकदम से अविनाशी और अजर अमर है तब तक आदमी मृत्यु से निडर कदापि नहीं हो सकता। सबको यही खटका लगा रहेगा कि कहीं यही तो हमारा अंतिम शरीर नहीं है, जिसके पहले ही आत्मा छिन्न भिन्न होकर ध्वंस हो जायगी।

इतना कहकर फीडो कहने लगा—इन लोगों की बात सुनकर हम सभों का जी बेचैन हो गया, जिसका जिक्र हम लोग आपस मे करने भी लगे थे। पहले की युक्तियों से हम सबों का पूरा संतोष हो गया था और अब नई शंकाओं को सुनकर और अपने विश्वास को डगमगाते देखकर आगामी सारी युक्तियों पर से भी हम लोगों

की श्रद्धा कम होने लगी और आगे पीछे की सारी युक्तियाँ निःसार प्रतीत होते देखकर हमारा जी ऊब गया और हमें यही मालूम होने लगा कि हमारी युक्तियाँ, हमारा निश्चय कुछ मूल्य नहीं रखता और न हम कभी यथार्थ सिद्धांत का निरूपण कर सकेंगे।

इश०—भगवान् जाने, मैं सच कहता हूँ फीडो, तुम्हारे दिल के भाव को मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूँ। जब तुम ऊपर की शंकाओं का वर्णन कर रहे थे तब मैं स्वयं मन ही मन कह रहा था कि तब तो आगे के लिये किसी न्याय या युक्ति का सहारा रहा ही नहीं ? जब सुकरात की ऐसी प्रबल युक्तियाँ, जिनसे सबका संतोष हो गया था, मिट्टी मे मिल गईं तो अन्य युक्तियों का कहाँ ठिकाना लगेगा ? क्योंकि 'आत्मा एक सम्मिलित स्वर है' इस सिद्धांत पर मैं बहुत दिनों से लट्टू हूँ और तुमने आज जब वही बात दोहराई तो मुझे भी फौरन् अपना प्यारा सिद्धांत याद आ गया और अपने मन को यह संतोष दिलाने के लिये कि 'मनुष्य के मरते ही उसकी आत्मा मर नहीं जाती', मुझे अब और और युक्तियों की खोज करनी पड़ी। इसलिये अब विलंब न करके जल्दी से कह ही डालो कि गुरुजी (सुकरात) ने फिर कौन कौन सी युक्तियाँ बतलाई थीं। इतने मगज खपाने के बाद तुम लोगों को पुनः बेचैन और असंतुष्ट देखकर क्या वे कुछ

घबराए थे ? या पहले ही की तरह शांत भाव से अपने पक्ष का समर्थन करने लगे ? उन्होंने तुम लोगों की पूरी पूरी दिल-जमई कर दी या नहीं ? सब हाल मुझसे ज्यों का त्यों कह जाओ।

फीडो—यों तो सदा ही से मैं गुरुजी को विस्मय की दृष्टि से देखा करता था, पर उस समय से उनकी जो प्रतिष्ठा मेरे दिल मे समा गई है, वैसी कभी नही समाई थी। किसी भी शंका का जवाब दे देना उनके लिये कोई बात ही नहीं थी। सबसे बढ़कर आश्चर्य तो मुझे उनकी भलमन-साहत और अच्छे स्वभाव पर हुआ था कि अपने से इतने छोटे छोटे छोकरों की शंका और खंडन को भी उन्होंने बड़ी गंभीरता और प्रतिष्ठा से सुना और तत्काल ही हम लोगों की दशा लक्ष्य कर ली जो इन शंकाओं को सुनकर हुई थी और अंत को ऐसी खूबी से हम लोगो के विक्षिप्त मन को शांत कर दिया कि मानों हम लोग किसी हारी हुई सेना के घायल सिपाही थे और भागे जाते थे जिन्हें हिम्मत दिलाकर, मलहम पट्टी करके, पुनः मैदान में अफसर ने डटा दिया हो, और शंकाओं को हटाने के लिये अपनी युक्तियों के पीछे चलने के लिये पुनः हिम्मत दिलाई हो।

इश०—सो कैसे ?

फीडो—सुनो, कहता हूँ। मैं उनके बगल मे एक तिपाई पर बैठा था और गुरुजी मुझसे बहुत ऊँचे बिस्तरे पर थे।

उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरकर मेरे केश की लटों को हाथ मे ले लिया—तुमने भी देखा होगा, जैसा कि कभी कभी वे मेरे केशों से खेला करते थे—और कहने लगे "भैया फीडो ! शायद कल तुम अपने इन सुंदर केशों को कटवा डालोगे ?" उनके इस कहने पर मैं बोला कि 'मैं भी ऐसा ही विचार रहा हूँ ।' गुरुजी ने कहा—'यदि मेरी सलाह मानों तो इन केशों को मत कटवाना ।' मैंने पूछा—क्यों ?

सुक०—देखो, यदि हम लोगों की युक्ति का आज अंत हो गया और उसे हम फिर से जिला न सके तो हम दोनों आज ही अपने केशों को कटवा डालेगे । और यदि तुम्हारी जगह मैं होता और मुझे अब और कोई युक्ति न सूझती तो मैं यह शपथ कर लेता कि "जब तक मैं फिर से नई युक्ति निकालकर शिवी और शिमी को तर्क के अखाड़े में पछाड़ूँगा नहीं तब तक पुनः केश धारण नहीं करूँगा ।"*

मैंने जवाब दिया—"पर दो जवानों से अकेला एक आदमी क्योंकर भिड़ सकता है" ? इस पर गुरुजी बोले—"खैर कोई हर्ज नहीं, अपनी मदद के लिये मुझको बुला लेना ।"

---

* देखो द्रौपदी की प्रतिज्ञा—जब तक दुःशासन के रक्त से केश-सिंचित न होगे, जूड़ा नहीं बाँधूँगी ।

मैंने कहा 'अच्छा तो अपनी मदद के लिये आपको न बुलाकर, अपनी तरफ से आप ही को मैं अखाड़े में खड़ा कर देना चाहता हूँ'। इस पर गुरुजी बोले "दोनों एक ही बात है। पर हाँ, पहले हमें इस बात से अवश्य सावधान रहना चाहिए कि हमसे गलती न हो जाय।"

मैं बोला—गलती कैसी ?

सुक०—गलती इस बात की कि बार बार के तर्क और युक्तियों को सुनते सुनते घबड़ाकर कहीं हम न्याययुक्ति से घृणा न करने लग जायँ, जैसे कि किसी किसी आदमी को 'मानुस गंध' हो जाती है अर्थात् वे मनुष्यमात्र से घृणा करने लगते हैं। मनुष्य की जातिमात्र से घृणा और तर्क की जातिमात्र से घृणा, दोनों प्रकार की घृणा का कारण एक ही सा होता है। मनुष्य जाति से तो घृणा इस कारण होती है कि कोई आदमी किसी दूसरे आदमी को अपना सच्चा और विश्वासी मित्र समझकर उस पर अंध श्रद्धा और विश्वास रखता है पर थोड़े ही दिनों में उस मित्र का विश्वासघात साबित हो जाता और उसकी कलई खुल जाती है। जब इस प्रकार से मनुष्य बार बार ठगा जाता है और खासकर जब ये अविश्वासी ठग उसके नजदीकी रिश्तेदार या बंधु होते हैं और कोड़ियों मित्रों से उसका वैमनस्य हो जाता है तो अंत को इसका नतीजा यह होता है कि उसे सारा संसार बेईमान

और दगाबाज दिखने लगता है और भलाई कहीं है इस बात का उसे कभी विश्वास ही नहीं होता और यों ही वह मनुष्य मात्र को घृणा की दृष्टि से देखने लग जाता है। क्यों, तुमने कभी ऐसा होते नहीं देखा ?

फीडो—कई बार देखा है।

सुक०—तो यह क्या अच्छी बात है ? इससे क्या साफ प्रगट नहीं होता कि ऐसा आदमी बिना मनुष्य-प्रकृति को समझे मनुष्यों से वर्ताव व्यवहार करना चाहता है ? क्योंकि यदि उसने मनुष्य-प्रकृति का अध्ययन किया होता तो वह जरूर जानता होता कि वास्तव में 'बुरे आदमी और भले आदमी इने गिने हैं।' अधिक संख्या तो उन्हीं मनुष्यों की है जिन्हें हम न तो बिलकुल बुरा कह सकते हैं और न बिलकुल अच्छा ही।

फीडो—इससे क्या तात्पर्य है ?

सुक०—ठीक जो तात्पर्य्य बिलकुल बड़ी और बिलकुल छोटी चीजों से है। कोई बहुत लंबा आदमी या बहुत बड़ा कुत्ता या बहुत नाटा आदमी या बहुत छोटा कुत्ता, ऐसी चीजे दो बिरली ही होती हैं या नहीं ?' वैसे ही अत्यंत शीघ्रगामी या अति मंदगामी, अति नीच या अति महान्, अत्यंत गोरा या अत्यंत काला ये सब चीजें शायद हो कभी देखने में आती हैं या नहीं ? तुमने क्या यह लक्ष्य नहीं किया है कि इन सब बातों मे

'अति' की गिनती बहुत कम है और साधारण तौर की चीजें बहुत हैं ?

फीडो—बेशक ऐसा ही है।

सुक०—वैसे ही यदि दुष्टता की बाजी लगे, तो अत्यंत दुष्ट पापात्मा बहुत थोड़े से निकलेंगे। क्यों, यह तुम मानते हो या नहीं ?

फीडो—यह भी ठीक है।

सुक०—जो हो, दुष्टात्मा निकलेंगे सही। यहाँ यह बात तर्क और मनुष्यों के बारे में एक सी नहीं घटती। मैं तो केवल तुम्हारी बातों के पीछे पीछे यहाँ तक आ गया। दोनों का मुकाबला इस प्रकार का है। जब कोई आदमी न्यायशास्त्र बिना पढ़े किसी युक्ति को सच मान लेता है और फिर थोड़ी ही देर बाद, भूल से या सही ही उस युक्ति को मिथ्या समझने लगता है, और इस तरह जब बार बार कई बार होता है तो वह एक बार ही युक्ति और तर्कमात्र पर से विश्वास हटा लेता है। तुमने भी यह देखा होगा कि जो लोग रात दिन तर्क वितर्क किया करते हैं वे अंत मे अपने ही को सारे जगत् मे बुद्धिमान् मान बैठते हैं और समझते हैं कि केवल हमी ने यह तत्त्व ढूँढ़ निकाला है कि कहीं भी कोई बात निश्चित या पक्की नहीं है, न तो कोई युक्ति या तर्क यथार्थ है और न कोई वस्तु यथार्थ है। सब चीजें

बादलों के रंग की तरह छिन छिन बदलती जाती हैं; छिन भर के लिये भी ज्यों की त्यों नहीं रहतीं।

फीडो—निस्संदेह कई आदमी ऐसे हो जाते हैं।

सुक०—अच्छा तो अब यदि कोई न्याय या तर्कयुक्ति की प्रणाली वास्तव में सत्य हुई और जिसे हमारा मन ग्रहण भी कर सकता हो तो यह कैसे शोक की बात होगी कि एक आदमी जिसे इन युक्तियों से वास्ता पड़ा हो और इन्हे कभी सच और कभी भूठा समझ समझकर अंत को दुःखी हो एकदम सारा दोष न्यायशास्त्र ही के सिर मढ़ दे और यों आप अपनी अयोग्यता को ढाँक-कर प्रसन्न हो जाय और फिर जन्म भर तर्क, न्याय और युक्ति मात्र को गाली दिया करे और इसी प्रकार से सत्य और ज्ञान की प्राप्ति से हाथ धो बैठे?

फीडो—निस्संदेह ऐसा होना तो बड़े शोक की बात होगी।

सुक०—इसलिये हमे इस बात से सावधान रहना चाहिए कि हमारी आत्मा भी उस गलती को पल्ले न बाँध बैठे कि सब तरह की युक्तियाँ गलत हैं, वरन् हमें यह समझना चाहिए कि हम स्वयं गलती पर हैं। इसलिये हम सभो को अपनी गलती सुधारकर दुरुस्त हो जाना चाहिए। तुम लोगो को दुरुस्त हो जाना चाहिए अपनी आगे की जिंदगी के लिये और मुझे दुरुस्त हो जाना चाहिए तत्काल की मृत्यु के लिये; क्योंकि जब इतनी

शंकाएँ उठ खड़ी हुई हैं तो इस समय मुझे भी खटका हो रहा है कि शायद अपनी आसन्न मृत्यु का सामना मैं ज्ञानियों की तरह न कर सकूँ। इस समय मेरी हालत संशय में पड़े हुए मूर्ख मनुष्यों की तरह हो रही है जो केवल अपने तर्क के घोड़ों को सरपट दौड़ाए चलते हैं और यह जरा नहीं सोचते कि जिस प्रश्न पर वे विचार कर रहे हैं, उसमे कुछ सार है या नहीं। उन्हें केवल अपने श्रोता को यही समझाने से काम रहता है कि जो कुछ 'मैं कहता हूँ ठीक है' पर मेरी समझ मे इन लोगों में और मुझसे आज केवल एक ही बात का अंतर है। मुझे इस बात की लालसा नहीं है कि जो कुछ मैं कहूँ, बिना समझे बूझे मेरे श्रोता उसे सच मान लें, पर हाँ अपने मन को आप संतुष्ट करने की मुझे बड़ी चिंता है। 'आप लोगों ने मेरे तर्क को देखा यह कैसा स्वार्थपर है। अब यदि मेरा कहना सच हो तो उसे मान लेना अच्छा है, और यदि मृत्यु के बाद कुछ रही नहीं जाता तो भी अपने मरने के समय तक जो कुछ थोड़ा सा समय बाकी रह गया है उससे मैं रो धोकर आप लोगों को ज्यादः तंग नहीं करूँगा। इस प्रकार का अज्ञान हमेशा रहेगा नहीं—क्योंकि ऐसा होने से एक बुराई की जड़ कायम हो जायगी—बहुत शीघ्र उसका अंत होगा। अच्छा तो अब शिमी और शिबी, आप दोनों महाशय तैयार हो

जाइए, हम अब अपनी युक्ति का पासा फेंकते हैं। मेरी एक बात पल्ले बाँध लो। वह यह है कि मेरी बातें सुनते समय यह मत समझना कि कहनेवाला सुकरात है—केवल इसी बात का ध्यान रखना कि कहनेवाला सच कहता है या नहीं। यदि मेरी बात सत्य प्रतीत हो तो सहमत हो जाना। यदि अन्यथा प्रतीत हो तो तुम लोगों के जी में जो जो तर्क और शंकाएँ उठें उन सबसे मेरी बात का खंडन करते जाना और इस बात की भी चौकसी रखना कि तुम लोगो को निश्चय कराने की धुन मे कहीं मैं तुम्हें और स्वयं अपने को भी धोखा न दे बैठूँ और अपनी निस्सार युक्तियों को, बर्रे के टूटे हुए डंक की तरह, अपने पश्चात् नाश होने के लिये छोड़ता जाऊँ।

अच्छा, तो अब आओ अपने विषय को शुरू करें। मैं एक बार फिर से तुम्हारी शंकाओं को दोहरा जाता हूँ, जिसमे कहीं कुछ भूल समझ गया होऊँ तो ठीक हो जाय। अच्छा तो भाई शिमी, तुम्हारी शंका तो, जहाँ तक मैं समझा हूँ, यह है कि 'यद्यपि आत्मा शरीर से अधिक श्रेष्ठ और दिव्य गुणोंवाली है, तो भी एक सम स्वर की तरह उसकी बनावट होने के कारण वह शरीर से पहले ही नाश हो जायगी', और शिबी यह कहता है कि 'आत्मा शरीर से अधिक कष्ट-सहिष्णु है—सामर्थ्यवाली है—पर यह कौन कह सकता है कि बहुत से शरीरो को

धारण करते करते निर्बल होकर अंत को एक अंतिम शरीर छोड़कर वह नाश नहीं हो जायगी ? एक बार की मृत्यु से नहीं तो बार बार की मृत्यु से तो एक दिन आत्मा का नाश होगा ही, क्योंकि शरीर तो अनंत काल से नाश होता ही चला आता है। क्यों भाई शिवी और शिमी, यही सब या और कुछ भी है ?

शिवी और शिमी—नहीं, हम लोगों को और कुछ कहना नहीं है। आप हम दोनों के तात्पर्य को ठीक समझ गये हैं।

सुक०—अच्छा तो पहले हम लोगों ने जो सब सिद्धांत स्थिर किये थे उन सबों को खंडित समझा जाय या उनमें से कोई कोई सिद्धांत माना जाय ?

शिमी—थोड़े से सिद्धांतों को छोड़कर, बाकी के सभी माने जायँगे।

सुक०—अच्छा तो हम लोगों मे 'ज्ञान केवल पूर्वस्मृति है' यह सिद्धांत जो तय पा चुका है, उसके बारे मे तुम्हारी क्या राय है ? और इसके संग जो यह सिद्धांत स्थिर किया गया था कि जब ज्ञान स्मृति है तो इस शरीर में कैद होने के पहले हमारी आत्मा पहले भी अवश्य कहीं थी, इस सिद्धांत को भी मानते हो या नहीं ?

शिवी—निस्संदेह मानता हूँ। मुझे उसी समय से इस सिद्धांत पर पूरा निश्चय हो गया है और उससे विश्वास हटाने का इस समय मुझे कोई कारण नहीं दीखता।

शिमी—मेरी भी यही राय है। इस राय को बदलना मेरे लिये एक ताज्जुब की बात होगी।

सुक०—पर भाई साहब ! तुम्हें अपनी यह राय बदलनी पड़ेगी, क्योंकि तुम्हारी यह युक्ति कि 'स्वर एक सम्मिलित पदार्थ है और आत्मा शरीर के तत्त्वों से मिलकर बना हुआ एक स्वर विशेष है' यदि सही साबित हुई, तो तुम्हारी पहली राय टिक नहीं सकती। अच्छा क्या तुम यह बात मान लोगे कि 'उन पदार्थों के अस्तित्व के पहले, जिनकी मिलावट से स्वर उत्पन्न होता है, स्वर मौजूद था ?'

शिमी—ऐसा क्योंकर मान सकता हूँ ?

सुक०—पर जब यह मानते हो कि मनुष्य के शरीर मे प्रविष्ट होने से पहले आत्मा मौजूद थी और वह आत्मा शरीर के सम्मिलित तत्त्वों ही का परिणाम है, तो बिना ऐसा माने तुम्हें और दूसरा क्या उपाय है ? फिर तुम्हारा सम 'स्वर' वह पदार्थ नहीं रह जाता जैसा कि तुमने कहा है। सारंगी और ताँत तथा उसका शब्द, (जब तक स्वर मिलाया नहीं जाता) पहले आता है और इन सबों से मिलकर सम स्वर पीछे बनता है और सारंगी इत्यादि से पहले नाश हो जाता है। यहाँ इन तीनों चीजों से मिलकर स्वर बना, वह पहले कहीं नहीं था। इन तीनों चीजों के पहले सम स्वर स्पष्ट नहीं था। अब तुम मानते हो कि आत्मा शरीर में प्रविष्ट होने के पहले

से था, फिर कहते हो कि शरीर के भिन्न भिन्न तत्त्वों के यथोपयुक्त मेल से (स्वर की तरह) आत्मा की उत्पत्ति हुई है। क्या ये दोनों परस्पर विरुद्ध बातें तुम मानते हो ?

शिमी—नहीं, ऐसा क्योंकर मान सकता हूँ ?

सुक०—खैर, पर स्वर किस तरह बनता है, इस युक्ति में तो कोई भूल है हो नहीं ?

शिमी—नहीं।

सुक०—तब तुम्हारी युक्ति गलत है। अच्छा मैं तुम्हें एक बात का खुलासा कर देता हूँ जिसमे तुम्हें वैसी उलझन न पड़े। दो मे से एक बात चुन लो। जो सिद्धांत तुम्हें अधिक पुष्ट मालूम पड़े उसी को मान लो। या तो 'ज्ञान, पूर्व्व-स्मृति' है इसे मान लो या 'आत्मा एक सम्मिलित स्वर विशेष है' इसी सिद्धांत को मान लो। जिसे मानकर अपना पक्ष सबल समझो, उसी सिद्धांत को मान लो और दूसरे से इनकार कर दो, तब आगे चलेंगे।

शिमी—मैं तो भाई 'ज्ञान पूर्वस्मृति है' इसी पहले सिद्धांत को मानता हूँ। क्योंकि 'आत्मा एक सम्मिलित स्वर विशेष है' यह दूसरा सिद्धांत कभी मुझे खोलकर अच्छी तरह किसी ने समझाया नहीं है, केवल आम लोगों को कहते सुनकर, मैंने ऐसा स्थिर किया था। इसकी जड़ कुछ मालूम नहीं पड़ती। केवल संभावना के आधार पर यह टिका है। संभावनावाली बात—हो-

सकती है—होगी—इस नींव पर जो बात मानी जा रही है, ऐसे सिद्धांतों को मैं धोखे की टट्टी समझता हूँ और यदि कोई सावधान न रहे, तो इन सिद्धांतों के पीछे चलकर भ्रम में पड़ सकता है। पर पूर्वस्मृति और ज्ञान वाला सिद्धांत एक मजबूत सहारे पर टिका है और विश्वास करने योग्य है। मुझे इस बात पर पूरा विश्वास है कि 'शरीर में प्रविष्ट होने से पहले आत्मा मौजूद थी।' जैसे असली सत्ता या असली तत्त्वों के अस्तित्व मे मुझे विश्वास है वैसा ही इसमें भी है। और यह मुझे अच्छी तरह निश्चय करा दिया गया है कि 'असली तत्त्व' (परमात्मा) का अस्तित्व अवश्य है और इसका यथेष्ट प्रमाण भी मैं सुन चुका हूँ। अस्तु, तात्पर्य्य यह निकला कि मैं किसी के कहे से यह नहीं मान सकता कि आत्मा स्वर विशेष है और न मेरा दिल ही अब इस बात को स्वीकार करता है।

सुक०—अच्छा और एक दूसरी तरह से भी इस प्रश्न को विचारो। कोई 'स्वर विशेष' या दूसरा कोई मिश्रित पदार्थ कई पदार्थों से मिलकर बनता है। अच्छा तो जिन पदार्थों से मिलकर वह बना है, उन पदार्थों की जो अवस्था रहती है, उससे मिलकर बने हुए मिश्रित पदार्थ की भी वही अवस्था रहती है या नहीं ?*

---

*. कारण के गुण कार्य्य में रहते है या नहीं ?

शिमी—रहती है।

सुक०—तात्पर्य यह कि ये दोनों समान गुणवाले होते हैं। जो गुण कारण में रहते हैं, वे ही कार्य्य में भी दिखाई देते हैं। जिस हालत मे कारण रहेगा, कार्य्य को भी उसी हालत में रहना पड़ेगा। उसकी विरोधी अवस्था में वह रह नहीं सकता।

शिमी—बहुत ठीक।

सुक०—तो स्वर जिन तत्त्वों से बना है उन तत्त्वों का वह नायक नहीं बन सकता। उसे उन तत्त्वों के पीछे पीछे चलना पड़ेगा। अर्थात् जब पहले तत्त्व इकट्ठे होंगे तब स्वर निकलेगा। स्वर पहले ही निकल आवे और उसके पैदा करनेवाले तत्त्व पीछे से पैदा हों, यह असंभव है।

शिमी—बेशक।

सुक०—फिर यह अपने तत्त्वो का विरोधी कोई गुण भी प्रगट नहीं कर सकता अर्थात् जिन तत्त्वों से बना है उन तत्त्वों मे जो गुण हैं, उन गुणों के विरुद्ध कोई चाल या आवाज नहीं निकाल सकता।

शिमी—बहुत ठीक।

सुक०—अच्छा तो मिले हुए स्वर* से क्या मतलब है यह तो तुम समझते ही हो। मिले हुए स्वर से तात्पर्य यही है कि जिन पदार्थों से मिलकर वह बना है उनके

---

* सम स्वर।

वह सर्वथा अनुकूल हो। 'मिले हुए स्वर' का यह स्वर स्वभाव ही है।

शिमी—मैं ठीक समझा नहीं।

सुक०—देखो, खुलासा किए देता हूँ। जब स्वर मिलाकर स्वर चढ़ा दिया जाय (पंचम या सप्तम कर दिया जाय) तो वह चढ़ा स्वर कहलावेगा। जब घटाकर उतार दिया जाय तो वह उतरा स्वर (ऋषभ गांधार) कहलावेगा। यह स्वर बहुत चढ़ा है, या यह स्वर नीचा है, ऐसा कहते हैं या नहीं?

शिमी—कहते हैं।

सुक०—अच्छा अब यदि आत्मा को वैसा ही एक स्वर-विशेष मानोगे तो उसे भी स्वर की तरह बड़ा छोटा कहोगे। क्या यह कह सकते हैं कि यह आत्मा बड़ी है और यह आत्मा छोटी है? यह आत्मा सप्तम स्वरवाली और यह आत्मा ऋषभ स्वरवाली है? क्या आत्मा में ऐसा विभाग कर सकते हो?

शिमी—कदापि नहीं।

सुक०—एक बात तो बतलाओ। कोई आत्मा ज्ञानी, धार्मिक और सज्जन होती है और कोई अज्ञानी, पापी और दुष्ट होती है? क्यों होती है या नहीं?

—बेशक होती है।

सुक०—अच्छा अब जो लोग आत्मा को केवल एक सम स्वर-विशेष मानते हैं, वे आत्मा के इन भले और बुरे गुणों की क्या व्याख्या करेंगे? क्या इन्हें सम स्वर और विषम स्वर कहेंगे, सुरीला और बेसुरा जैसा कि गवैये लोग कहते हैं? अच्छी आत्मा सुरीली और बुरी आत्मा बेसुरी है क्या ऐसा कहेंगे? क्या अच्छी आत्मा का स्वर मिला* हुआ कहलाएगा और बुरी आत्मा बेसुरी कहलाएगी? आत्मा जब स्वयमेव ही एक सम† स्वर-विशेष ठहरी तो क्या फिर उसी आत्मा के भीतर एक विषम स्वर अर्थात् दूसरी विषम आत्मा भी मानोगे अथवा बुरी आत्मा को बेसुरी (स्वर-रहित‡) मानोगे?

फीडो—शायद शिमी इसका जवाब न दे सके, पर सिवाय इसके और क्या कहा जा सकता है?

सुक०—पर ऐसा तुम कह नहीं सकते क्योंकि यह पहले ही तय पा चुका है कि एक आत्मा दूसरी आत्मा से किसी प्रकार कमती बेशी नहीं है। खुलासा यह है कि हम लोग इस बात में सहमत हो चुके हैं कि एक स्वर (सम स्वर) सम ही है, विषम होने पर वह फिर सुरीला

---

* सुरीली।

† स्वर-रहित हुई तो फिर आत्मा ही नहीं रहेगी, क्योंकि आत्मा स्वर है (सम स्वर सुरीली है)।

‡ यहाँ 'स्वर' शब्द जहाँ जहाँ आया है उससे 'सम स्वर' ही समझना चाहिए।

स्वर नहीं कहला सकता अर्थात् फिर उसे सम स्वर नहीं कह सकते।

शिमी—बेशक।

सुक०—और सुरीला स्वर उसी को कहते हैं जो ज्याद: चढ़ा और ज्याद: उतरा नही होता। क्यों ऐसा ही है या नहीं?

शिमी—ठीक।

सुक०—अच्छा तो जो स्वर न ज्याद: चढ़ा है और न ज्याद: उतरा है वह सम स्वर है या नहीं?

शिमी—है।

सुक०—अच्छा तो अब यदि कोई आत्मा किसी दूसरी आत्मा से कम बेशी नहीं तो किसी आत्मा को विषम स्वर की आत्मा और किसी आत्मा को सम स्वर की आत्मा ऐसा क्या कह सकते हो?

शिमी—कदापि नहीं।

सुक०—अच्छा अब यदि धर्म्म को सम स्वर मानो और अधर्म्म को विषम स्वर मानो तो धार्म्मिक आत्मा को सम स्वर-वाली आत्मा और अधर्म्मी आत्मा को विषम स्वरवाली आत्मा मानना पड़ेगा, पर विषम स्वर जब हुआ तो वह आत्मा रही ही नहीं; क्योंकि तुम कहते हो कि तत्त्वों के यथोपयुक्त मिलावट से सारंगी के मिले हुए सम स्वर की तरह आत्मा की उत्पत्ति है। जैसे बेसुरी सारंगी से

सम स्वर या सुरीला स्वर नहीं निकलता वैसे ही अधर्म्मी आत्मा को यदि बेसुरी (विषम स्वरवाली) मानो तब वह आत्मा ही नहीं रह जायगी।

शिमी—ठीक।

सुक०—और भी साफ यह है कि यदि अधर्म्म, विषम स्वर है और 'विषम स्वर' जब तक सम न हो आत्मा बन नहीं सकती और जब अधर्म्मी आत्मा मौजूद है तो इसकी मीमांसा क्योंकर होगी ? यदि आत्मा सम स्वर है तो फिर अधर्म्मी आत्मा होनी ही नहीं चाहिए, सब आत्माएँ धार्म्मिक होनी चाहिएँ, क्योंकि सम स्वर कभी विषम स्वर नहीं होता।

शिमी—बेशक।

सुक०—और यदि आत्मा पूर्ण हुई तो उसमे कभी कोई पाप स्पर्श करेगा ही नहीं।

शिमी—निस्संदेह।

सुक०—तो इन युक्तियों का सार यह निकला कि यदि स्वर की तरह सब की आत्मा सम स्वर है तो सब आत्माएँ एक सी होनी चाहिएँ।

शिमी—बेशक।

सुक०—पर क्या ऐसा है ? यदि तुम्हारी यह दलील कि 'आत्मा एक सम स्वर विशेष है '' सही होती तो फिर इस जड़ पर कायम की हुई युक्तियों की क्या दशा होती ?

शिमी—बेशक दुर्दशा होती।

सुक०—अच्छा और एक बात सुनो। आदमी में जितनी चीजें हैं उन सबों में आत्मा और विशेषकर ज्ञानी आत्मा ही शरीर को वश में रखती है या नहीं ?

शिमी—निस्संदेह रखती है।

सुक०—अच्छा वह आत्मा शारीरिक वासनाओं के वश हो जाती है या उन वासनाओं को रोकती है? और भी खुलासा किए देता हूँ। देखो जब शरीर को भूख प्यास लगती है तो ऐसा क्या कभी नहीं होता कि आत्मा जबर्दस्ती उसे खाने पीने से रोक दे या इसी तरह शरीर की हजारों तरह की वासनाओं को समय समय पर लगाम देकर वह रोक देती या नहीं ?

शिमी—बेशक रोकती है।

सुक०—पर यदि यह मान लिया कि 'आत्मा एक सम स्वर है' बँधी हुई गत है, तब वह अपनी बँधी हुई लय के विरुद्ध कभी कोई स्वर नहीं निकाल सकती या जिन तत्त्वो से वह बनी है उन तत्त्वो के गुणों के विरुद्ध वह जरा भी इधर उधर टसक नहीं सकती, अपनी बँधी हुई गत से जरा भी इधर उधर नहीं हो सकती, जैसे कि एक बँधा हुआ स्वर जिस पर्दे पर बाँधा गया है उसी पर्दे का स्वर देता है, इधर उधर की कोई लय या तान नहीं दे सकता। उसे उन्हीं तत्त्वो के पीछे पीछे चलना पड़ेगा,

वह तत्त्वों को अपने पीछे चला नहीं सकता। क्यों, यह बात ठीक है या नहीं ?

शिमी—बहुत ठीक है।

सुक०—अच्छा अब आत्मा की ओर देखिए। यह तत्त्वों के पीछे चलती है या तत्त्वों को अपने पीछे चलाती है। यदि जिन तत्त्वों से (पंच भौतिक स्वर से) बनी हुई तुम इसे मानते हो, उन तत्त्वों के पीछे न चलकर, उन तत्त्वों को अपने वश मे रखती हुई दिखाई देती है तो फिर यह बात क्योंकर सिद्ध हो सकती है कि आत्मा पंचभौतिक सम स्वर की तरह है। देखो आत्मा शारीरिक तत्त्वों को बराबर बाधा देती है। वह भूख प्यास, काम क्रोध, लोभ मोह इत्यादि को समय समय पर वश में करती, इंद्रियों के विषयों को रोककर उन पर हुकूमत चलाती, आलस्य आने पर शरीर से जबरदस्ती कसरत करवाती, कुवासना और बुरी सगत से मनचले घोड़े की तरह शरीर की लगाम को खींचकर रास्ते पर लगाती और हर दम शरीर को धर्म्म का शासन देती रहती और सन्मार्ग में चलने के लिये धमकाती रहती है। कई प्राचोन ऋषियों ने भी शारीरिक वृत्तियों को वश मे रखने की शिक्षा दी है और इसे दृष्टांत द्वारा दिखाया है। कइयों ने आजन्म ब्रह्मचर्य्य धारण किया है। यह सब क्या वे लोग कर सकते या कह सकते यदि आत्मा को एक सम स्वर

विशेष माने होते और उसे शरीर की कुवासनाओं के वश में चलनेवाली माने होते ? क्योंकि यदि आत्मा शरीर से भिन्न, उत्तम, श्रेष्ठ, दिव्य-गुण-युक्त न होती तो शरीर को वश मे क्योंकर रख सकती थी ? यदि वह शरीर ही की परिणामस्वरूपा स्वर-विशेष होती तब तो वह शरीर की इच्छा या वासना के विरुद्ध कभी कोई काम कर ही नही सकती, पर बराबर ऐसा करने की सामर्थ्य रखती है, यह बात तुम मानते हो या नहीं ?

शिमी—बेशक मानता हूँ।

सुक०—तब तुम्हारा यह कहना कि 'आत्मा एक सम स्वर-विशेष है' बिलकुल गलत है। क्योंकि यदि ऐसा मानोगे तो ऊपर की मानी हुई सारी बातें गलत माननी पड़ेंगी, जिन्हें कि तुम अभी सही मान चुके हो।

शिमी—हाँ, सो तो ठीक है।

सुक०—बहुत अच्छा, तब मैं समझता हूँ कि तुम्हारी स्वर-वादिनी देवी को ज्यों त्यों कर मैं शांत करने में सफल हो गया हूँ। अच्छा अब शिबी के बड़े तर्कदेवता की पारी है। अब इस महादेव को किस युक्ति से शांत किया जाय ?

शिबी—आपके सिवाय और किसे वह युक्ति मालूम होगी ? जिस ढँग से आपने "आत्मा सम स्वर है" इस सिद्धांत का खंडन किया है, उस ढँग की खूबी को देखकर मेरी

बुद्धि चकित हो रही है। जिस समय शिमी की यह शंका मैंने सुनी थी तो मैं बड़ा विस्मित था कि इस शंका का समाधान क्योंकर किसी से हो सकेगा ? पर आपके जबान हिलाते ही उसकी शंका को हवा होते देखकर मेरे विस्मय का ठिकाना नहीं रहा ! क्या ताज्जुब कि मेरे महादेव की भी वही दशा हो ?

सुक०—देखो भाई शिवी ! अधिक अभिमान अच्छा नहीं। कहीं ऐसा न हो कि किसी की दृष्टि लग जाय और जो कुछ युक्तियाँ सोची गई हैं, वे भी गड़बड़ में पड़ जायँ। खैर, भगवान् की जो मरजी है, सो ही होगा। हमे हिम्मत नहीं हारनी चाहिए और अब तुम्हारी शंका को पुनः दोहराकर, अपनी युक्ति को लगाना शुरू करता हूँ। तुम्हारे सारे कथन का निचोड़ यह है कि—'आत्मा सदा अजर और अमर है, यह सिद्ध किया जाय; क्योंकि यदि आत्मा ऐसी न हुई, तो फिर ज्ञानियों का यह विश्वास करना, कि मृत्यु के बाद परलोक मे उनको बड़ी उत्तम गति प्राप्त होगी, बिलकुल मूर्खता साबित हो जायगा और उनका जन्म भर का संयम मिट्टी में मिल जायगा।' तुम कहते हो कि—'आत्मा को श्रेष्ठ, सामर्थ्यवाली और दिव्यगुणयुक्त सिद्ध कर देना ही यथेष्ट नहीं है, क्योंकि इससे वह निश्चित अजर अमर सिद्ध नहीं हो सकती। इससे केवल यही सिद्ध होता है कि उसकी उम्र बड़ी है,

मियाद लंबी है और अपनी इस मियाद में अर्थात् कई पूर्व जन्मों में उसने बहुत से काम किए और फल भोगे। यह सब कुछ करने पर भी वह सदा के लिये अजर अमर क्योंकर हो गई? तुम्हारा कहना यह है कि जब से उसने मनुष्य के शरीर में प्रवेश करना शुरू किया तभी से उसके पीछे रोग लग गया और उसके नाश का बीज बोया गया और इस प्रकार से कष्ट भोगते भोगते अंत को किसी एक जन्म मे उसका नाश हो जाता है। तुम यह भी कहते हो कि जब इस बात का कुछ निश्चय है ही नहीं कि कौन सा आखरी शरीर है तो सब लोगो का मृत्यु से डरना स्वाभाविक है। मैं जहाँ तक समझता हूँ, तुम्हारी शंका का निचोड़ यही है। मैं बार बार इसका उल्लेख इसलिये कर रहा हूँ कि कोई बात छूट न जाय और तुम्हें इसमें कोई बात घटाना बढ़ाना हो तो वह भी कर सको।

शिवी—आपने जैसा कहा, वही मेरा तात्पर्य है। मुझे इसमें कोई बात घटानी बढ़ानी नहीं है।

इसके बाद गुरुजी (सुकरात) कुछ देर तक चुपचाप बैठे हुए, कुछ सोचते रहे, फिर बोले—"तुम्हारी बात का जवाब देना हँसी खिलवाड़ नहीं है। उत्पत्ति और नाश के सारे सिद्धांतों की छानबीन करनी पड़ेगी। खैर, तुम यदि उचित समझो तो मैं तुम्हें अपनी बीती सुना

सकता हूँ और मेरे इस अनुभव से यदि तुम्हें कोई बात मिल गई तो इससे तुम अपनी शंका के समाधान में सहायता ले सकते हो।"

शिवी—बेशक, मैं आपके अनुभव को सुनने की बड़ी लालसा रखता हूँ।

सुक०—खैर, तो अब कहता हूँ, सुनिए—जब मैं युवा था, उस समय मुझे प्रकृति-विज्ञान (Physical science) के जानने का बड़ा शौक था, और हर एक चीज के कार्य्य कारण और उत्पत्ति विनाश का पता लगा लेना मैं बड़ी बात समझता था। केवल शीत उष्ण के संगम से प्राणियों की उत्पत्ति है; या वायु अग्नि या रक्त इत्यादि उनकी उत्पत्ति का कारण है; या यह सब कुछ नहीं है, केवल मस्तिष्क (दिमाग) ही सब बातों का मूल है, जिससे दर्शन, श्रवण, घ्राण, रसना इत्यादि की उत्पत्ति है; अथवा मन, वासना, इच्छा, स्मृति ये सब इसी दिमाग और इंद्रियों से संबंध रखते हैं? इत्यादि इन्हीं सब बातों में मेरा दिमाग चक्कर खाया करता था। इन पदार्थों के नाश और लय की भी मैं परीक्षा करने लगा तथा पृथ्वी और आकाश में जो जो परिवर्तन होते हैं उनकी भी जाँच मैंने शुरू कर दी। इन सब पचड़ों में पड़कर अंत को मैंने यही परिणाम निकाला कि इन सारी विद्याओं के सीखने में मैं बिलकुल अयोग्य हूँ। आगे, मैं तुम्हें यह

बात साबित कर दूँगा। इन बातों के सीखने की धुन में मैं ऐसा लीन हो गया, कि पहले जो कुछ अच्छी तरह जानता भी था, वह भी भूल जाने लगा, यहाँ तक कि पहले का सारा सीखा सिखाया चौपट हो गया। और की तो क्या मनुष्य की वृद्धि और पुष्टि का कारण भी मैं भूल गया। पहले तो मैं प्रत्यक्ष प्रमाण से यह जानता था कि मनुष्य की बुद्धि और पुष्टि भोजन पान से होती है और वही भोजन पचकर मांस बनता है और मांस मे मांस तथा हड्डी में हड्डी बढ़-बढ़कर शरीर को बढ़ाती है और इसी प्रकार से शरीर के और सब तत्त्व भी यथाक्रम बढ़ते और बालक को पट्ठा जवान मर्द बना देते हैं। अब तुम्हीं बतलाओ, मेरा यह विश्वास युक्तियुक्त था या नहीं?

शिवी—निस्संदेह युक्तियुक्त था।

सुक०—यह तो हुई एक अनुभव की बात। अब दूसरे अनुभव का भी हाल सुनो। जब मैं किसी लंबे आदमी को एक नाटे आदमी के बगल में खड़े देखता तब, वह उक्त नाटे आदमी से मुट्ठी भर बड़ा है, ऐसा निश्चय कर लिया करता था, ठीक जैसे छोटे बड़े घोड़े के बारे मे लोग निश्चय किया करते हैं; और इस सिद्धांत मे भी मुझे कोई संदेह नहीं था कि दस की संख्या आठ से दो संख्या अधिक है अथवा कोई दो हाथ लंबी चीज एक हाथ लंबी चीज से दुगुनी बड़ी है।

शिवी—तो अब क्या ऐसा नहीं मानते ?

सुक०—सच पूछो तो बात यह है, कि इन सब बातों का असली कारण मैं जानता हूँ, ऐसी प्रतीति मुझे नहीं है। यदि तुम पूछो कि क्यों ? तो मेरा उत्तर यह है कि मुझे दोनों में से एक बात का भी निश्चय नहीं है; एक तो यह कि जिस एक में दूसरा एक जोड़ा गया है वही पहला एक दो हो गया अथवा वह जुड़नेवाला एक और जिस एक में वह जोड़ा गया है वे दोनों आपस में जुड़-कर दो हो गए हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि केवल दो एकाई को अगल बगल रख देने से, इनका यह संयोग इन्हे क्योंकर दो बना देता है और जब दोनों अलग थे तो एक ही एक थे, दो नहीं थे ? और मजा यह है कि जब एक को दो से भाग देते हैं, तो उस संख्या को दो होते देखकर यह भी समझ में नहीं आता कि एकाई यहा दो क्योंकर हो गई ? क्योंकि यह दोनों दफ: एक का दो होना दो प्रकार के परस्पर विरुद्ध कारणों से हुआ है। पहले तो दोनों एकाई के इकट्ठे होने से दो हुआ, अर्थात् जब एक एकाई में दूसरी एकाई जोड़ी गई तब दो हुआ और अब देखते हैं कि जब एक एकाई दूसरी से अलग की गई अर्थात् विभाजित की गई (भाग दी गई) तो दो हो गई, जैसे एक का जब दो भाग करो तो दो हो जाता है। अब मैं अपने मन को क्या समझाऊँ कि एक

की उत्पत्ति किस तरह से हुई है। तात्पर्य यह कि इस तरीके से मुझे किसी चीज के भी उत्पत्ति और विनाश का कारण मालूम नहीं हुआ, एक दूसरे तरीके का कुछ कुछ टेढ़ा सीधा आभास तो मेरे मन में है भी, पर उपर्युक्त तरीके को तो मैं क्षण भर के लिये भी मान नहीं सकता। अब और एक नया गुल खिला। बात यह हुई कि एक दिन मैंने एक आदमी को एनक्सागोरस की किताबें पढ़ते सुना, जिसने मन को ही सारी चीजों का स्वामी बतलाया है। मुझे यह सिद्धांत सुनकर प्रसन्नता हुई और यह बात ठीक प्रतीत होने लगी कि निस्संदेह मन ही सारी चीजों का कारण हो सकता है और तब मन सारी चीजों को ठीक ठीक उचित रीति से और यथासंभव उत्तम प्रकार अपने अपने ठिकाने सजाकर उनका स्थान भी अवश्य निर्देश कर देगा। इसलिये अब यदि हमें किसी चीज की उत्पत्ति, स्थिति या विनाश का कारण जानना हो तो उसका सबसे उत्तम उपाय यही होगा कि इस बात की खोज की जाय कि उस चीज की स्थिति और उसे काम में लाने या उस पर कोई प्रभाव डालने का सबसे उत्तम उपाय कौन सा है। इसलिये अब मनुष्य का कर्तव्य यही रह गया कि अपने लिये सबसे उत्तम और योग्यतम उपाय खोज निकाले या अन्य चीजों के बारे मे भी ऐसा ही करे और ऐसा करने ही से उसे बुराई का

भी पता लग जायगा, क्योंकि भले बुरे दोनों का ज्ञान एक ही विद्या द्वारा होता है। इन सब बातों के विचार-स्वप्न ने मुझे बड़ा प्रसन्न किया, और मैंने सोचा कि एनक्सागोरस की शिक्षा मेरे मन मुताबिक है और इससे अपनी रुचि के अनुसार मुझे सारी चीज़ों की स्थिति का पता लग जायगा और मन में यह आशा बँध गई कि पहले तो यह मुझे पृथिवी के आकार का पता बतलावेगा कि यह गोल है या चिपटी और फिर यह बतलावेगा कि कार्य्य कारण का संबंध क्या है और यह भी निश्चय करावेगा कि पृथिवी का अमुक आकार का होना ही उसके लिये सर्वोत्तम है। यदि वह कहता कि पृथिवी ब्रह्मांड के बीचोबीच है तो मैंने समझा कि वह यह भी बतलावेगा कि पृथिवी का उसी स्थान में रहना ही सर्वोत्तम है। यदि वह केवल इतना ही बतला देता तो मैं फिर उससे और दूसरे कारणों की पूछताछ नहीं करता। इसी प्रकार से चाँद, सूरज, ग्रह, उपग्रह, तारामंडल इन सबों की गति, चाल ढाल और उलट फेर के बारे में भी मैं छानबीन करनेवाला था और इस बात को जानना चाहता था कि जिस अवस्था में वे सब हैं और जिस ढँग पर चल रहे हैं उसी अवस्था में रहना और उसी ढँग पर ही उनके लिए सबसे उत्तम है। यह मुझे कभी भी गुमान नहीं था कि जब उसने मन ही को सारी चीजों

का मुख्य कारण बतलाया है तो इन सबों के सर्वोत्तम होने के कारण के सिवाय इनकी स्थिति का वह और भी कोई कारण बतलावेगा। मैंने सोचा था कि वह हर एक चीज का एक एक कारण बतलावेगा और ब्रह्मांड का भी एक कारण बतलावेगा और यह बतलाता चलेगा कि अमुक अमुक चीजों का जो अमुक अमुक कारण है वही कारण उनके लिए सर्वोत्तम है, इसके सिवाय उन्हें और कोई सर्वोत्तम गति नहीं है और इसी प्रकार से सबके लिए; सबको एक समान लाभ पहुँचानेवाला उपाय कौन सा है? यदि ऐसी आशा न होती तो मैं कभी भी इसके पीछे इतना परिश्रम नहीं करता। मैंने इन पुस्तकों को लेकर बड़े आग्रह से जल्दी जल्दी पढ़ना आरंभ किया जिसमें फौरन् मुझे अच्छे बुरे का भेद मालूम पड़ जाय। पर भाई साहब! सच कहता हूँ कि मेरी ये सारी आशाएँ मिट्टी में मिल गईं, क्योंकि ज्यों ज्यों मैं इन पुस्तकों को पढ़ता गया त्यों त्यों पता लगता गया कि लेखक ने कहीं भी मन को खड़ा नहीं किया है और न पदार्थों के श्रेणी, क्रम, विभाग ही का कोई कारण बतलाया है। वरन् उसने वायु, ईथर (आकाश) और पानी तथा और भी विचित्र विचित्र तत्त्वों को ला खड़ा किया। उसकी बात मुझे ठीक इसी तरह की मालूम हुई, जैसे कि पहले कोई यह कहे कि सुकरात सारे

काम मन से करता है और अब यदि मैं उससे अपने सारे कामों या किसी काम करने का कारण पूछना चाहूँ तो और ही जवाब देवे, जैसे कि मैं "यहाँ क्यों बैठा हूँ" यदि यह प्रश्न करूँ तो यह जवाब देवे कि "मेरा शरीर हड्डी और पट्ठों से बना है और हड्डियाँ सख्त हैं तथा इनमें जगह जगह जोड़ हैं और पट्ठे ढीले हो सकते हैं और तन भी सकते हैं। वही हाल मांस और चमड़े का भी है जो सब मिलकर हड्डी को ढँके हुए हैं, और इसलिये जब हड्डी अपने स्थान से उठाई जाती है, तब पट्ठों को ढीला करने और सिकुड़ने से मेरे अंग मुड़ते हैं और यही कारण मेरे यहाँ पैर मोड़कर बैठे रहने का है।" अब यदि कोई पूछे कि मैं तुम लोगों से बात-चीत क्यों कर रहा हूँ तो उसका कारण वह बतलावेगा, वायु, शब्द तथा श्रवणेंद्रिय के कारण यह सब बातचीत हो रही है। इसी प्रकार के सहस्रों कारण बतला डालेगा, पर असली कारण बतलाने का उसे कभी ध्यान ही नहीं आवेगा जो यह है कि मैं यहाँ इस कारण बैठा हूँ कि एथेंसवासियों ने मुझे अपराधी ठहराना उचित समझा और उनके दंड को मानकर यहाँ बैठे रहना मैंने अपना धर्म समझा, क्योंकि यदि यहाँ बैठे रहना मैं अपना धर्म न समझता और राज्य के दंड को न मान-कर भाग गया होता तो अब तक ये हड्डियाँ और मांस

तथा पट्टे सब मिगारा, बोशिया या अन्य किसी अजनबी नगर मे होते। यदि इस शरीर की सिखावन की ओर ध्यान देता और शरीर को जो प्रिय है उसी के अनुसार चलता तो अवश्य ही धर्म को छोड़कर इस समय यह हाड़ मांस कहीं अन्यत्र ही दिखाई देता, फिर मैं यहाँ न बैठा रहता। अब यदि मेरे यहाँ बैठे रहने का कारण इन्हीं हाड़ मांस को बतलाया जाय तो निरी मूर्खता की बात होगी या नहीं? यदि कोई यह कहे कि बिना हाड़ मांस या शरीर के मैं अपने मन की, क्योंकर, कर सकता था, तो उसका कहना ठीक मान भी सकता हूँ; पर किसी का यह कहना कि मेरी कुल क्रिया (करने) का एक मात्र कारण यही है, और इसी को मन द्वारा करना कहते हैं (विवेक द्वारा नहीं) तो यह निरी उड़ो पुड़ी बात मानी जायगी। इसका सीधा सादा अर्थ यह है कि संसारी लोग उस असली कारण को जिसके बिना कारण, कारण हो नहीं सकता, पहिचान नहीं सकते और अँधेरे में टटोलते हुए ऊपरी बातों को कारण के नाम से पुकारने लगते हैं। इनमें से कोई कहता है कि पृथ्वी एक बवंडर से घेरी हुई है और इसी कारण से आकाश में स्थित है। कोई कहता है कि पृथ्वी एक चिपटी ठोस अथरी की तरह है और वायु के आधार पर टिकी हुई है। इसी तरह से लोग तरह तरह की बातें कहते हैं पर

यह किसी को नहीं सूझता कि इन सारी चीजों को यथोपयुक्त नियम में रखनेवाली कोई शक्ति भी है या नहीं, और न उन्हें यही ध्यान में आता है कि वह कैसी दिव्य शक्ति है और उसमें क्या क्या अलौकिकता है। वे केवल भूमंडल के उठानेवाले अटलस देव हो से सिर मारा करते हैं, जिससे कि एक ही जगह सारी पृथ्वी दिखाई देती है, और यही मानते हैं कि इसी देव ने सारे भूमंडल को एक ठौर बाँध रखा है, और क्षण भर के लिए भी नहीं सोचते कि भूमंडल किसी भलाई के (धर्म के) बंधन में बँधा हुआ है, जिससे बँधा हुआ वह अपने नियत क्रम से इधर उधर नहीं होता। वह कौन सा बंधन है ? और किस प्रकार का बंधन है ? इस तत्त्व के कारण को किसी से भी सीखने के लिए मैं बड़ा उत्सुक रहता हूँ, पर न तो किसी से सीख ही सका और न मुझे स्वयमेव ही इसका कुछ पता लगा। खैर, यह लक्ष्य तो यों व्यर्थ गया पर अपने धनुष के लिए मैंने दूसरा गुण भी रख छोड़ा था। क्यों भाई शिवी, तुम्हारी मरजी हो तो अब अपने दूसरे शर-संधान और लक्ष्य की कहानी भी कह सकता हूँ।

शिवी—अवश्य कहिए, मैं सुनने के लिये तैयार हूँ।

सुक०—जब मैंने पदार्थ की असली स्थिति की खोज करना छोड दिया तो मुझे यह भी विचार उत्पन्न हुआ कि कहीं

मुझे उस पीड़ा का शिकार न हो जाना पड़े, जो पीड़ा लोगो को ग्रहण के समय सूर्य्य की ओर देखने से हो जाती है। क्योंकि यदि पानी या अन्य किसी चीज के बीच से वे सूर्य्य को नहीं देखते तो आँख की पीड़ा ले बैठते हैं। इसी खतरे का ख्याल मेरे दिल में भी गुजरा। मुझे खटका हुआ कि यदि मैं इन चीजो को इन आँखों द्वारा देखने अथवा इन इंद्रियों द्वारा समझने की चेष्टा करूँगा तो मेरी आत्मा बिलकुल अंधी हो जायगी। इस-लिये मैंने इस सत्य को स्वानुभव द्वारा जाँचने की ठानी। शायद मेरा वर्णन बिलकुल सही नहीं है। जो हो, मैं इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं कि जो लोग आत्मानुभव द्वारा, पदार्थ के तत्त्वों की जाँच करते हैं वे केवल प्रतीक छाया के पीछे चल रहे हैं। मेरी समझ में तो जो लोग दृश्य पदार्थों द्वारा कारण की जाँच करते हैं उनकी हालत भी कुछ बेहतर नहीं। खैर जो हो, मैंने जिस तरह जाँच शुरू की, वही कहता हूँ। मैंने हर बात में सबसे पुष्ट एक सिद्धांत को पहले मान लिया। अब इस सिद्धांत से जो मेल खाया उसे सच्चा माना (चाहे कारण या और भी कोई चीज हो) और जो इससे मेल न खा सका उसे झूठा समझा। मैं अपने तात्पर्य को जरा और भी खुलासा करके कहना चाहता हूँ। मेरी समझ में तुम लोग मेरी बात को ठीक ठीक समझ नहीं रहे हो।

शिवी—बेशक, बात तो ऐसी ही है।

सुक०—मैं कोई नई बात नहीं कहता, वही पहले की बार बार दोहराई हुई बात को फिर भी कह रहा हूँ, जिसका जिक्र आज और इसके पहले भी कई बार कर चुका हूँ। मैं तुम्हें उस 'कारण' के किस्म का पता बतलाऊँगा, जिस पर चलकर मैंने अनुभव प्राप्त किया है, और फिर वही अपनी पहली कही हुई बात को दोहराऊँगा, कि 'स्वतंत्र सत्ता' भी कोई चीज है; जैसे कि "सौंदर्य्य सत्ता", "धर्म्म की सत्ता", बड़ाई और छुटाई अर्थात् "नाप जोख की सत्ता" इसी प्रकार की स्वतंत्र सत्ताओं का वर्णन करूँगा। यदि तुम यह मानते हो कि स्वतंत्र सत्ता कोई चीज है और इस प्रकार की सारी सत्ताएँ हैं तो मैं समझता हूँ कि शायद मैं तुम्हे अपने अनुभूत 'कारण' के किस्म का पता बतला सकूँगा और इसके साथ आत्मा को भी नित्य साबित कर सकूँगा।

शिवी—आप मान लीजिए कि हम लोग यह सब मानते हैं। अब अपने प्रमाण कहिए।

सुक०—अच्छा तो अब जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे तुम मानते हो? यही कि यदि कोई चीज "सौंदर्य्य की सत्ता" के सिवाय कहीं सुंदर दिखाई पड़े, तो हम यही कहेंगे कि यह सुंदर इसलिये है कि इसमे "सौंदर्य्य की सत्ता" का अंश विद्यमान है। इसी प्रकार से और भी सारी

चोजों के बारे में कहेंगे। क्यों, मेरे इस कार्य्य-कारण के संबंध को तुम मानते हो या नहीं ?

शिवी—मानता हूँ।

सुक०—ठीक, तो मैं अब और सब निपुणाई के बड़े बड़े कारणों को मानने की कुछ जरूरत नहीं समझता और न वे मेरी समझ ही मे आते हैं। यदि मुझसे कोई यह कहे कि अमुक चीज सुंदर इसलिये है कि उसका रंग चटकीला है, बनावट सुडौल है; यदि वह इस प्रकार के तरह तरह के विशेषण कहने लगे तो मैं उसकी एक बात नहीं मानूँगा, क्योंकि इन बातों के मानने से मेरी समझ मे गड़बड़ पड़ जाती है, मैं तो अपनी उसी सीधी सादी गँवारी भाषा के उसी सीधे सिद्धांत को पकड़े बैठा रहूँगा कि "यह चीज सुंदर इसलिये है कि इसके साथ सौंदर्य्य का संबंध है" अथवा "सौंदर्य्य की सत्ता" इसमे विद्यमान है—वह किस प्रकार का सौंदर्य्य है ? कैसा सौंदर्य्य है ? इस पर बहस करने की मैं कोई जरूरत नहीं देखता, मेरे लिये इतना ही काफी है कि यह "सौंदर्य्य की सत्ता" है जिसने उसे सुंदर किया है और जो सारी सुंदरता को सुंदर करती है* सबसे सहज और सुगम मुझे उत्तर यही सूझता है, जिससे कुछ खटका नहीं, क्योंकि इस

---

* "सौंदर्य्य की सत्ता" और सुंदरता (अर्थात् सुडौल, गोरा रंग इत्यादि) दो चीजें है। इस सिद्धांत को गोस्वामी तुलसीदासजी ने

प्रकार के जवाब से फिर मुझे कोई कायल नहीं कर सकता। यदि मैं इसी सिद्धांत को पकड़े बैठा रहूँ कि 'सौंदर्य की सत्ता' ही सारी चीजों के सुंदर होने का कारण है तो मेरी यह बात अचल, अटल मानी जायगी। क्यों ऐसा ही है या नहीं ?

शिवी—निस्संदेह ऐसा ही है।

सुक०—अच्छा तो परिमाण (कद) बड़ी चीजों को बड़ा और उनसे और भी बड़ी चीजों को और भी बड़ा तथा छोटी चीजों को छोटा और उनसे भी छोटी चीजों को और भी छोटा बनाता है अर्थात् बड़े छोटे होने का एक मात्र कारण परिमाण अर्थात् नाप जोख है। क्यों है या नहीं ?

शिवी—बेशक है।

सुक०—देखो, यदि तुमसे कोई आकर कहे कि अमुक आदमी अमुक आदमी से मुट्ठी भर लंबा है और उस लंबे आदमी से दूसरा आदमी ऊँचाई से मुट्ठी भर कम

"रामचरित मानस" में जानकीजी का रूप वर्णन करते समय बड़ी खूबी से दिखलाया है। वह चौपाई यों है—

'सुंदरता कहँ सुंदर करई। छबि गृह दीपशिखा जिमि बरई॥"

सुंदरता सौंदर्य्य की सत्ता (absolute beauty) भी जानकीजी के बिना अँधेरे में पड़ी हुई थी। जब जानकीजी प्रगट हुईं तो सुंदरता "सौंदर्य्य की सत्ता" के घर में चिराग बल गया अर्थात् तब सौंदर्य्य की सत्ता को अपने रूप दिखाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कैसी अलौकिक उपमा है ! धन्य तुलसीदास !!

है तो उसके इस बयान को मत मानो। तुम यही कहना कि बड़ा जो है वह अपने कद (परिमाण) के कारण बड़ा है और कद ही उसके बड़े होने का कारण है। और जो छोटा है वह अपनी छुटाई के कारण छोटा नहीं है, उसका कारण भी कद (परिमाण) ही है। यदि कहीं तुम यह कह बैठे कि अमुक आदमी, मुट्ठी भर बड़ा या मुट्ठी भर छोटा है, तो तुम्हें इस बात का भी खटका लगा रहेगा कि कोई यदि यह जवाब दे बैठा कि जब एक ही चीज अर्थात् केवल एक मुट्ठी, कभी किसी को बड़ा और कभी किसी को छोटा बना देती है और स्वयं वह है एक छोटी सी चीज अर्थात् 'एक मुट्ठी' तो क्या ही अजीब बात है कि वही एक छोटी सी चीज एक आदमी को बड़ा बना दे। क्यों, क्या इस जवाब का खटका तुम्हें नहीं रहेगा ?

शिवी ने हँसते हुए कहा—बेशक खटका रहेगा।

सुक०—और फिर यह भी कहते सहमोगे कि दस की संख्या आठ से ज्याद: दो की संख्या के कारण है, अथवा दो की संख्या इसे बड़ी बनानेवाली है; तुम्हारा जवाब तो यही होगा कि दस अपनी संख्या मे आठ से बड़ा है और संख्या ही इसके बड़े होने का कारण है। दो इसके बड़े होने का कारण नहीं है। वैसे ही दो हाथ लंबी चीज को एक हाथ लंबी चीज से बड़ा क्या तुम इस कारण से कहोगे कि वह एक हाथ लंबी की दुगुनी है या इस कारण

से कहोगे कि नाप मे, लंबाई मे, वह बड़ी है। नाप (परिमाण) उसके बड़े होने का कारण है, क्योंकि 'स्वतंत्र सत्ता' क्या पदार्थ है, अब कुछ समझे ?

शिवी—हाँ, कुछ कुछ।

सुक०—अच्छा और सुनो, तुम्हें यह कहते हुए भी खूब सावधान रहना पड़ेगा कि जब एक मे एक जोड़ा जाता है तो वह योग ही उनके दो होने का कारण है, अथवा जब एक का भाग किया जाता है वह भाग उसके दो होने का कारण है ? क्यों, क्या ऐसा सहसा कह डालोगे ?

शिवी—कदापि नहीं।

सुक०—कारण यह है, कि तुम्हारा मन जोर जोर से चिल्लाकर कहने लगेगा कि कोई चीज भी अपने खास तत्त्व के सिवाय दूसरे कारण से उत्पन्न नहीं हो सकती। दो जगह एक एक संख्या जब तक इकट्ठी न हो तब तक दो की उत्पत्ति हो नहीं सकती, इसलिये जितने दो हैं, उन्हें द्वित्त्व के गुण को धारण करना आवश्यक है। वैसे ही एकाई का एकत्त्व का गुण धारण करना स्वाभाविक है। इस जोड़ और भाग का निर्णय तथा ऐसी ही सूक्ष्म बातों को तुम्हें अपने से अधिक दूसरे बुद्धिमान् आदमियों के लिये छोड़ देना ही उचित होगा। तुम्हें इस पचड़े से अवश्य भय मालूम होगा और यदि वही अपने एक सिद्धांत को पकड़े बैठे रहोगे, जिस पर बैठे रहने से तुम्हें

अपने तर्क मे कोई भ्रम या प्रमाद नहीं आ सकता तो बेखटके होकर जवाब दे सकोगे। पर यदि कोई तुम्हारे उस सिद्धांत ही का खंडन करना शुरू कर दे तो उस समय तुम्हें बहुत सावधान रहना चाहिए और तब तक जबान नहीं हिलानी चाहिए जब तक तुम्हें यह निश्चय न हो जाय कि तुम्हारी बात सीधी पड़ेगी या नहीं, और जब अपने सिद्धांत का पक्ष समर्थन करोगे भी तब पहले सबसे पुष्ट सर्वमान्य किसी दूसरे सिद्धांत को सामने रखकर अपने सिद्धांत को उससे मिलाते हुए चलना, जब तक कि दोनों का ठीक मेल न खा जाय इसकी जाँच करते रहना चाहिए। यदि तुम्हें किसी असली बात की खोज है तो अपने सिद्धांत की बातों को अपनी बहस में मिला जुला मत देना। असली तत्त्व के खोजनेवाले कभी भी अपने सिद्धांत के बारे में तब तक एक शब्द भी मुँह से नहीं निकालते जब तक कि वह अन्य सर्वमान्य पुष्ट सिद्धांत के मुकाबले में सही साबित न हो जाय। चाहे तर्क की बातें दूसरों को गड़बड़ाध्याय मालूम पड़ें पर वे सत्य के खोजनेवाले के लिये अमृत हैं और उसका संतोष करनेवाली हैं। खैर, जो हो, तुम लोग यदि सच्चे ज्ञानी हो, तो अवश्य ही मेरे बताए हुए मार्ग पर चलोगे।

"बेशक, बहुत ठीक" शिबी और शिमी दोनों एक साथ ही बोल उठे।

इश०---इनका कहना बहुत ठीक था। भाई फीडो! मैं सच कहता हूँ कि कुंद से कुंद दिमाग के आदमी के भी जेहन मे यह बात आ जायगी। गुरुजी की युक्ति की प्रणाली ऐसी स्पष्ट और संतोषदायक है।

फीडो---हाँ, भाई इशक्रुत! उस समय वहाँ बैठे हुए हम सब लोगों के मन ने भी इस बात को स्वीकार किया था।

इश०---यह कोई आश्चर्य्य नहीं। तुम्हारी कहानी सुनकर यहाँ भी हम लोगो के मन की वही अवस्था हो रही है। खैर, तो अब आगे गुरुजी का युक्तिप्रवाह किस तरह चला, सो भी कहो।

फीडो---उस समय वहाँ इस बात को तो सब लोग स्वीकार कर ही चुके थे कि हर तरह की 'सत्ता' नित्य है और जितने दृश्यमान पदार्थ हैं सब उसी सत्ता के नाम से प्रगट हैं। अस्तु, इसके बाद गुरुजी (सुकरात) ने फिर यों पूछा---

सुक०---अच्छा, यदि यह बात तुम लोगों को स्वीकार है (सत्ता की नित्यता) तो मेरे एक प्रश्न का जवाब दो। जब तुम यह कहोगे कि शिमी, सुकरात से लंबा है और फीडो से नाटा है, तो इससे क्या यह मतलब नहीं निकलता कि शिमी में नाटापन और लंबाई दोनों प्रकार के गुण मौजूद हैं?

शिमी---बेशक निकलता है।

सुक०—पर तुम यह भी बात मानते हो कि शिमी सुकरात से लंबा है, यह सिद्धांत बिलकुल सही नहीं है; क्यों सही नहीं है सो आगे दिखाता हूँ। शिमी इसलिये लंबा नहीं हो गया, कि वही शिमी है, वह लंबा इसलिये कहलाया कि उसका कद ऊँचा है (लंबा है) और सुकरात सुकरात ही है, इसी लिये शिमी कुछ सुकरात से लंबा नहीं है, पर सुकरात के नाटेपन के कारण वह लंबा है अर्थात् सुकरात का नाटापन और शिमी की लंबाई इन दोनों का जब मुकाबला किया गया तब शिमी लंबा कहलाया।

शिवी—ठीक।

सुक०—इस प्रकार से शिमी फीडो से कुछ इसलिये नाटा नहीं कहलाया कि फीडो फीडो ही है, यहाँ फीडो की लंबाई और शिमी के नाटेपन से जब मुकाबला हुआ तब शिमी नाटा कहलाया है।

शिवी—निस्संदेह।

सुक०—तो इससे यह बात निकली कि इस प्रकार से दो के मुकाबले मे शिमी लंबा भी है और नाटा भी है, एक के नाटेपन से वह अपने ऊँचे कद के कारण बढ़ गया और दूसरे की लंबाई ने उसे छोटा बना दिया। तुम लोग भी शायद मेरी बात को दस्तावेज की कानूनबंदी जबान समझ रहे होगे, पर पका सबूत पहुँचाने के लिये, ऐसा करना भी जरूरी है।

शिवी—ठीक है।

सुक०—बात को इतना बढ़ाकर समझाने से मेरा तात्पर्य यही है कि मैं जिस प्रकार इन बातों के स्वरूप को देख रहा हूँ, तुम लोगों की निगाह में भी ठीक वही स्वरूप आ जाय। मुझे यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि 'बड़ाई की सत्ता' जो वस्तु है वह कभी भी एक साथ ही बड़ी और छोटी भी हो नहीं सकती। मतलब यह कि हममे जो 'बड़ाई की सत्ता' है वह हमेशा बड़ी हो रहेगी, कभी छोटी हो हो नहीं सकती। दो मे से, एक बात अवश्य होगी—या तो अपने विपरीत गुण के निकट आने पर बड़ाई दूर हो जायगी या अपने विपरीत गुणवाली 'छुटाई' के पास होने पर बड़ाई का नाश ही हो जायगा।

यह कभी संभव नहीं कि वह (बड़ाई) ज्यो की त्यों स्थिर रहे और छुटाई को भी ग्रहण कर ले, जैसे कि देखो मैं सिद्धांत पर स्थिर हूँ और एक आदमी से बड़ा होकर भी दूसरे से छोटा हूँ। बड़ाई छुटाई दोनों को धारण करके भी सुकरात हूँ, पर 'असली सत्ता' जो बड़ाई की है वह छुटाई के पास आने पर फिर बड़ी नहीं कहला सकती, उसे अपनी बड़ाई त्यागकर छुटाई धारण करनी पड़ेगी। इसी प्रकार छुटाई की जो सत्ता है वह कभी भी बड़ी हो नहीं सकती। मतलब यह कि कोई वस्तु भी अपने विपरीत गुण के निकट आने पर फिर वही वस्तु रह नहीं सकती। यह कभी होने का नहीं कि वह अपने

विपरीत गुण को भी धारण कर ले और अपने गुण को भी धारण किए रहे। या तो उसे अपना पहला गुण त्यागना पड़ेगा या नाश हो जाना पड़ेगा।

शिवी—ठीक, मैं भी यही सोचता हूँ।

इसके बाद किसी ने, मुझे ठीक याद नहीं आता कि किसने, कहा—पर एक बात का संदेह और आ उपस्थित हुआ, क्योंकि आप लोगों को याद होगा कि बहस के आरंभ में यह सिद्ध किया गया था कि बड़ाई की उत्पत्ति छुटाई से होती है अर्थात् हर एक विपरीत पदार्थ अपने विपरीत ही से पैदा होता है, जैसे कि जन्म से मृत्यु और मृत्यु से जन्म, पर अब यह बतलाया जा रहा है कि ऐसी बात हो ही नहीं सकती। यह क्या बात है? मेरी समझ मे कुछ नही आता।

इस पर गुरुजी (सुकरात) ने उधर को मुँह फेरकर सुना और वे फिर बोले—"शाबाश, बहुत ठीक शंका की है, पर भाई साहब! दोनों प्रतिज्ञाओं का भेद तुमने लक्ष्य नहीं किया। पहले हमने यह जो कहा था कि 'हर एक चीज अपने विपरीत गुणवाली चीजो ही से उत्पन्न होती है' वह मिश्रित पदार्थों के बारे में था। मिश्रित पदार्थ (कई के योग से मिले हुए पदार्थ) अपने ही विपरीत गुणवाले पदार्थों से पुनः पुनः प्रगट होते हैं, पर इस समय चर्चा अमिश्र अर्थात् 'शुद्ध सत्ता'

की हो रही है और यह कहा जा रहा है कि कोई सत्ता भी अपनी विपरीत सत्ता को सह नहीं सकती। उस समय तो हम उन चीजों का जिक्र कर रहे थे जिनमें विपरीत गुण रहते हैं और उन चीजों को उन्हीं गुणों के नाम से याद किया गया था, पर इस समय तो स्वयमेव 'विपरीत की सत्ता' का जिक्र हो रहा है, जिसके (गुण) रहने से पदार्थों का तदनुसार नाम हो जाता है और यह कह रहे हैं कि उक्त सत्ता अपनी विपरीत सत्ता से कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकती।" इतना कहकर गुरुजी, शिवी की ओर मुँह फेरकर पूछने लगे—क्यों भाई शिवी, इस शंका से क्या तुम्हें भी कुछ गड़बड़ी पड़ी है ?

शिवी—बिलकुल नहीं, पर यह नहीं तो और कई बातों की गड़बड़ी मुझे जरूर पड़ी हुई है।

सुक०—खैर, अच्छा तो इस बात पर हम सबों की अब एक राय हो गई है, कि कोई विपरीत सत्ता अपनी ही विपरीतता नहीं कर सकती।

शिवी—मैं ठीक समझा नहीं।

सुक०—अच्छा, और भी खुलासा किए देता हूँ। इसे जाने दो। दूसरी ओर जो एक बात पूछता हूँ, बतलाओ। अच्छा, सरदी और गर्मी कोई पदार्थ हैं, यह तुम मानते हो या नहीं ?

शिवी—मानते क्यों नहीं।

सुक०—अच्छा तो अग्नि और बरफ तथा गर्मी और सर्दी दोनो क्या एक चीज हैं ?

शिवी—नहीं, कदापि नहीं। गर्मी अग्नि से एक अलग चीज है, वैसे ही सर्दी भी बरफ से एक अलग पदार्थ है।

सुक०—ठीक। अच्छा तो यह बात भी तुम मानते ही होगे कि बरफ कभी भी गर्मी को धारण नहीं कर सकती और गर्मी को धारण करके फिर बरफ और गर्म ऐसे दोनें गुणोंवाली रह भी नहीं सकती, या तो गर्मी के पास आते ही इसे दूर हो जाना पड़ेगा या यह नाश ही हो जायगी।

शिवी—बेशक, तुम्हारा कहना सही है।

सुक०—वैसे ही सर्दी के पास आते ही अग्नि को शांत होना पड़ेगा या नाश हो जाना पड़ेगा। सर्दी को गोद में लेकर अग्नि कभी कायम रह नहीं सकती। सर्दी और अग्नि इन दोनों का एक संग कायम रहना असंभव है।

शिवी—बेशक।

सुक०—उसी तरह यह बात इससे साबित होती है, कि एक सत्ता का जो नाम होता है, जिस किसी पदार्थ में उस सत्ता का कुछ अंश रहता है उस पदार्थ को भी उसी नाम से पुकारा जा सकता है, चाहे वह उक्त पदार्थ में किसी रूप से क्यों न रहे। अच्छा, एक दृष्टात देकर मैं अपने तात्पर्य को और भी स्पष्ट किए देता हूँ। अच्छा,

अयुग्म (असमान) संख्या* हमेशा अयुग्म ही कहला-
वेगी या और कुछ ?

शिवी—अयुग्म कहलावेगी ।

सुक०—अच्छा, इसमें एक बात का जवाब दो। अयुग्म नाम-
धारी क्या और भी कोई चीज है या नहीं ? है अवश्य,
इसे तुम अस्वीकार नहीं कर सकते और यह भी बतलाओ
कि वह जो दूसरी चीज अयुग्म कहलानेवाली है, वह
यद्यपि स्वयमेव 'अयुग्म सत्ता' नहीं है पर उसमें अयुग्म
का भाव इस रीति से विद्यमान है कि उसे भी अयुग्म ही
का नाम धारण करना पड़ता है और वह कभी भी अयुग्म
से अलग नहीं हो सकती। इसके दृष्टांत हैं, जिन्हें
बतलाकर मैं यहाँ मतलब साफ़ कर देना चाहता हूँ;
अच्छा इनमें से एक कोई अयुग्म संख्या ले लो, तीन की
संख्या को लो और अब विचारो। अब यह बतलाओ
कि इस 'तीन' संख्या को तुम अयुग्म के नाम से पुकारोगे
या 'तीन' ऐसा कहकर पुकारोगे। यद्यपि अयुग्मता
तीन में मौजूद है पर 'तीन' और अयुग्म दोनों एक पदार्थ
नहीं हैं। वैसे ही पाँच, सात, नौ यद्यपि ये सारी
संख्याएँ अयुग्मता को धारण किए हुए हैं, पर अयुग्म
कहने से जिस सत्ता का बोध होता है 'तीन' कहने से

---

*जैसे कि एक, तीन, पांच, सात, नौ ये अयुग्म संख्याएं है और
दो, चार, छः आठ ये युग्म संख्याएँ हैं ।

ठीक उस सत्ता का बोध नहीं हो सकता, केवल यही बोध होगा कि इसमें भी अयुग्मता है। इसी प्रकार से दो, चार, छः, आठ ये सब यद्यपि युग्म संख्याएँ कहलाती हैं, पर युग्मता कोई और पदार्थ है और दो, चार, छः, आठ ये और चीज हैं यद्यपि युग्मता का अंश इनमे विद्यमान है सही। क्यों, मेरी इस बात से तुम सहमत हो या नहीं?

शिवी—बेशक, सहमत हूँ।

सुक०—अच्छा, तो मैं जिस बात को तुम लोगों के ध्यान में जमा देना चाहता हूँ, वह यह है कि कोई भी 'विपरीत भाव' अपने विपरीत गुणवाले भाव को धारण नहीं कर सकता; वैसे ही उन सब पदार्थों को भी जो स्वयं 'विपरीत सत्ता' नहीं हैं पर विपरीतता को धारण करनेवाले हैं, देखकर भी यही बोध होता है, कि वे अपने विरोधी गुण को धारण नहीं कर सकते। उस विरोध के निकट आने पर या तो उन्हें हट जाना पड़ेगा या वे नाश हो जायँगे। अच्छा इसका एक दृष्टांत लो, तब साफ समझ मे आवेगा। तीन संख्या क्या कभी युग्म हो सकती है? नहीं हो सकती। जब कभी कोई मौका इसके युग्म होने का आवेगा तब इसे अयुग्मता से दूर हट जाना पड़ेगा या अपना 'तीन' यह अयुग्म नाम मिटा देना पड़ेगा।

शिवी—बहुत ठीक। सब ठीक मेरी समझ में आ रहा है।

सुक०—फिर भी दो की संख्या तीन की विरोधी नहीं है।*

शिवी—नहीं।

सुक०—तो फिर केवल 'भाव या सत्ता' ही एक ऐसा पदार्थ नहीं है जो अपने विरोधी गुण को पास नहीं फटकने देता; इसके सिवाय और भी चीजे हैं जो ऐसे नैकट्य को सह नहीं सकतीं।

शिवी—बेशक।

सुक०—अच्छा तो वे कौन सी चीजें हैं, और कैसी चीजें हैं, क्या इसका पता लगाना तुम लोग चाहते हो?

शिवी—अवश्य चाहते हैं।

सुक०—अच्छा भाई शिवी! ये क्या वे ही चीजें नहीं हैं, जो अपने स्वभाव के अलावे और भी किसी के विपरीत स्वभाव को भी धारण किए रहती हैं?

शिवी—मैं तुम्हारी यह पहेली ठीक समझा नहीं।

सुक०—पहेली कैसी? वही तो अभी कह रहे थे। फिर से कहता हूँ, सुनो। देखो 'तीन' यह संख्या कहने से, जो भाव प्रगट होता है, उसी भाव के साथ साथ अयुग्मता का भाव भी प्रगट होता है या नहीं?

शिवी—निस्संदेह होता है।

---

* अर्थात् तीन से विपरीत या उल्टी नहीं है पर इनमें जो युग्म, अयुग्म का भाव है वह अवश्य परस्पर-विरोधी है उसी 'भाव' या 'सत्ता' का जिक्र हो रहा है।

सुक०—तो अब हमारा कहना यह है, कि तीन कहने से युग्म का भाव चित्त में कभी भी उदय नहीं होगा।

शिवी—बेशक।

सुक०—पर 'अयुग्म सत्ता' कहने से 'तीन' ध्यान मे आ सकता है या नहीं?

शिवी—आ सकता है।

सुक०—अच्छा 'युग्म का भाव' 'अयुग्म के भाव' से विपरीत है?

शिवी—है ही।

सुक०—वैसे ही 'युग्म' कहने से 'तीन' की संख्या का भाव कभी भी सामने नहीं आवेगा।

शिवी—कभी नहीं।

सुक०—वैसे ही तीन से और युग्म से कोई संबंध नहीं?

शिवी—कोई नहीं।

सुक०—तो 'तीन' की संख्या अयुग्म कहलाई?

शिवी—बेशक।

सुक०—जो चीजें स्वयं विपरीत नहीं हैं और विपरीत चीजों को धारण भी नहीं कर सकतीं, उनके बारे में मुझे जो खुलासा करना था, सो कर चुका और भी खुलासा यह है कि तीन की संख्या युग्म के भाव को धारण नहीं करती, तो भी यह 'तीन' युग्म के भाव का ठीक उलटा या विपरीत स्वरूप नहीं है, यद्यपि यह हमेशा अपने संग युग्मता के विरोधी गुण को ले आती है। क्योंकि युग्म

का उलटा है अयुग्म और तीन मे यद्यपि अयुग्मता है सही, पर तीन की संख्या स्वयं अयुग्म सत्ता नही है। अयुग्म सत्ता हमेशा अयुग्म ही रहेगी पर तीन मे एक जोड़ दीजिए तो वह चार हो जायगा, इसी लियें अयुग्मता का अंश रहने पर भी तीन की संख्या नित्य अयुग्म नहीं कहला सकती, कुछ हेर फेर से उसका युग्म होना संभव है, इसी लिये 'तीन' की संख्या और अयुग्म सत्ता दो भिन्न भिन्न पदार्थ कहे गए हैं। वैसे ही दो की संख्या अयुग्मता को धारण नही कर सकती और न अग्नि शीत को धारण कर सकती है। इसी तरह से समझ लो। अच्छा तो तुम लोग क्या मेरी इस बात से सहमत हो कि विपरीत सत्ता अपनी विपरीत सत्ता को धारण नहीं कर सकती? केवल यही नहीं, यह विपरीत सत्ता अपने साथ भी जिस किसी को लाती है, उस पदार्थ की विप-रीत सत्ता को भी वह सह नही सकती अर्थात् वह पदार्थ भी अपने विपरीत गुण से शून्य होना चाहिए। खुलासा यह कि वह जिसके पास आया है उसी के समान गुण-वाला उसे होना चाहिए। अग्नि के पास गर्मी ही टिक सकती है, सर्दी नही। इसको और भी खुलासा कर देता हूँ। देखो, पाँच, युग्मता की सत्ता को धारण नहीं कर सकता। वैसे ही पाँच का दूना दस अयुग्मता को धारण नही करता। यद्यपि पाँच की संख्या दस

से उलटी नहीं है, पाँच ही से दस उत्पन्न हुआ है, तो भी यह दस की संख्या अपने आधे पाँच के अयुग्म गुण को धारण नहीं कर सकती। वैसे ही, आधा या डेढ़ और इसी प्रकार की अन्य संख्याएँ भी पूरी संख्या को निर्देश नहीं कर सकतीं। क्यों मेरी बातें तुम्हारी समझ में आ रही हैं या नहीं ?

शिवी—सब समझ मे आ रही हैं।

सुक०—अच्छा और भी अच्छी तरह समझ लो और अब मेरी बातों का जवाब दो। मेरी बात अच्छी तरह तौलकर तब जवाब देना। मैंने पूछा क्यों क्या ऐसा नहीं है ? और तुमने तुरंत ही कह दिया 'हाँ ऐसा ही है' ऐसा ठकुरसुहाती जवाब मैं नहीं चाहता, और न मैं वैसा सीधा सादा बचाव का जवाब चाहता हूँ, जिसका जिक्र पहले किया जा चुका है, क्योंकि इस समय जो कुछ कहा जा चुका है उसका परिणाम दूसरे ही जवाब से निकलेगा और वह जवाब किस प्रकार का होना चाहिए सो भी बतलाए देता हूँ। देखो तुम यदि मुझसे यह प्रश्न करो, कि शरीर गरम क्योंकर होता है, तो मैं वही हमेशा का सीधा सादा बँधा हुआ मूर्खतापूर्ण जवाब नहीं दूँगा कि "शरीर गरमी से गरम होता है"; मैं और भी खुलासा करके जवाब दूँगा और कहूँगा कि अग्नि के कारण शरीर गरम होता है। यदि तुम पूछो कि "आदमी रोगी क्यों

होता है", "रोग के आने से रोगी होता है" यह सीधा जवाब न देकर मैं कहूँगा कि बुखार आने से मनुष्य रोगी होता है। वैसे ही यदि यह पूछा जाय कि संख्या अयुग्म कैसे होती है तो मैं यह नहीं कहूँगा कि अयुग्मता के गुण धारण करने से अयुग्म होती है, मैं यही कहूँगा कि एकाई के रहने से संख्या अयुग्म होती है। अब तुम क्या मेरी बात ठीक-ठीक समझ गए ?

शिवी—समझ गए।

सुक०—अच्छा तो अब यह बतलाओ, शरीर को जिदा बनाने के लिये उसमें किस चीज का रहना जरूरी है ? किस चीज के रहने से शरीर जिदा होता है ?

शिवी—आत्मा के रहने से।

सुक०—हमेशा, हर हालत मे ?

शिवी—हमेशा, हर हालत मे।

सुक०—तो जिसमें आत्मा रहेगी वह पदार्थ जिदा रहेगा, अर्थात् आत्मा जहाँ जायगी अपने संग सदा नित्य जीवनी शक्ति को लिए जायगी ?

शिवी—निस्संदेह।

सुक०—अच्छा तो जीवनी शक्ति का विरोधी भी कोई है ?

शिवी—है।

सुक०—वह क्या है ?

शिवी—मृत्यु है।

सुक०—अच्छा तो यह हम लोगों में पहले ही तय पा चुका है कि आत्मा जिस चीज को संग लाती है, उसके विपरीत गुणवाले पदार्थ को कभी भी धारण नहीं कर सकती?

शिवी—बेशक, यह बात तय पा चुकी है।

सुक०—अच्छा तो, युग्म की सत्ता को जो धारण नहीं कर सकता उसे हम किस नाम से पुकारेंगे?

शिवी—अयुग्म के नाम से।

सुक०—अच्छा जो सत्ता न्याय या संगीत को धारण नहीं करती उसे क्या कहेंगे?

शिवी—अन्याय और बेसुरी कहेंगे।

सुक०—ठीक कहा; अच्छा तो जो सत्ता मृत्यु को धारण नहीं कर सकती उसे क्या कहेंगे?

शिवी—अविनाशत्व, अमरता इत्यादि कहेंगे।

सुक०—अच्छा तो क्या आत्मा मृत्यु को धारण करती है?

शिवी—नही।

सुक०—तो आत्मा अविनाशिनी (नित्य) है?

शिवी—बेशक है।

सुक०—बहुत ठीक। अब कहिए आपकी शंका का समाधान हुआ या नहीं? आत्मा सदा अविनाशिनी, नित्य सिद्ध हुई या नही?

शिवी—बिल्कुल समाधान हो गया और आत्मा अविनाशिनी सिद्ध हो गई।

सुक०—अच्छा तो यह भी सिद्ध है कि "यदि अयुग्म अवश्य अविनाशी होता तो तीन की संख्या भी अवश्य अविनाशिनी होती ?"

शिवी—निस्संदेह ।

सुक०—वैसे ही सर्दी अवश्य ही अविनाशिनी होती, तो जब कभी बरफ के पास गर्मी आती तब बरफ ज्यों की त्यों रहती और गलती नहीं । वह कभी नाश नहीं होती । गर्मी को धारण करके भी आप कायम रहती ?

शिवी—बेशक ।

सुक०—वैसे ही यदि गर्मी अविनाशिनी होती, तो जब कभी अग्नि पर सर्दी का हमला होता, वह कभी बुझती नहीं और न नाश ही को प्राप्त होती । वह ज्यों की त्यों बनी रहती ।

शिवी—निस्संदेह ।

सुक०—अच्छा तो वैसे ही क्या हम 'नित्य सत्ता' के बारे मे नहीं कह सकते ? यदि 'नित्य सत्ता' कभी मरती नहीं तो जब मृत्यु आवेगी तो आत्मा भी नहीं मरेगी । ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका यही तात्पर्य है कि आत्मा कभी भी मृत्यु को धारण नहीं कर सकती, अथवा मर नहीं सकती । जैसे कि तीन या अयुग्म कभी युग्म हो नहीं सकते, अथवा अग्नि या गर्मी कभी सर्द हो नहीं सकती, पर यह तो कह सकते हैं कि अच्छा मान लेते हैं कि युग्म के निकट आने पर अयुग्म युग्म नहीं हो

सकता, पर जब अयुग्म नाश हो जायगा तब तो उसकी जगह पर युग्म आ सकता है। यह हम कभी भी नहीं कह सकते कि इसका नाश नहीं होगा क्योंकि अयुग्म अविनाशी नहीं है, क्योंकि यदि हम यह माने होते कि अयुग्म अविनाशी है, तो हमें यह कहने में भी कुछ आगा-पीछा नहीं होता कि युग्म के पास आने पर भी अयुग्म साफ बचकर चला जाता है और अग्नि, ताप इत्यादि के बारे मे भी हमने वही बात कही होती।

शिवी—निस्संदेह।

सुक०—अब यदि हम इस बात में सहमत हो गए हैं कि 'नित्य सत्ता' अविनाशिनी है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि आत्मा केवल नित्य ही नहीं, वह अविनाशिनी भी है, नहीं तो फिर दूसरी युक्ति की जरूरत पड़ेगी।

शिवी—नहीं, अब दूसरी युक्ति की जरूरत नहीं रह गई है; क्योंकि यदि नित्य पदार्थ को, जो सदा कायम रहता है, नाश होनेवाला कहेंगे तो फिर अविनाशी कह ही किसको सकते हैं ?

सुक०—और सब लोग यह भी मानेंगे कि एक परमात्मा, दूसरे जीवनी शक्ति और इसके अलावे और भी जो कुछ नित्य पदार्थ हैं, उनका कभी नाश नहीं होता।

शिवी—मानने में क्या शक है। आदमी तो क्या, देवताओं को भी यह सिद्धांत मानना पड़ेगा।

सुक०—तब यदि नित्य पदार्थ का कभी नाश नहीं होता और यदि आत्मा नित्य है तो क्या उसका कभी त्रिकाल मे नाश होगा ?

शिवी—नहीं, कदापि नहीं, कभो नहीं।

सुक०—तो इससे यह साफ प्रगट हो रहा है, कि जब मनुष्य पर मृत्यु की चढ़ाई होती है, तो इसका अनित्य अंश मर जाता है और नित्य अंश मृत्यु से अलग चला जाता है और बचकर ज्यों का त्यों बना रहता है।

शिवी—मालूम तो ऐसा ही पड़ता है।

सुक०—तब तो आत्मा नित्य और अविनाशिनी सिद्ध है, और परलोक में भी हमारी आत्मा का अस्तित्व रहेगा।

शिवी—मुझे तो अब कोई शंका रह नहीं गई है, आपकी युक्तियों से मेरा पूरा समाधान हो गया है। हाँ, यदि शिमी को कुछ कहना हो, तो कह डाले, क्योंकि फिर तो कोई मौका मिलेगा नहीं।

शिमी—नहीं, मुझे भी अब कोई विशेष शंका रह नहीं गई है, पर अब तक मेरे मन का खुटका बिलकुल मिटा नहीं है, क्योकि यह विषय बहुत बड़ा है और मनुष्य की निर्बलता का कुछ भरोसा भी नहीं होता।

सुक०—हाँ भाई शिमी, तुम्हारा कहना सही है। हमारे पहले के सिद्धांत चाहे कैसे ही निश्चित क्यों न मालूम पड़ते हों इन्हें बार-बार जाँचते रहना चाहिए; और जब

अच्छी तरह से इसके प्रत्येक अंग की जॉच हो जाय तब जो युक्ति प्रबल मालूम पड़े, उसी के सहारे आगे बढ़ते जाना चाहिए; जब तक कि उक्त विषय खूब साफ न हो जाय उसे न छोड़ना चाहिए। फिर शंका की कोई जगह नही रह जायगी।

शिमी—हॉ, आपका यह कहना तो बहुत ठीक है।

सुक०—खैर, तो अब मित्र इस बात पर ध्यान दो। यदि आत्मा निश्चय अमर है, तो हमें केवल अपने जीवन भर ही के लिये नहीं सदा सर्वदा के लिये इसकी हिफाजत करनी चाहिए, क्योंकि इस तरफ बेपरवाही करने का परिणाम बड़ा भयंकर है। यदि मृत्यु को सारी बातों से छूट जाना मानोगे, तब तो पापियों के लिये इसे एक परमात्मा का वरदान ही कहना चाहिए, क्योंकि मरने के साथ ही वे अपनी आत्मा और उसके साथ सारे पापों से छुटकारा पा जाते हैं। पर अब हम लोगों ने यह पता पा लिया है कि आत्मा अमर है और ज्ञान और पूर्णता को प्राप्त करने के अतिरिक्त उसे दु:खों से छुटकारा पाने या शांति प्राप्त करने का और कोई दूसरा उपाय नहीं है, क्योंकि परलोक मे सिवाय विद्या और ज्ञान के वह संग कुछ नहीं ले जाती और मृत्यु के बाद परलोक की यात्रा प्रारंभ करने के समय मनुष्यों के लिये यही ज्ञान या संस्कार उसके सच्चे मित्र या शत्रु का काम करते हैं।

क्योंकि विवेक-शक्ति, जो कि जन्म से हर दम मनुष्यों के साथ रहती है, मृत्यु के अनंतर उसे एक ऐसे स्थान पर ले जाती है, जहाँ पर सारे मृत व्यक्तियों को जाकर अपने कर्मों का फैसला सुनना पड़ता है और फिर यह शक्ति उसे नीचे संसार की ओर ले जाती है। फिर जब यहाँ ये लोग अपने कर्मों का फल भुगत लेते हैं और भोग का काल बीत जाता है तो दूसरा राह बतलानेवाला उन्हें फिर से लौटा लाता है और यो हो अनेक काल-चक्र के फेर में पड़े हुए जीव घूमा करते हैं। परलोक का रास्ता सीधा सादा नहीं है। यदि यह ऐसा ही सीधा सादा होता तो फिर एक राह बतलानेवाले संचालक की जरूरत न होती, क्योंकि यदि सीधा एक ही मार्ग हो तो फिर कोई रास्ता भूले ही क्यों ? इसलिये इस रास्ते की कई शाखाएँ हैं और बड़ा घुमाव फिराव है, जैसा कि संसार मे मुर्दों के क्रिया कर्म को देखकर मालूम पड़ता है। जो नियम मे चलनेवाली बुद्धिमती आत्मा होती है और पर-लोक की चीजों से अनजान नहीं होती वह सीधी अपने संचालक के पीछे चली जाती है, पर जो आत्मा शरीर से अधिक मोह रखती है, वह इस शरीर और इसी दृश्य जगत् के आस-पास मँड़राती रहती है और जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, बहुत कष्ट और पीड़ा पाने के बाद इसे अंत को बरबस अपनी विवेक-शक्ति द्वारा खींचकर

चले आना पड़ता है। और जहाँ और सारी आत्माएँ होती हैं, वहाँ जब यह आत्मा आती है और यदि यह कुकर्मी या निर्दय हत्या के पाप से लिप्त रहती है, या इसी प्रकार के और किसी घोर पाप को किए होती है, तो सारी आत्माएँ उससे घृणा करती हैं और कोई भी उससे भेंट करना नही चाहतीं; न उसका साथ देती हैं और न उसको राह दिखाती हैं और बड़े कष्ट मे उसे इधर-उधर मारे-मारे फिरना पड़ता है, जब तक कि उसका यह नियत भोग समाप्त नहीं हो लेता। इसके बाद एक शक्ति बरजोरी उसके स्वभावानुकूल स्थान को ले जाती है। पर जिस आत्मा ने अपनी जिंदगी संयम और पुण्य-कार्य मे बिताई होती है, उसे देवता लोग अपने साथ ले जाकर राह बतलाते हैं, और स्वच्छ पवित्र स्वभावानुकूल उसे वैसा ही स्वच्छ पवित्र निवासस्थान प्राप्त होता है।

इसी कारण से मनुष्य को अपनी आत्मा के बारे मे पूरा संतोष रखना चाहिए। यदि उसने शारीरिक और इंद्रियजनित सुखों का भोग नहीं किया तो क्या हुआ, क्योंकि इनसे उसे सिवाय दुःख के कभी सुख नहीं मिल सकता, और यदि इन सुखों को तुच्छ जानकर वह विद्या और ज्ञान में लिप्त रहा, अपनी आत्मा का शृंगार साहस, सत्य, न्याय और संयम से करता रहा, परलोक की यात्रा के लिये आनंद से सदा तैयार बैठा रहा क्योंकि उसने

आत्मा को उपयुक्त खुराक दी है, तो उसे और चाहिए ही क्या। देखो भाई शिमी और शिवी, तुम लोगों को भी एक न एक दिन परलोक की बुलाहट आवेगी, पर मेरी पारी तो चटपट आ गई है और अब मुझे परलोक जाने के पहले स्नान भी कर लेना चाहिए, क्योंकि उसका समय भी हो गया है। विष-पान करने के पहले नहा डालना अच्छा है क्योंकि अंत मे स्त्रियों को मेरे मृत देह को नहलाना पड़ेहोगा, इसलिये मैं चाहता हूँ कि पहले ही से स्नान करके, उनका काम निपटा रखूँ।

इतना कहकर जब गुरुजी चुप हो गए तो क्रटो बोला खैर, तुम्हारी नहाने की मनसा है तो नहा डालो, और अब यदि अपने किसी दोस्त, यार, स्त्री, पुत्र या मेरे बारे मे तुम्हे कुछ कहना सुनना हो तो वह भी कहते जाओ। इस समय आपकी कौन सी सेवा हम करें जिससे आप संतुष्ट होंगे ?

सुक०—देखो भाई क्रटो! मेरा संतोष तो इसी मे है कि, जैसा मैं कह चुका हूँ, उसी पंथ के अनुगामी बनो। अपने जीवन को उसी अनुसार सुधार के मार्ग मे लगा दो। बस तुम्हारे ऐसा करने ही मे मेरा पूरा संतोष समझो। चाहे तुम इस समय कुछ प्रतिज्ञा करो या न करो इसका मुझे कुछ ख्याल नहीं है, पर अब तक जो कुछ कहा सुना गया है और जिस प्रकार से मनुष्य-जीवन का उद्देश्य स्थिर

किया गया है, यदि उस राह पर तुम न चले तो हमारा लाख कहना सुनना और तुम्हारी सेवा करने की मनसा सब निष्फल ही समझनी चाहिए।

क्रटो—हम लोग अपने भरसक कुछ उठा नहीं रखेंगे। अच्छा अब आपकी समाधि किस प्रकार से की जायगी?

सुक०—जैसी तुम्हारी मरजी, केवल तुम मुझे पहले ही से थाम लेना, जिसमें मैं भाग न जाऊँ।

यह कहकर गुरुजी ने हँसकर हम लोगों की ओर देखा और वे कहने लगे "भाई साहबो, क्रटो को यह समझाना कठिन है कि मैं वही सुकरात हूँ, जो अब तक तुम लोगों से बातचीत कर रहा था और युक्तियों को नंबरवार बैठा रहा था। उसे अभी तक यही गुमान है कि मैं केवल शरीर मात्र हूँ जिसे थोड़ी ही देर में वह लाश के रूप में देखेगा और इसी लिये उसे केवल मेरी अंत्येष्टि क्रिया ही की चिंता सर्वोपरि है। इतनी देर तक यह साबित करने के लिये कि 'विष पान कर मृत्यु के अनंतर मैं उसके पास नहीं रहूँगा एक दूसरे अति आनंददायक परलोक की यात्रा करूँगा', जो कुछ बहस और तर्क वितर्क हुआ है उसका असर उस पर तनिक भी नहीं हुआ। अच्छा, क्या आप लोग इसकी जमानत देते हैं जैसा कि इसने मेरे मुकदमे में मेरी जमानत की थी। पर यह जमानत अन्य प्रकार की होगी। इसने मेरे

मुकद्दमे में इस बात की जमानत दी थी कि मैं भागूँगा नहीं, रहूँगा, पर इस समय आप लोगों को इस बात की जमानत देनी होगी कि मैं मरने के बाद चला जाऊँगा और तुम लोगों के संग रहूँगा नहीं। शायद इससे मेरी मृत्यु का दु:ख उसे कुछ कम होगा और जिस समय वह मेरे शरीर को जलते या मिट्टी मे गड़ते देखेगा तो उसे कहीं यह समझकर दु:ख न हो कि मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है, इसी लिये मैं यह कह रहा हूँ कि जिसमे वह यह न समझे कि श्मशानभूमि मे वह सुकरात ही को गाड रहा है या जला रहा है। मेरे प्यारे भाई क्रुटो, ये सब बाते मैं इसलिये कह गया कि जिसमे तुम यह बात अच्छी तरह समझ लो कि इन सब बातो मे भ्रमप्रमाद के वचनो का प्रयोग करना केवल एक अपराध ही नहीं है, वरन् इससे आत्मा पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। तुम प्रसन्न हो जाओ और गाड़ते समय यही समझो कि तुम मेरे जड़ शरीर को गाड़ रहे हो और जैसा उचित समझो उसी प्रकार से इसे गाड़ दो। इसमें कुछ विशेष सोच-विचार की जरूरत नहीं है।"

इतना कहकर वे दूसरे कमरे मे स्नान के लिये चले गए। क्रुटो भी उनके संग गया और हम लोगों को बाहर ही ठहरा गया। अस्तु, हम लोग बाहर ही बैठे हुए गुरुजी की युक्तियों का जिक्र कर रहे थे और इस पर आपस

मे तर्क-वितर्क भी हो रहा था, पर सब ही की जबान पर आज की आनेवाली विपत्ति का जिक्र था। सब लोगों का दिल टूटा जा रहा था और ऐसा शोक छाया हुआ था मानों आज हम लोगों के पिता मर रहे हैं और हम फिर संसार मे अनाथ रह जायँगे। जब गुरुजी स्नान करके बाहर आए तो उनके बाल-बच्चों से उन्हें मिलाया गया। एक तो बहुत छोटा था और दो लड़के किशोर वय के थे। संग में उनके घर की स्त्रियाँ भी आई थीं। उन्होंने क्रटो के सामने ही जो कुछ आखिरी बात कहनी थी सबो से कह दी और तब स्त्री और बच्चों को घर भेजकर वे हम लोगों की तरफ मुड़े। इस समय सूर्यास्त होने ही को था, क्योंकि स्नानागार में उन्हें बड़ी देरी लग गई थी। इन सब कामों से निपटकर वे बैठ गए। इसके बाद फिर कुछ विशेष बातचीत नहीं हुई। थोड़ी ही देर में विषपान करानेवाला जल्लाद आ पहुँचा और खड़ा होकर कहने लगा "देखो भाई सुकरात, मुझे विश्वास है कि और लोगों की तरह तुम कुछ अनुचित कार्रवाई नहीं करोगे, क्योंकि जब मैं अधिकारियों के आज्ञानुसार अन्य लोगों को विषपान करने को कहता हूँ तो वे लोग गाली देने लगते हैं और जमाने भर का शाप देने लगते हैं पर तुम्हारे ऐसा भला मनुष्य, शिष्ट और सुशील कैदी मैंने आज तक नहीं देखा, इसलिये मुझे

विश्वास है कि तुम मुझ पर नाराज नहीं होगे। यदि नाराज होना ही होगा तो उन्हीं पर होना जिन्होंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। क्योंकि मैं तो हुक्म का बंदा हूँ। अस्तु, अब मेरी आखिरी सलाम है और इस दुःख को जहाँ तक शांति से हो सके सह जाने ही में उम्दगी है। तुम्हे यह कहने की तो कोई जरूरत ही नहीं कि मैं यहाँ क्यों आया हूँ।" इतना कहकर वह पीठ मोड़कर रोता हुआ चला गया।

गुरुजी (सुकरात) ने उसकी तरफ देखकर कहा "सलाम भाई साहब, मैं आप ही के कहने मुताबिक करूँगा"। फिर हम लोगों की ओर मुड़कर वे कहने लगे—देखो यह आदमी कैसा शिष्ट है! जब से मैं यहाँ आया हूँ तब से बराबर यह मुझसे मिलने आया करता है और मेरे पास बैठकर बातचीत किया करता है और आज देखो एक सगे संबंधी की तरह मेरे लिये रो रहा है। अच्छा भाई क्रटो, अब विलंब केहि काज? विष का प्याला तैयार हो तो ले आओ। यदि तैयार न हो तो फौरन् तैयार कर लाओ।

क्रटो—अजी भाई सुकरात! इतनी जल्दी क्या पड़ी है, अभी तो सूर्य्य बिलकुल अस्त हुआ ही नहीं है। देखो, और लोगों को मैंने देखा है कि खबर मिल जाने पर भी खूब मौज से खाते-पीते और दोस्तों से मिलते-जुलते और गप्प-

सप्प करते रहते हैं तथा बड़ी रात गए तक भी विषपान नहीं करते। अस्तु, बहुत समय है। अभी से इतनी हड़बड़ी की क्या जरूरत है।

सुक०—हाँ, उन लोगों का ऐसा करना स्वाभाविक है; क्योंकि वे समझते हैं कि इससे उन्हें कुछ लाभ होगा। पर मैं ऐसा क्यों करूँ जब कि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि थोड़ी देर करके भी विष पान करूँगा तो कुछ लाभ तो होहीगा नहीं, सिवाय इसके कि उस प्राण को जकड़े बैठा रहूँ, जिसकी मियाद पूरी हो चुकी है, और अपने आप घृणा का पात्र बनूँ। इसलिये ये सब बातें रहने दो और काम की बात करो।

इसके बाद क्रटो ने अपने एक सेवक को इशारा किया। वह सेवक बाहर चला गया और थोड़ी देर में अपने साथ एक दूसरे मनुष्य को लेकर भीतर आया, जिसके हाथ मे जहर का प्याला था। गुरुजी उसे देखकर कहने लगे "हाँ, भाई तुम तो सब ठीक ठीक जानते होगे। मुझे क्या-क्या करना होगा ?" "केवल इसको पीकर इधर-उधर टहलते रहना और जब पैर भारी मालूम पड़ें तो लेट जाना। शेष कार्य सब यह स्वयं कर लेगा।" यह कहकर प्याला उसने गुरुजी के हाथ मे दे दिया। गुरुजी ने प्रसन्न चित्त से प्याला हाथ में लिया, वे जरा काँपे नहीं, न उनके चेहरे के रंग में कुछ

फर्क आया। सानंद उस प्याले को हाथ में लेकर उन्होंने उस आदमी से पूछा "अच्छा इसमें से थोड़ा सा देवताओं को भी भोग लगा दूँ या नहीं? ऐसा करने में कोई हानि तो नहीं?" इसके उत्तर में वह आदमी केवल इतना ही बोला, "हम लोग जितना काफी समझते हैं, उतना ही तैयार करते हैं। कमोबेश नहीं।" गुरुजी बोले "ठीक है, मैं समझ गया, पर पीने के पहले मैं अपने देवता की प्रार्थना कर लेना अवश्य उचित समझता हूँ, जिसमे मेरी यह महायात्रा निर्विघ्न समाप्त हो। बस यही मेरी अंतिम प्रार्थना है।" इतना कहकर गुरुजी ने होठों से प्याला लगाया और वे बड़ी प्रसन्नता से सारा विष पान कर गए। अब तक तो हम लोग अपने शोक को दबाए हुए थे, पर जब हम लोगो ने देखा कि विष पान कर उन्होंने प्याला खाली कर दिया, तब तो हम लोगों का शोक रोके नहीं रुक सका। बहुत रोकने पर भी आँखो से आँसू निकल पड़े और मैं मुँह ढाँपकर रोने लगा। क्रटो तो, आँसू न रोक सकने के कारण, पहले ही से निकलकर बाहर चला गया था और अपोलोडोरा, जो शुरू ही से आँसू बहा रहा था, इस समय चिल्ला-चिल्लाकर रुदन करने लगा। उसके रोने चिल्लाने से हम लोगों का हियाव भी टूट गया। केवल गुरुजी, ज्यो के त्यों शांत थे। वे कहने लगे "वाह! भाई वाह!

यह तुम लोग क्या करने लगे ? इसी लिये तो मैंने स्त्रियों को यहाँ रहने नहीं दिया, जिसमें रो-धोकर वे लोग बखेड़ा न मचावें और मैं शांति से मर सकूँ, क्योंकि मैंने सुना है कि मरते समय आदमी को सन्नाटे ही में मरना चाहिए। इसलिये तुम लोग शांत हो जाओ और धीरज धारण करो।" यह कहकर वे पहले की तरह टहलते रहे और जब पैर बहुत भारी मालूम पड़ने लगे तो चित्त लेट गए। इसके बाद जो मनुष्य विष दे गया था, वह घड़ी घड़ी उनके हाथ पैर टटोलने लगा, फिर उनके पैरों को खूब जोर से दबाकर उसने पूछा "क्यों कुछ पीड़ा मालूम पड़ती है" गुरुजी बोले "कुछ भी नहीं"। फिर जाँघ पर और फिर इसके भी ऊपर दबा दबाकर उसने हम लोगों को दिखाया कि उनका शरीर सख्त और ठंडा होता जा रहा है। गुरुजी स्वयं भी इस बात का अनुभव कर रहे थे। वे कहने लगे "जब यह सर्दी कलेजे में पहुँच जायगी, तब मेरी मृत्यु होगी"। उनका शरीर कमर के ऊपर तक ठंडा हो चुका था। इसी समय उन्होंने मुँह पर से कपड़ा हटाया (मुँह ढँका हुआ था) और ये अंतिम वचन कहे "देखो भाई क्रिटो, असक्लीपस को मुझे एक मुरगा चढ़ाना है सो चढ़ा देना। भूलना नहीं।" "अच्छा चढ़ा देंगे" क्रिटो ने जवाब दिया और पूछा— "आपको और कुछ कहना है ?" गुरुजी ने इसका कुछ

जवाब नहीं दिया। थोड़ी ही देर में उनका शरीर कुछ हिला और जब उनके मुँह पर से कपड़ा हटाया गया तब आँखें चढ़ी हुई दिखाई दीं। क्रुटो ने उनकी आँखें और मुँह दोनों बंद कर दिए।

भाई इशकृत! यही हमारे परम मित्र सुकरात की स्वर्गयात्रा की कहानी है। उसके ऐसा ज्ञानी, सज्जन और धर्मात्मा पुरुष होना दुर्लभ है।

सातवाँ अध्याय

मृत्युंजय सुकरात के जीवन की एक झलक

गीता में भगवान् ने कहा है कि "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।" श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं, साधारण मनुष्य भी उसी को प्रामाणिक मानकर उसी राह पर चलते हैं। इसी लिये महज्जनों की जीवनी लिखी-पढ़ी और सुनी जाती है। धर्मशास्त्रों में सत्पुरुषों के जो लक्षण कहे गए हैं वही नमूना जब सामने आता है तो लोग सहज ही उस महात्मा के आगे सिर झुकाते हैं और उसे भगवान् का अंश मानकर पूजते हैं। ऐसे लोग भगवत्प्रेम में तन्मय होते हैं। परमात्मा से उन तक हर घड़ी बेतार की तारबर्क़ी (Wireless Telegraphy) काम करती रहती है। गीता में कृष्ण भगवान् अपने प्यारे भक्तों के लक्षण का वर्णन यों करते हैं—

"अद्वेष्टा[1] सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी[2] ॥ १ ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥ २ ॥

---

१ द्वेषहीन।

२ क्षमाशील।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते चयः ।*
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ ३ ॥
अन[1]पेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारंभपरित्या[2]गी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ ४ ॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ ५ ॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ ६ ॥
तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येनकेनचित् ।
अनि[3]केतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः ॥ ७ ॥

दो एक को छोड़कर ये सारे लक्षण ही महर्षि सुकरात मे पाए जाते हैं ।

उन्होने अपना सारा जीवन ज्ञानचर्चा ही में बिताया । देह और इंद्रियों के भोग की कुछ लालसा नहीं रखी, क्योकि आत्मा के अवलोकन में ये बड़े भारी विघ्न हैं ऐसा वे अपने शिष्यों को समझाते रहे । उनकी इसी सीधी-सादी चाल और आडंबरशून्य जीवन से उनके देशवासियों मे से कुछ ओछे मनुष्यो ने उनका हर तरह से अपमान

---

* जिससे किसी मनुष्य को कभी उद्वेग प्राप्त न हो ।

१ देह, इंद्रिय इत्यादि के भोगो की जिसे कुछ परवाह नही ।

२ फल की इच्छा से किसी कर्म को आरंभ न करनेवाला ।

३ जिसके मिलने का कोई नियत स्थान न हो ।

किया। नाटक रचकर उनकी ज्ञानचर्चा की मसखरी उड़ाई और आम तौर पर वह नाटक खेलकर सर्वसाधारण के सामने उनको शेखचिल्ली बनाने की कोशिश की, पर जैसे मत्त वारण मक्खी के भिनभिनाने पर कान नहीं देता, वैसे ही उन्होंने देश के इन ओछे कुपूतों की करनी पर ध्यान ही न दिया; क्योंकि वे आजकल के सुधारकों में से तो थे ही नहीं, जो बात बात पर अदालतों में इज्जत का दावा करने दौड़े जाते हैं। उन्हें निंदा, स्तुति, मान, अपमान तुल्य था। इन बातों को वे निःसार समझते थे, क्योंकि उनकी आत्मा की डोर स्वर्गीय अलौकिक और दैवी शक्ति से बँधी हुई थी, सांसारिक जाल के बंधन से नहीं। सांसारिक बंधन में बँधे हुए लोग ही, मान, यश, पदवी, द्रव्य, ख्याति के पीछे हैरान रहते हैं और यों ही बंधन पर बंधन बढ़ाते जाते हैं। भगवान् के प्यारे जनों को ये चीजें निरी असार और दुःखदाई बंधनरूप जान पड़ती हैं, क्योंकि इन वस्तुओं के प्राप्त करने के लिये उन्हीं उपायों का अवलंबन करना पड़ता है जो आत्मा को नीचे गिरानेवाले हैं। इसलिये सच्चे महात्मा इन बातों की ओर आँख उठाकर देखते भी नहीं और न आजकल की प्रथा के अनुसार एक दल बनाकर धर्म का डंका पीटते हैं और न अपने आप ही अपने ढोल को अपने गले में लटकाए पीटते फिरते हैं। ये लक्षण सच्चे ज्ञानी या सच्चे महात्माओं के नहीं। बुद्धिमानों को इसी कसौटी से धार्मिक और अधर्मी की पहिचान कर लेनी चाहिए।

यद्यपि सुकरात का जीवन एक ज्ञानी का था, पर वे "सर्वारंभ-परित्यागी" थे। फल की इच्छा से किसी कार्य्य का भी उन्होंने आरंभ नहीं किया। देश की ओर से जब इस ज्ञानी गृहस्थ फकीर को युद्धभूमि मे जाने की आज्ञा हुई तो वह वहाँ भी गया और अपने भरसक युद्ध करने मे भी उसने कोई कसर नहीं की। एक मौके पर अपने एक साथी को युद्ध में मरने से बचाया और एक खंडयुद्ध जीतकर उस यश को उसी बचाए हुए साथी को दिया। द्रव्य का दान, विद्या का दान तो बहुत देखा है। राजा हरिश्चंद्र ने राज्य और स्त्री-पुत्र का दान भी कर दिया था, दधीचि ने शरीर का दान कर दिया था, पर अपने यश का दान दे देनेवाला दानशूर तो कोई विरला ही होगा। यह दान उसी से हो सकता है जो भगवान् के वचनानुसार "त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रय:" हो। लोग कहते हैं कि "कर्म के फल की इच्छा को छोड़कर कर्म किस तरह किया जाता है" यह समझ मे नहीं आता। उन नासमझों को महात्मा सुकरात के इस दृष्टांत से गीता के निष्काम कर्म का रहस्य सीखना चाहिए। ऐसा कौन दान-शूर निष्कामकर्मी होगा जो युद्ध में खून अपना बहावे और उसके यश का भागी अपने आश्रित को बनावे? निष्काम कर्म का ज्वलंत दृष्टांत देख लीजिए।

संसार मे लोग मृत्यु ही को सबसे भारी आफत या बला समझते हैं और जब अपने मन मुताबिक काम किसी पुरुष से

नहीं करवा सकते तब अपनी समझ के अनुसार इसी सबसे भारी बला को उस पुरुष के सिर पर ढा देते हैं, पर इसमें उनकी कितनी नासमझी है यह बात सुकरात ने अपने तर्क वितर्क और स्वयं अपने दृष्टांत द्वारा दिखा दी कि "मृत्यु संसार का एक साधारण स्वाभाविक नियम है। यह न तो कोई बला है और न कोई बवडंर है। इससे डरना वैसा ही है जैसा जन्म से डरना, क्योंकि जन्म-मरण दोनों एक के संग एक लगे हुए हैं।" अस्तु, इसी मृत्यु का भय दिखाकर उसके देश-वासी उससे अधर्म नहीं करा सके। ऐसे मौके पर उसने स्पष्ट कहा है कि "मृत्यु भली है या बुरी यह तो हम नहीं जानते और न तुम्हीं जानते हो पर यह अधर्म का काम बुरा है यह सभी जानते हैं और मैं भी जानता हूँ, इसलिये मौत के डर से बुरा काम कभी नहीं करूँगा।"

यद्यपि इनकी तर्क-प्रणाली बड़ी पुष्ट और स्पष्ट होती थी, पर जिस किसी से ये तर्क करते थे उसे अपने बराबर का या अपने से बड़ा समझकर बड़ी अधीनता और नम्रता के साथ प्रश्न करते थे। आप शिष्यरूप से प्रश्न पर प्रश्न करते जाते थे, आपने कभी शिक्षक या बड़ा होने का दावा नहीं किया। उनके प्रश्नों ही से घबड़ाकर लोग अपनी मूर्खता स्वीकार कर लेते थे और यही बतला देना उन्होंने अपना एकमात्र लक्ष्य समझा हुआ था कि "मूर्ख होकर अपने को बुद्धिमान् मत समझो। वास्तव मे संसार मे इससे बढ़कर दूसरी कोई भया-

नक चोज नहीं है। यही मिथ्या अभिमान और अविद्या की जड़ है जिसके वश हुआ आदमी कभी दुःख से छुटकारा नहीं पा सकता।" जिस समय मनुष्य सच्चे मन से यह स्वीकार कर लेता है कि मैं मूर्ख हूँ और मुझे सीखना है उसी दिन समझिए कि सच्चे ज्ञान की पहली सीढ़ी पर वह चढ़ गया और फिर क्रमशः वह उन्नत होते होते अंत को सब ही कुछ हो सकता है, और मनुष्य मात्र के इसी उपकार के लिये, उन्हें 'सच्चे ज्ञान की पहली सीढ़ी पर चढ़ाने ही के लिये', महर्षि सुकरात ने अपने सारे जीवन की और अंत को प्राणों की भी बाजी लगा दी। वे इसी लिये अपने को जगत् मे आया समझते थे और इसी लिये उन्होंने अदालत के सामने स्पष्ट कह दिया कि "भाइयो, मैं आपका सम्मान अवश्य करता हूँ, पर आपकी बात मानकर यदि अपनी तर्क करने की आदत को छोड़ दूँ तो इसमे परमात्मा की आज्ञा का भंग होगा, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो कदापि मेरी बुद्धि ऐसी न होती कि यावत् सांसारिक विषयों का ध्यान छोड़कर इसी बात में मैं ऐसा लीन रहता कि सारे अपमान, दुःख और प्राणों के भय से भी इस कार्य से नहीं टलता।" जैसे प्राणवायु नहीं रहने से मनुष्य जीता नहीं रहता, वैसे ही यह न्याय तर्क सुकरात की प्राणवायु था जिसके विना उनका जीना कठिन था, क्योंकि मरने के दो ही एक घड़ी पहले उन्होंने इस विषय की वातचीत को वंद किया था। यद्यपि उनके बहुत से मित्र और शिष्य

मौजूद थे पर किसी के सामने भी उन्होंने कभी अभिमान प्रगट नहीं किया। अदालत के सामने भी यही कहा कि 'डेलफी की देवी ने मुझे बुद्धिमान् कहा और जब मुझे इसका पता नहीं लगा कि बुद्धि मुझमे कहाँ है तब मैंने प्रसिद्ध प्रसिद्ध बुद्धिमानों से प्रश्न कर करके इस बात की जाँच की और मुझे पता लगा कि देवीजी का कहना सच है क्योंकि "मैं मूर्ख हूँ बुद्धिमान् नहीं" पर अपने को वैसा ही मूर्ख समझता हूँ भी, किंतु ये लोग हैं मूर्ख और समझते हैं अपने को बुद्धिमान्। इसी विषय में देवीजी ने मुझे बुद्धिमान् कहा है, कुछ वास्तव में मैं बुद्धिमान् नहीं हूँ।' देखा पाठको! "निर्ममो निरहंकारः" इसी को कहते हैं। अपने बचाव के बयान में एक बात और भी उन्होंने बड़े मार्के की कही है, खुशामद और सिफारिश से अपराधियों को क्षमा करने और अयोग्यों को योग्य पद पर अधिष्ठित कर देने-वाले अधिकारियों को ये शब्द हृदय पर अंकित कर रखने चाहिएँ। उन्होंने कहा है कि "अब तक तो मुझे निश्चय है कि मैंने कोई अपराध नहीं किया, पर यदि आप लोगों से हाथ पैर जोड़कर माफी माँगूँ तो एक प्रकार से यह स्वीकार कर लेना कहलावेगा कि मैंने अपराध किया है और फिर अप-राध स्वीकार करके दंड से बचने के लिये आप लोगों की खुशामद करके आपको अपने उचित कर्त्तव्य से गिराने के लिये ललचा रहा हूँ। अर्थात् द्रव्य के बदले खुशामद और हाथ पैर जोड़ने की घूस देकर दोहरा अपराध करूँगा। सो

जान बूझकर यह डबल अपराध करने के लिये मैं तैयार नही। आप यह न समझें कि अभिमान के कारण मैं हाथ पैर नही जोड़ता। मेरे ऐसा न करने का कारण धर्म विवेक है।" कैसी सच्ची सरल और उचित युक्ति है। इसी को कहते हैं "यतात्मा दृढनिश्चयः।"

उन्हे क़ैदखाने से भगाने के लिये उनके मित्रों ने बहुतेरी चेष्टाएँ कीं पर कैसी शांति और युक्तिपूर्वक उन्होने इस काम की निंदा कर इसे अनुचित ठहराया है, यह पाठकगण उसी जगह देख लेगे। देश के कानून को भंग करनेवाले शिक्षित मूर्खों को भी इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। "तुम्हे वर्त-मान राजकीय कानून पसंद नही तो चले जाओ बाहर! निकल जाओ यहाँ से। तुम्हें कोई अधिकार नही कि इसका भंग करके अपने साथ अन्य न्यायप्रिय नगरवासियों की भी अशांति और दुःख के कारण बनो।" वे लोग शायद अपनी इस करतूत को स्वधर्म और स्वदेश-सेवा समझते हों, पर स्वधर्म और स्वदेश-सेवा वही कहलाती है जैसी महर्षि सुकरात ने की। उसके लिये प्राण भी गए, फिर भी कानून भंग करने का दूसरा अपराध सिर पर नही लिया। उनके बंदीगृह की इस युक्ति को हमारे देश के मतभ्रांत युवकों को ध्यान से पढ़ना चाहिए। सुकरात की इन युक्तियों से "यस्मान्नोद्विजते लोको, लोकान्नोद्विजते च यः" साफ झलक रहा है। लोगो को क्षोभ मे डालना धर्म नही, अधर्म है। वचन गीता का और दृष्टांत सुकरात का देख लीजिए।

महर्षि सुकरात ने अपनी युक्तियों में जितनी बातें कही हैं, उनमें पुनर्जन्म और आत्मा की नित्यतावाला सिद्धांत सर्व-प्रधान है और इसकी सिद्धि में उन्होंने जैसी सरल, स्पष्ट और पूर्ण युक्ति दी है, वैसी शायद ही कहीं देखने मे आती है, पर संभव है कि संदेह की जगह कहीं रह जाय क्योंकि आँख से परे जितनी बातें हैं, वे इंद्रियगम्य नहीं हैं, अनुभवगम्य हैं और इसके लिये विशेष-विशेष साधन आर्ष-ग्रंथों में लिखे हैं और सद्‌गुरु द्वारा लभ्य हैं। महात्मा लोग इंद्रियों द्वारा केवल इन सिद्धांतों की महिमा का कीर्तन कर सकते हैं, किसी को दिखा नहीं सकते, क्योंकि ये अति सूक्ष्म पदार्थ हैं। स्थूल इंद्रियों की शक्ति कहाँ कि इनको देखें ? इस विषय पर तर्क बढ़ाने की जरूरत नहीं, क्योंकि इसका सच्चा अनुभव कोरी बकवादों से कभी होने का नहीं। इसमें सारे जीवन की बाजी लगानी पड़ेगी। जिसे शौक हो "आवे मैदान में" नहीं तो जिसे जैसा रुचे विश्वास किए रहे।

अंत को महात्मा सुकरात की मृत्यु का दृश्य अवश्य अलौकिक है, जिसने उन्हे सच्चे मृत्युंजय की पदवी दे दी है।

मरते मरते अपनी एक सामान्य मनौती की बात याद रखना और उसे चुका देने के लिये अपने मित्र के प्रति अनुरोध अवश्य ही 'स्थिरमति' का सच्चा दृष्टांत है। वास्तव मे भगवान् कृष्ण का कहना सही है कि ऐसे ही सज्जन मेरे प्यारे होते हैं।